सुबोधग्रन्थमाला—ग्रन्थ ४ ।

रचना-विचार ।

द्वितीय भाग ।

[आदर्श हिन्दी-प्रबन्ध]

THE SECOND BOOK

OF

HINDI COMPOSITION AND ESSAY-WRITING

[*Model Hindi Essays*]

स्कूल और कालेज के छात्रोपयोगी ।

DESIGNED FOR THE SCHOOL AND COLLEGE BOYS

रचयिता

पण्डित रामदहिन मिश्र

प्रकाशक

ग्रन्थमाला कार्यालय,

बाँकीपुर ।

द्वितीय संस्करण १०००] १९२० ई० [मूल्य सवा रुपया १।)

Printed by G K Gurjar at Shri Lakshmi
Narayan Press, Benares City
and
Published by Rampukar Misra, at Granthmala
Karyalaya, Bankipur.

वक्तव्य (Introduction)

रचना-विचार के प्रथम भाग में प्रबन्ध-सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयों का उल्लेख हो चुका है। फिर से यहाँ उनकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक है। तथापि, विद्यार्थियों के उपदेशार्थ संक्षेप में लेख विषयक कुछ आवश्यक बातों को सूत्र रूप से इस भाग में भी लिख देना अनुचित न होगा। अतएव, विद्यार्थियों को उचित है कि नीचे की [illegible] बातों पर ध्यान रक्खें और उन्हें काम में लावें।

सब से प्रथम जानने की बात यह है कि—लेख कैसे लिखना चाहिये। कितने विद्यार्थी लेख लिखने का काम बड़ा आसान समझते हैं और निर्धारित विषय पर जो कुछ मन में आता है उटर-पटर लिख कर लेख तैयार कर देते हैं। पर उनकी पोल तब खुल जाती है जब कि उसी विषय पर सुन्दर रूप से दूसरे का लिखा लेख देखते हैं। कितने विद्यार्थी प्रबन्ध रचना का नाम सुनते ही भय भीत हो जाते हैं। किन्तु प्रबन्ध-रचना-शिक्षा न तो उपेक्षा-योग्य ही है और न भय-प्रद ही। जो वाक्य-रचना सीख गये हैं और छोटे २ या बड़े २ किसी प्रकार के वाक्यों में अपने मन का भाव प्रकाश कर सकते हैं उनके लिये लेख लिखना भारी बात नहीं है। जिनसे प्रबन्ध लिखने को कहा जाता है वे वस्तुतः वाक्य-रचना का ज्ञान कुछ २ रखते हैं। कुछ-कुछ की बात दूसरी है। वैसे छात्रों को जब किसी विषय पर लेख लिखना हो तो उसके सम्बन्ध की जितनी बातें सूझ पड़ें उन्हें पहले छोटे २ वाक्यों में लिख

लेना चाहिये। फिर उनको सिलसिलेवार क्रमश: बढ़ा चढ़ा कर लिख लेने ही से लेख हो जायगा। पर इतना अवश्य होना चाहिये कि निर्द्धारित विषय पर जितनी बातें सूझ पड़ें वे खूब सोच विचार कर लिखी जाँय और उनका परस्पर सम्बन्ध बना रहे।

दूसरी बात यह है कि—किस प्रकार लेख सुन्दर होगा। सुन्दर और शुद्ध लेख लिखना सहज नहीं है। इसके लिये समय और अभ्यास की आवश्यकता है। यह काम एक दो दिन में होने वाला नहीं है। जो जितना विशेष अध्ययन करेगा—जितना अनुभव प्राप्त करेगा—उतना ही उसका लेख उत्तम होगा। उत्तम लेख लिखने के लिये उत्तम २ लेखकों के लेख पढ़ना, उत्तम २ वक्ताओं की वक्तृता सुनना और अपने लिखे लेखों को पढ़ना और बार २ मनन करना आवश्यक है। लेख लिखने में आतुरता दिखलाना और शीघ्रता करना अनुचित है। प्रबन्ध लिखने के पूर्व उसकी उत्तमता के लिये नीचे लिखी बातों पर भी ध्यान देना उचित है। इससे लेखक अपने लेख में विफल कभी नहीं हो सकता।

१ प्रबन्ध के विषय प्रधानतः तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। वर्णनात्मक (Descriptive), विवरणात्मक (Narrative) और विचारात्मक (Reflective)। इसके भी अनेक भाग हो सकते हैं। अस्तु। इन तीनों प्रकार के प्रबन्धों में से किसी सामान्य विषय को लेकर साधारण रूप से वर्णन करना हो तो साधारण ही प्रणाली का और यदि उच्च विषय को लेकर कुछ लिखना हो तो उच्च प्रणाली का ही अवलम्बन करना उचित है। वर्णनात्मक लेख के लिये सरल, विवरणात्मक लेख के लिये साधारण अर्थात् न

उतना सरल और न उतना उच्च ही और विचारात्मक लेख के लिये उच्च प्रणाली का व्यवहार करना उचित होगा। वर्णनात्मक में कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें साधारण प्रणाली का आश्रय लेना उत्तम होगा। रचना प्रणाली के सम्बन्ध में शिक्षा* नामक पुस्तक का मत यहाँ उद्धृत करता हूँ।

संक्षेपमें रचना प्रणालीके दो भेद हैं, एकको वैज्ञानिक और दूसरीको साहित्यिक कह सकते हैं। पहली प्रणालीके अनुसार वर्णित विषय भिन्न भिन्न भागोंमें विभक्त होकर प्रत्येक भाग यथानियम और यथाक्रमसे विवृत होता है। दूसरीके अनुसार वर्णित विषयकी जितनी ही चुनी चुनी बातें, [illegible] बात जो लिखनेसे सुभीता हो, उस प्रकार [illegible] कौशलसे विवृत करे, कि उससे पाठक बिना [illegible] सब जानें, अथवा अन्य विवृत विषयमें जो कुछ जानने योग्य हो, उसे स्वयं अपने हृदयंगम कर सके।

एक दृष्टान्तसे इन दो प्रणालियोंका प्रभेद स्पष्ट दीख पड़ेगा। मान लीजिये, किसी [illegible] प्रदेशका विवरण लिखना ही रचनाका उद्देश्य है। वैज्ञानिक प्रणालीसे देशका आकार, लम्बाई, चौड़ाई, भूमिकी उर्वरता शक्ति, नदी, पर्वत, वन, उपवन, ग्राम, नगर, उद्भिद, जन्तु, शिल्प, वाणिज्य, शिक्षा, शासन प्रणाली इत्यादि यथाक्रम वर्णित होंगी। साहित्यिक प्रणालीमें इन विषयोंमें केवल प्रधान प्रधान बातें कुशलतासे [illegible] किये जायँगे कि उससे उस प्रदेशका एक चित्र पाठकके हृदयमें अंकित हो जायगा।

इन दोनों प्रणालियोंको [illegible] और एक प्रकारसे दिखाया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रणालीका लेखक अपने साथ पाठकको लेकर [illegible] घूमते हैं। साहित्यिक प्रणालीके लेखक पाठकको अपने साथ लेकर [illegible] चढ़कर [illegible] एक ही समय [illegible] दिखा देता है। [illegible] प्रणाली

---

* [illegible] यूनिवर्सिटी [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] और [illegible] द्वारा अनूदित।

सुखकर है, परन्तु सबके लिये सहज नहीं है। प्रथमोक्त कष्टकर होनेपर भी सबके आयत्ताधीन है। पाठक को साथ लेकर समस्त प्रदेश पर्य्यटन करना कष्टकर होनेपर भी सबके लिये साध्य है। परन्तु ऊँचे पहाड़की चोटी पर चढ़ना और भी अकेले नहीं पाठक को साथ लेकर चढ़ना विशेष शक्ति के अधीन है। वह शक्ति जिसमें नहीं है, उसके लिये उस स्थानपर पहुँचने की आशा दुराशा मात्र है। रचनाशिक्षा के विषयमे यह बात स्मरण रखने योग्य है।

२ जो विषय लेख लिखने के लिये निर्द्धारित हो उसको खूब सोचे और उसका खूब अभ्यास करे। जब सामग्री सोच विचार और जान सुन कर ठीक हो जाय तब लेख लिखना प्रारम्भ करे।

३ लेखकों को चाहिये कि जो भाव मन में उठें उन्हें पहले लिख लें और उन पर अपने विचार से जो निश्चय हो उनको भी लिख लें। अनन्तर विषय के अनुसार उन भागों के जितने विभाग हो सकें, कर लें और एक के बाद दूसरे को जहाँ जिसके रखने से उत्तम हो क्रमश रक्खें।

४ निश्चित विभागों में से एक २ भाग को लेकर अपनी अभिज्ञता, स्वाधीन चिन्ता और पुस्तक पाठ आदि से जो कुछ ज्ञात हुआ हो उसे सयुक्तिक, सरल, सहज और प्रशस्त भाषा में साफ २ लिखे। एक २ भाग को एक २ अनुच्छेद ही में लिखना उचित है।

५ कितने विद्यार्थी लेख लिखने के समय उल्लेख्य विषय से बहक जाते हैं। यदि प्रसङ्गवश विषयान्तर की बात उनके लेख में आ गई तो मुख्य विषय को छोड़ उसीकी ओर झट झुक पड़ते हैं और उसीका वर्णन करने लगते हैं। यह कभी होना नहीं चाहिये। अगर आवश्यकतावश विषयान्तर की बात चली आवे तो उसको साधारणरूप से लिख कर मुख्य विषय पर फिर आ जाना चाहिये।

६ जिस भाव को लिखे उसकी पुष्टि के लिये तर्क, युक्ति, प्रमाण, दृष्टान्त, कथा, उदाहरण, सारगर्भित उक्तियाँ और ऐसी ही उसके मण्डन की जितनी बातें हों लिखना आवश्यक है।

७ लेख में ऐसा कभी न होना चाहिये कि जो भाव अन्यत्र व्यक्त किया गया हो उसीके विरुद्ध उसी लेख में अन्यत्र भाव प्रकाशित हो जाय। भाव की समानता के साथ भाषा की समानता कभी न भूलनी चाहिये।

८ मन के भाव को संक्षेप से प्रकाश करना उत्तम है। व्यर्थ के शब्दाडम्बर से पांडित्य प्रकट करना और अलङ्कार का आभास दिखलाना अनुचित है। रचना की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिये। उसमें व्यर्थ की पुनरुक्ति, अनावश्यक, अप्रचलित, द्व्यर्थक और दुर्बोध शब्दों का तथा लम्बे चौड़े वाक्यों का प्रयोग कभी करना नहीं चाहिये। इसके सम्बन्ध में विद्वद्वर प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने सुप्रसिद्ध सरस्वती मासिक पत्रिका में जो अपना मत लिखा है वह यहाँ उद्धृत करता हूँ।

लेखक को सरल और सुबोध भाषा में अपना वक्तव्य लिखना चाहिए। उन्हें [illegible] चाहिए [illegible] रहे हैं। [illegible] को भाषा [illegible] है। [illegible] शब्दों, [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] लिखना [illegible] सकता। [illegible]

किसी लेख या पुस्तक की रचना की गई हो तो ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिसमें अधिकांश पाठक समझ सकें। तभी रचनाकार का उद्योग सफल होगा—तभी उससे पढ़ने वालों के ज्ञान और आनन्द की वृद्धि होगी।

९ लेख में बाहरी और भीतरी सुन्दरता लाने के लिये शब्दों का उचित प्रयोग, वाक्यों का सुविन्यास, विराम-चिन्हों पर विशेष ध्यान, अनुच्छेदों (Paragraph) का यथार्थ निर्णय, अर्थों की स्पष्टता, भावों की गम्भीरता और विचार की उत्तमता आवश्यक है। इस विषय में उपर्युक्त "शिक्षा" नामक पुस्तक का यह अभिमत है—

रचना शिक्षाके सम्बन्धमें और भी कई बातें हैं। रचना विधिबद्ध, सम्पूर्ण, विशद और सरल भाषा में लिखना उचित है। अलंकारकी अधिकता वा कष्ट-कल्पना अच्छी नहीं होती। जो सम्भव और सुलभ है, वही बहुत है। वर्णित विषय समझाने के लिये ही उदाहरणादि का प्रयोजन है, इसलिए उनका सुप्रसिद्ध होना ही उचित है। पाण्डित्य दिखानेके लिए साधारण लोगोंके अपरिज्ञात उदाहरणोंका प्रयोग अनुचित है। एक बात और सदा स्मरण रखना कर्त्तव्य है। रचनामें आवश्यक बातें यथासाध्य संक्षेपमें कहना, लिखना उचित है, क्योंकि लेखक और पाठक दोनोंकी शक्ति और समय सीमाबद्ध है। और वृथा आडम्बरके लिये बहुत शब्दोंके प्रयोगमें केवल समय ही नहीं जाता, परन्तु और भी दोष हैं। थोड़ी बातोंमें काम निकालना अत्यावश्यक है।

परन्तु अधिक बातें करने और सुननेका अभ्यास हो जाने पर, एक बातमें काम लेने और काम करनेकी शक्ति क्रमशः घट जाती है। जिस प्रकार उच्च स्वर सुननेका अभ्यास होनेसे धीमा स्वर भली भाँति नहीं सुन पड़ता, और अधिक प्रकाशमें देखने का अभ्यास हो जानेसे धीमे प्रकाशमें अच्छी तरह नहीं देख पड़ता उसी प्रकार यह भी है।

१० लिखने के समय शब्दों का, वाक्यों का, मुहावरों का, व्याकरण का और अर्थ का हमेशा खयाल रखना चाहिये। लेख समाप्त होने पर ध्यानपूर्वक एक दो बार पढ़ कर उसमें आवश्यक संशोधन करना भी कभी न भूलना चाहिये।

भूमिका (PREFACE.)

रचना-विचार के प्रथम भाग में उदाहरण-स्वरूप नाम मात्र के कुछ भिन्न २ लेख दिये गये हैं परन्तु उनसे लेख-सम्बन्धिनी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती थी। अतएव, मैंने इसका द्वितीय भाग भी शीघ्र ही निकालने का विचार किया और प्रथम भाग में इसकी सूचना भी दे दी। पर जब तक द्वितीय भाग न निकला तभी तक प्रथम भाग का दूसरा संस्करण भी हो गया और द्वितीय भाग न निकल सका। इस भाग के शीघ्र न निकलने का कारण यह हुआ कि मुझे इसके लिखने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। क्योंकि, इसमें सांसारिक प्रायः यावतीय आवश्यक विषयों के लेख लिखे गये हैं। अतएव, इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में अत्यधिक समय लगाने के कारण अत्यधिक विलम्ब भी हो गया। अस्तु।

इस भाग में प्रबन्ध के वर्णनात्मक, विवरणात्मक और विचारात्मक नामक तीनों प्रकारों के सभी भेदों और उपभेदों पर लेख लिखे गये हैं। छात्रों के सुविधार्थ इन तीनों का क्रम भी वैसा ही रक्खा गया है जैसा कि ऊपर लिखा है। क्योंकि ये क्रमशः सरल, साधारण और कठिन हैं। जिस प्रकार भिन्न २ प्रकार के लेखों के लिये भिन्न २ विषय-विभाजन करना चाहिये वह साधारण रूप से यथा-स्थान उदाहरण के लेखों ही में स्पष्ट है। अतएव, वे अलग २ न लिखे गये।

इस पुस्तक में प्राणि-सम्बन्धी, खनिज, कृत्रिम, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, काल्पनिक, धार्मिक, भौतिक और नैतिक सभी प्रकार के लेख आ गये हैं। जो लेख इसमें लिखे और संग्रह किये गये हैं वे सभी आवश्यक और प्रयोजनीय हैं। कितने लेख तो इसमें ऐसे हैं जो कई बार कई परीक्षाओं में पूछे जा चुके हैं। विषय सभी पठनीय, मननीय और विचारणीय हैं। एक बार इन्हें पढ लेने से कोई भी ऐसा नूतन विषय न आवेगा जिसके लिखने का रंग-ढंग न मालूम हो। भिन्न २ विषय के लेखों के साथ अभ्यासार्थ वैसे ही कुछ लेख-विषय भी दे दिये गये हैं जो विद्यार्थियों के बडे काम आवेंगे।

यदि कोई इस एक ही पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ ले तो वह विज्ञ हो जा सकता है और प्राय सभी विषयों में कुछ न कुछ उसका दखल भी हो जा सकता है। यह लेख-पुस्तक होने पर भी विषय, भाव और वर्णन की विशेषता के कारण एक उत्तम पाठ्य पुस्तक कही जा सकती है। इसकी भाषा भी सरल और सुबोध रक्खी गई है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे बहुत से अंग्रेजी, बँगला और हिन्दी के प्रबन्ध ग्रन्थों, बहुत सी रीडरों और अन्यान्य बहुत सी छोटी बडी कई पुस्तकों तथा लेखों से बहुत कुछ साहाय्य मिला है। इनके लिये मैं उनके लेखकों तथा सम्पादकों का बडा आभारी हूँ। पुस्तक के प्रकरण और क्रम के विभाग में मैंने Progressive Essays और First Book of Bengali Composition का अनुसरण किया है। पर इसमें स्वतन्त्रता से घटाया बढाया और उलटा-पुलटा है। मैंने इसमें स्पष्टता के लिये साधारण से भी साधारण भेद कर दिये हैं।

पुस्तक के महत्व बढ़ाने और भिन्न २ हिन्दी-लेख शैली का नमूना मिलने आदि के लिये इसमें हिन्दी के प्राचीन और नवीन, बड़े बड़े माननीय लेखकों के छात्रोपयोगी लेख प्रकरणानुसार यथा-स्थान ज्यों के त्यों उद्धृत किये गये हैं। इसके अलावे अन्यान्य हिन्दी के सुलेखक मेरे मित्रों ने भी अपना २ देकर मुझे अनुगृहीत किया है। अतएव मैं उद्धृत लेखों के लेखकों, आज्ञादाताओं और अधिकारियों तथा लेख-लिखने वाले अपने मित्रों को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

मेरे सभी लेख विषय-विभाग कर लिखे गये हैं। दो ही चार ऐसे लेख हैं, जिनमें विषय विभाग नहीं है। इन लेखों में कुछ ऐसे हैं जो पुराने और भिन्न २ समय के लिखे हुए हैं और कुछ ऐसे हैं जो घटाये बढ़ाये गये हैं। अन्यान्य सभी लेख एक समय के लिखे हुए हैं। इससे इनके भाषा, भाव और शैली में कुछ तारतम्य है। अन्यान्य विद्वानों के जो लेख हैं वे प्रायः बिना विषय विभाग के हैं। इस ग्रन्थ में स्कूल कालेज के उपयोगी सब प्रकार के सरल और गम्भीर लेख आ गये हैं।

मेरा विचार था कि इस भाग में छात्रोपयोगी जितने लेख आवश्यक हों सभी आ जाँय और परीक्षा पत्रों के लेख सम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर भी दे दिये जाँय। किन्तु इच्छा न रहने पर भी ग्रन्थ इतना बढ़ता गया तो भी लिखे हुए सब लेख इसमें न आ सके और न प्रश्नोत्तर ही। इसीसे कुछ नमूने के साथ और कुछ केवल विषय विभाग के साथ लेखों की सूची भी इसमें दी न जा सकी। मैं यथा-समय शीघ्र ही इसकी पूर्ति के लिये एक और प्रबन्ध-सम्बन्धी पुस्तक

मुझे जहाँ तक ज्ञात है अब तक हिन्दी संसार में ऐसी पुस्तक नहीं निकली है। मेरे "भारत के इतिहास" और "रचना विचार" का प्रथम भाग समालोचकों और विद्वानों को जैसे अपने ढंग के अद्वितीय जँचे हैं वैसे ही, आशा है, यह भी जँचेगा। इससे यदि लोगों को कुछ भी लाभ पहुँचे तो मैं वर्षों के दिन-रात का अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

पुस्तक के लिखने, सम्पादन करने, छपने और संशोधन करने आदि में बड़ी शीघ्रता की गयी है। अतएव, भाषा-भाव-सम्बन्धिनी कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं। पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे।

ग्रन्थमाला मालाकार,

राम दहिन मिश्र।

सूचीपत्र (CONTENTS.)



प्रथम अध्याय (COURSE I)

वर्णनात्मक प्रबन्ध (DESCRIPTIVE ESSAYS)

प्रथम परिच्छेद (Chapter I)

चेतन पदार्थविषयक प्रबन्ध (Essays on animate objects)

प्रथम पाठ—स्थलचर जीव (*Land animals*)

(क) गृहपालित पशु (Domestic Animals)

बैल (The Ox) १
भैंस (The Buffaloe) ३
घोड़ा (The Horse) ५
ऊँट (The Camel) ८
कुत्ता (The Dog) ११

(ख) वन्यजन्तु (Wild Animals)

हाथी (The Elephant) १५
बाघ (The Tiger) १७
सिंह (The Lion) १९
बन्दर (The Monkey) २२

(ग) मनुष्य (Man)

अँग्रेज (Englishman) २४
प्रोफेसर राममूर्ति (Professor Ram Murti) २५

द्वितीय पाठ—जलचर जीव (Water Animals)

मछली (The Fish) २८
घड़ियाल (The Crocodile) ३१

तृतीय पाठ—खेचर जीव (The Birds)

पक्षी (The Birds) ३२
तोता (The Parrot) ३५
सहरस (The Ostrich) ३६

चतुर्थ पाठ—कीट पतंगादि (Worms and Insects)

मधुमक्षिका (The Bee) ३८
चींटी (The Ant) ४०
मकड़ा (The Spider) ४३
तितिली (The Butterfly) ४४

पञ्चम पाठ—सरीसृप (Reptiles)

साँप (The Snake) ४५
छिपकिली (The Lizard) ४८

द्वितीय परिच्छेद (Chapter II)

अचेतन पदार्थ वि० प्रबन्ध (Essays on Inanimate Objects)

प्रथम पाठ—खनिजादि वस्तु (Metals and Minerals)

सुवर्ण (Gold) ५०
नमक (Salt) ५१

द्वितीय पाठ—नैसर्गिक वस्तु (Phenomena)

सूर्य, चन्द्र, धूमकेतु और तारे (Sun, Moon, Comet & Stars) ५३

तड़ित्, विद्युत् और वज्रपात (Lightning & Thunder-storms) ... ५७
इन्द्रधनु (Rainbow) .. ५६

तृतीय पाठ—मनुष्य-कृत पदार्थ (*Artificial*) *Objects*)

ताजमहल (The Taj Mahal) ६१
पुस्तक (Book) ६३
किला (Fort) ६५

चतुर्थ पाठ—प्राकृतिक वस्तुयें (*Natural Objects*)

नदी तट पर सायंकाल (An evening on the bank of a river) ६७
समुद्र (The Sea) .. ६८
गंगानदी (The Ganges) ७०
बराबर पहाड़ (The Barabar Mountain) ७२

पञ्चम पाठ—स्थान, नगर आदि (*Cities, House etc*)

पाटलिपुत्र (Patna City) ७५
तपोवन (Hermitage) .. ८२
पगार (A Village) ८३

छठा पाठ—काल (*Seasons Time etc*)

भारत की ऋतुयें (The Seasons in India) ८६

सप्तम पाठ—पर्व (*Festivals*)

श्रीपञ्चमी (Shri Panchami) ६०
दुर्गापूजा (The Durgapuja) .. ६३
मोहर्रम (Moharrum) ६६

तृतीय परिच्छेद (Chapter III)
उद्भिद्-विषयक प्रबन्ध (Essays on vegetable)

प्रथम पाठ — वृक्ष (Trees)

वटवृक्ष (The Banyan Tree) ... १०२

द्वितीय पाठ—फल (Fruits)

आम (The Mango) ... १०४

तृतीय पाठ—लता (Creepers)

पान (Betelnut) ... १०६

चतुर्थ पाठ—पौधा (Plants)

चाय का पौधा (The Tea Plant) ... ११०

पञ्चम पाठ—फूल (Flowers)

गुलाब (Rose) ... ११२

षष्ठ पाठ—घास (Grass)

ईख (Sugarcane) ... ११५

द्वितीय अध्याय (COURSE II)
विवरणात्मक प्रबन्ध (NARRATIVE ESSSAYS).
प्रथम परिच्छेद (Chapter 1)
ऐतिहासिक प्रबन्ध (Historical Essays)

प्रथम पाठ—पौराणिक घटना (Mythological events)

महाभारतकी कथा (Story of the Mahabharat) ११८

द्वितीय पाठ—आधुनिक घटना (Historical Events)

विक्टोरिया का राज्य (The Reign of Queen Victeria) ... १२०

द्वितीय परिच्छेद (Chapter II)

जीवनचरितात्मक प्रबन्ध (Biographical Essays)

प्रथम पाठ—प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी (*Lives of Great men*)

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	१२३
सुकरात का जीवनचरित्र	१२७
जमसेदजी नसरवानजी ताता	१३०
श्रीयुत बाबू हरिनाथ दे	१३२

दूसरा पाठ-प्रसिद्ध स्त्रियों की जीवनी (*Lives of Great Women*)

दमयन्ती	१३५
अहिल्याबाई	१३६

तृतीय परिच्छेद (Chapter III)

अनैतिहासिक घटना (Incidental Essays)

प्रथम पाठ—परिभ्रमण (*Travels*)

सम्राट् की शुभयात्रा (The Happy Voyage of His Majesty the King)	१४१
रेल का सफर (A Journey by Rail)	१४४
नाव की सफर (A Journey by Boat)	१४६

दूसरा पाठ—समसामयिक घटना (*Contemporary Events*)

बाढ़ (A Flood)	१५२
अगलग्गी (A Fire)	१५४
रेलवे दुर्घटना Railway accident	१५५

तृतीय पाठ—कथा कहानी (*Tales, Fables etc*)

राजा दिलीप की गोसेवा—कथा (Tale)	१६१
चरवाहे बेचारा—गल्प (Story)	१६३

सींग और पीछे एक पुच्छ होता है। गले का कुछ चमड लटका रहता है जिसे गलकम्बल वा झालर कहते हैं। उसका प्रसिद्ध नाम लोर है। यह चार पाँच हाथ लम्बा और तीन चार हाथ ऊँचा होता है। देह भारी और सु गठित होती है काला, लाल, उजला, भूरा, चितकबरा आदि अनेक प्रकार के रंग होते हैं। आँखें बडी बडी और नथने चौडे होते हैं। समूचा शरीर रोमों से ढँका रहता है। पैर बडे मजबूत होते हैं जिन पर समूचे शरीर का भार लदा रहता है। सींगों से अपने शत्रुओं का सामना करता है और पूँछ से मच्छड आदि हटाता है। जीभ खुरदरी होती है और दाँत की केवल एक ही पंक्ति रहती है।

वासस्थान—यह प्राय भूमण्डल के सभी स्थानों में रहता है। देश विदेश से इसके आकार-प्रकार में भेद होता है। पालतू की अपेक्षा बनैले बैल बहुत कम मिलते हैं।

स्वभाव और गुण—बैल की आयु २५ वर्ष की होती है। पर बहुत कम बैल इतने वर्ष जीते हैं। बैल बडा बलिष्ठ होता है। इसकी चाल धीमी होती है किन्तु भागने के समय बडी तेज हो जाती है। इसका आहार घास-पात है। यह एक बार खाकर पागुर करके पचाता है। यह स्वभाव का सीधा होता है। कोई २ बैल मरखाहा और कोई २ गर होता है।

उपकार और अपकार—बैल खेत जोतता है, बोझा ढोता है और भरी हुई गाडी खींचता है। यह काम बहुत करता है और बडा मेहनती होता है। इससे व्यापार में बडी सुविधा होती है। यह जब कभी बिगडता है तब आदमी को मार बैठता है, यह इसकी बुरी आदत है। इसके समान उपकारी

लाभदायक पशु दूसरा कोई नहीं है। इसके गोबर, मूत्र, चाम, हड्डी, खुर, सींग आदि सभी चीज़ें काम में आती हैं।

भैंस (The Buffaloe)

जाति या श्रेणी—भैंस भी चतुष्पद स्तनपायी, शाकभोजी, पागुर करने वाली और मेरुदण्ड वालों की श्रेणी में है। भैंस के बच्चे को नर-मादे के मोताबिक पाड़ा और पाड़ी कहते हैं।

आकार-प्रकार—भैंस भी अनेकांश में बैल के ही समान है। पर यह गाय और बैल की अपेक्षा डील-डौल में बड़ी होती है। भैंस छोटी भी होती है। इसके सभी अंग दृढ़ और स्थूल होते हैं। ललाट चौड़ा होता है। थुथने और नथने भी बड़े बड़े होते हैं। जीभ बहुत कड़ी होती है। दाँत नीचे की ओर जिनमें आठ सामने के चरने के लिये और बगल बगल के चार चार चबाने के लिये होते हैं। इसे कँधौल और लोर कुछ भी नहीं होता। सींग बड़ी मज़बूत, चौड़ी और घेरदार होती है। भैंस अधिकतर काली और कोई २ भूरी भी होती है। दुमें छोटी और दृढ़ होती हैं। खुर फटे रहते हैं। चमड़ा मोटा, चिकना और काला होता है। बाल बड़े और झबर होते हैं। गाय से बहुत बड़ा इसका थन होता है। दूध भी इसमें गाय से अधिक रहता है।

वासस्थान—प्रायः एशिया के सब भागों में भैंस मिलती है। स्थान-भेद से आकार, स्वभाव और गुण में भेद होता है। बस्ती के सिवा जंगलों में भी झुण्ड के झुण्ड भैंस मिलती हैं। वनचारी भैंस कद में लम्बी और दुधार होती है।

स्वभाव और गुण—इसकी आयु लगभग ३०–४० वर्ष की होती है। पर पचीस के ऊपर बहुत कम भैंस बचती हैं। इसकी चाल सीधी, सादी और गम्भीर होती है। स्वभाव गाय या बैल का सा ही होता है। गाय सा यह बच्चों को प्यार नहीं करती। यह गाय सी डँकरती नहीं, किन्तु हँकडती और खुकरती है। मालिक का स्वर पहचानती है और बुलाने के साथ ही दौड आती है। घास, भूसा और उस पर कुछ अन्न मिलने से खूब खा लेती है। आराम करने के समय खाई हुई चीज को पागुर करती है। पोस मान कर घर में रहती है। घाम में रहना पसन्द नहीं करती। गर्मी में जल में डूबी रहती है। डुब्बी लगाये २०० गज तक चली जा सकती है। १२–१२ मास में एक बच्चा पैदा करती है। यह बडी मिलन सार होती है।

उपकार और अपकार—यह गाय ही के समान मनुष्यों के उपकार करती है। इसका दूध अत्यन्त गाढा होता है पर गोदुग्ध के समान सुस्वादु नहीं होता। इसके दूध से घी बहुत पैदा होता है। गरीबों का गुजारा एक भैंस पोसने से चला जा सकता है। बहिला भैंस मनुष्य का जीवित अवस्था में कुछ उपकार नहीं करती। केवल उसका गोबर काम में आता है। मृत देह भी गोजाति के समान ही अनेक कामों में लग जाती है। कभी २ इसकी पूँछ पकड कर लोग नदी पार भी हो जाते हैं। दस ग्यारह बिआन तक यह बिआती है। खुर से सरेस, चमडे से मोट, जूता, हड्डी से छडी और छाते की मूठ, सींघ से कघी और छुरी की बेंट, चर्बी से मोम और पूँछ से ताँत आदि बनती है।

भैंसा—यह बहुत बलवान होता है। बैलों से कई गुना

भारी बोझ ढोता है। कहीं इनसे खेत भी जोता जाता है। ये गाड़ी भी खींचते हैं। भैंस की अपेक्षा इनका दाम बहुत कम होता है। पाड़ा पैदा होने से मालिक को उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी की पाड़ी से। भैंसा बड़ा मरखाहा होता है। दो भैंसों की लड़ाई बड़ी भयानक होती है। भैंसे का क्रोध बड़ा प्रसिद्ध है। १२ वर्ष तक ये बदला लेने की ताक में रहते हैं।

घोड़ा (The Horse)

जाति वा श्रेणी—यह मेरुदण्ड वाले पशुओं में एक है। इसका खून लाल होता है। इसकी गणना चौपायों में है। यह बचपन में दूध पीता है। इसलिये इसको स्तनपायी कहते हैं। यह शाकाहारी है।

वास-स्थान—यह हिन्दुस्तान में हर जगह पाया जाता है। विशेषतः अरब का घोड़ा प्रसिद्ध है। इसमें यह यहाँ अधिकतर पाया जाता है। भुटिया घोड़ा बड़ा मज़बूत होता है। यहाँ भी साधारण तौर पर घोड़ा अच्छा मिलता है। इस की जन्मभूमि कोई निश्चित नहीं है। यह हर जगह पैदा होता और रहता है। कच्छी दरियाई घोड़े का बड़ा नाम है।

आकार-प्रकार—घोड़े का मुँह लम्बा, कान छोटे, गरदन और आँखें बड़ी तथा लम्बी होती हैं। नथने चौड़े और चिपटे होते हैं। दोनों जबड़ों में मज़बूत दाँत होते हैं। जीभ चिकनी और लम्बी होती है। नाकों के छिद्र बड़े और गोल होते हैं। गरदन पर लम्बे २ बाल होते हैं। इन्हें अयाल कहते हैं। इसकी पीठ लम्बी और चौड़ी होती है। आगे का

भाग पतला और कुछ झुका हुआ और पीछे का भाग ऊँचा और मोटा रहता है। इससे सवार को बैठने में बडी सुगमता होती है। पूँछ लम्बे २ वालों का गुच्छा लिये जमीन तक लटकी रहती है। इसके अगले दो पैर सीधे और पिछले दो पैर कुछ टेढे होते हैं। इन पैरों में नीचे ऊपर और बीच में क्रमश तीन जोड होते हैं। इसके खुर फटे नहीं रहते। वरन् एक कटोरे के सदृश गोलाकार रहते हैं। इनमें लोहे की नालें छोटी २ कीलों के द्वारा जड दी जाती हैं, जिसमें चलने में कष्ट न हो। यह नाल इसको अनेक कष्टों से बचाये रखती है। इसका समूचा शरीर छोटे २ चिकने बालों से ढँका रहता है। इसकी बनावट और गठन देख कर मन प्रसन्न हो जाता है। इसकी सुन्दरता प्रशंसनीय होती है। इसका रंग लाल, काला, उजला, भूरा, चितकबरा आदि अनेक प्रकार का होता है। डील-डौल में थोडा छोटा बडा सब प्रकार का होता है। देश-भेद से रंग रूप, सभाव और गुण में अन्तर होता है।

स्वभाव और गुण—इसका स्वभाव बहुत अच्छा और मिलनसार होता है। जो लोग इसे अधिक प्यार करते हैं उनसे यह बहुत हिल मिल जाता है। मालिक को पास आते देख या उनकी बोली सुनके यह भी बोल कर अपना प्यार प्रकट करता है। जब तक मालिक पास या दूर खडा रहता है तब तक यह उनकी ओर आँखें फेर २ कर देखा करता है। इसका शरीर सबल और हलका होता है। इससे यह खूब तेज दौडता है। यह पशुओं में वीर और क्षत्रिय कहा जाता है। प्रभुभक्त तो ऐसा होता है कि स्वामी की रक्षा के लिये अपने को कुछ नहीं समझ[illegible]क तरह से यह प्रभु को बचा लेता है।

जो लोग इसे किसी प्रकार कष्ट देते हैं उन्हें यह कष्ट नहीं देता वरन अच्छे स्वभाव से पेश आता है। जब यह अत्यन्त दुःख पाता है तब बिगड़ कर दाँत काटता, लात चलाता तथा चढ़ने पर गिरा देता है। घोड़ा बड़ा ही कष्ट-सहिष्णु और बहादुर होता है। यह साधारणतः घास भूसा, लेड़ई वगैरह खाकर अपना जीवन धारण करता है। जो लोग इसको पोसते हैं वे और २ दूसरी तरह के खाद्य पदार्थ चना वगैरह दिया करते हैं। अधिक परिश्रमी घोड़ों को आटे का मलीदा भी दिया जाता है। इससे यह मजबूत बना रहता है। यह अपने आहार को एक ही बार में चबाता जाता है और निगलता जाता है। ढोरों और पशुओं की नाईं यह पागुर करके नहीं खाता। सैनिक घोड़े गोले बारूद या हथियारों से डरते नहीं। ये शिक्षित होने पर सरकस आदि में अनेक प्रकार के क्रीड़ा कौतुक दिखलाते हैं। इनकी आयु कम से कम ३० से ४० वर्ष तक की होती है। यह बहुत बलवान, चलने में तेज और परिश्रमी होता है। घोड़ी १८ महीनों में बच्चा देती है। घोड़ा तीन पैर पर खड़ा होता और सोता है। दिन भर में २० कोस तक घोड़े की सफर हो सकती है। पोइया कदम, छोटी कदम, अमैनी, दोगामा आदि चाल सिखाने पर घोड़ा सवार को बहुत आराम देता है। कहने के अनुसार चलना, फिरना, दौड़ना और खड़ा होना है। शिकार की खोज आदि में आहट पा घोड़ा उसकी ओर झट चला जाता है। यह बड़ा बुद्धिमान और चतुर होता है।

उपकार और अपकार—यह मनुष्य का बड़ा उपकारी जानवर है। इस पर लोग चढ़ कर दूर २ तक जाते आते हैं। राजा-महाराजों के यहाँ जोड़ी, चौकड़ी, बग्घी आदि में घोड़े

जोते जाते हैं। बोझ ढोने के काम में भी लाये जाते हैं। कहीं इनसे खेती भी होती है। इसके द्वारा कई मनुष्यों की जान दुश्मनों के घेरे से बच सकती है। यह जबतक जिन्दा रहता है तबतक तो इस तरह से काम आता है और मरने पर इसके चमड़े, खुर तथा पूँछ के बाल मनुष्यों के बड़े २ कामों में आते हैं। कोई २ घोड़ा बहुत कटाहा और कोई २ बहुत लतराहा हो जाता है। इससे मनुष्यों की हानि होती है।

उपसंहार—भारत में घोड़े का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से है। वेद में भी अश्वमेध का उल्लेख है। प्राचीन राजा लोग अश्वमेध यज्ञ करते थे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में घोड़े के गुण-दोषों का लक्षण, विचार और रोग तथा उनकी चिकित्सा के विषय वर्णित हैं। यह गृहपालित पशुओं में बड़ा प्रतिष्ठित है।

ऊँट (The Camel)

श्रेणी वा जाति—ऊँट गोजातीय है। इसमें उसीके समान यह भी चतुष्पद, स्तनपायी, शाकभोजी और पागुर करने वाला पशु है।

आकार प्रकार—ऊँट देखने में बड़ा बुरा लगता है। यह बे-डौल डील का होता है। छ हाथ के लगभग ऊँचा होता है। इसकी गरदन बड़ी लम्बी और टेढ़ी होती है। आँख और कान छोटे २ होते हैं। होठ मोटा, बड़ा और फटा सा रहता है। नीचे का अधर पतला होता है। मुँह लम्बा और दाँत ऊपर नीचे दोनों ओर रहते हैं। बीच में कुबड़ हो जाने से पीठ धन्वाकार मालूम होती है। चढ़ने में बड़ी असुविधा है। ऊँट की टाँगें बहुत लम्बी और थोड़े २ बाल

वाली पूँछ बहुत छोटी होती है । चिपटे पाँव के नीचे गद्दी सा मांस का लोंदा होता है और उसमें नर्म और फटे खुर होते हैं । देह का रङ्ग कुछ पीलापन लिये मटियाला होता है । यह एक बेढब जानवर है । बैठने उठने से इसके घुटने और छाती में घट्टा पड़ जाता है ।

वासस्थान—यह एशिया और अफ्रिका महादेश के उष्ण-प्रधान प्रदेश का जन्तु है । यह अरेबिया, बैक्ट्रिया, तिब्बत और चीन में भी होता है । अन्यान्य स्थानों में भी साधारणतः पाया जाता है ।

स्वभाव और गुण—यह बड़ा ही शान्त प्रकृति का होता है । घास-पात खाता है । खजूर और बबूर के काँटों तक खा डालता है । लोग कहते हैं कि इसकी नाक की हवा से काँटे कोमल हो जाते हैं । यह पागुर करता है । इसका मुँह चलाना बरबस हँसी भी आती है । हमेशा लपलप किया करता है । अगर इससे कोई दुर्व्यवहार करे तो उसे बहुत दिन तक याद रख कर बदला लेता है । ७ वर्ष में जवान हो जाता है । ४०—५० वर्ष तक जी सकता है । इसकी दृष्टि और घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र है । यह बहुत बोझ ढो सकता है । गाड़ी भी खींच सकता है । जब इस पर बहुत बोझ लाद दिया जाता है तब चिल्लाता है और गिरा देना चाहता है । यह तेज नहीं चलता ।

उपकार और अपकार—यह उष्ण मरुप्रदेश का बड़ा ही उपकारी जीव है । यह यात्रियों का प्रधान सहायक है । मरु-प्रदेश की बालुकामयी भूमि पार करने के लिये ऊँट नाव का सा काम देता है । बालू में इसके पैर गद्देदार होने से धँसने

नहीं। इससे ये आसानी से मरु-भूमि पार कर जाते हैं। जान पड़ता है कि ईश्वर ने अरबियों ही के लिये ऊँट की सृष्टि की है। मरुप्रधान देश में वाणिज्य-व्यवसाय और सभ्यता विस्तार में इनसे बड़ी सहायता मिलती है। पहले इन्हीं से डॉक आदि ले जाने में सहायता ली जाती थी। अब भी साड़नी सवारी के काम में कहीं कहीं लायी जाती है। विवाह या राजा महाराजा की यात्रा में इन पर डंके बजते चलते हैं। इनका दूध भी काम मे लाया जाता है। साधुओं की जमात में इन पर बहुत सामान लदा चलता है। यही मरुभूमि में यात्रा का एक मात्र अवलम्ब है। यह अपनी घ्राणशक्ति के बल से पानी की ओर दौड़ कर प्यासे स्वामी के प्राण भी बचाता है। कभी २ आदमी पर बहुत चोट करता है तथा खुरकी और कान पकड़ आदमी को टाँग लेता है।

विशेषता या विचित्रता——यह चलने फिरने में एक बगल के दोनों पैर एक साथ उठाता है। यात्रा में जब ऊँट को कुछ खाने को नहीं मिलता तब कूबर की चर्बी से जीता रहता है। इसीसे यात्रा के आरम्भ में कूबर बड़ा होता है और अन्त में कम हो जाता है। ऊँट बिना पानी पिये कई दिनों तक रह सकता है। क्योंकि अपने पेट के झोझ में वह पानी पीने से अधिक पानी भर लेता है और आवश्यकतानुसार उसमे पेट में पानी बहा देता है। मरुभूमि में जाने के समय यह बहुत पानी पेट में सञ्चित कर रखता है। साँड़नी सौ मील तक एक दिन में जा सकती है। ऊँट तैरना नहीं जानते। वंशी के शब्द से बड़े मुग्ध रहते और बहुत काम करते हैं। ऊँट पश्चिम की ही ओर भागता है।

निकाले हफर हफर हाँफता है। १५–१६ वर्ष कुत्ता ज[illegible]
सकता है। कुत्ती दो मास गर्भ धारण करने के बाद दो चा[illegible]
बच्चे पैदा करती है।

उपकार और अपकार—कुत्ते के समान लाभकारी बहुत कम पशु होते हैं। मनुष्यों को सब प्रकार सहायता पहुँचाने के लिये कुत्ते को बहुत बुद्धि होती है। बड़ा ही स्वामिभक्त, विश्वासी और ईमानदार होता है। इन गुणों से घर स्वामी के घर की रखवाली जी जान से करता है। क्या मजाल कि कुत्ता रहते कोई चीज कोई चुरा ले जाय। यहाँ तक वह ईमानदार होता है कि चोरों के चोरी करने के समय रोटी भात देने पर भी भूँकना बन्द नहीं करता। विवश होने पर जब चोर चोरी कर ले जाते हैं तब उसका पता-सुराग मालिक को दे देता है। अनजान आदमी को घर में पैठने नहीं देता। कितने चरवाहे कुत्ते हैं जो भेड़-बकरियों को पहाड़ पर चराया करते हैं। न्यू फाउण्डलैण्ड कुत्ते तैर कर डूबे हुए [illegible] व्यक्तियों की, सेन्टबर्नार्ड कुत्ते बर्फ़ में पड़े—अधमरे यात्रियों की, तथा इसी प्रकार अनेक तरह की विपत्तियों में पड़े हुए मनुष्यों की जान बचाते हैं। इस सभ्यता और शिक्षा के समय में कुत्ते छड़ी, छाता, लालटेन, चिट्ठी तक एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं। फौजियों की सेवा भी व[illegible] करते हैं। अब तो कुछ कुत्ते हिसाब भी करते हैं और ऐसा [illegible] में पढ़ा गया है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि [illegible] तीक्ष्ण बुद्धि और कार्यकुशल होते हैं।

प्रश्न—[illegible]

देह चुस्त और मजबूत होती है। सेंट बर्नार्ड, न्यूफाउण्ड-लैण्ड, ग्रेहाउण्ड, स्पेनियल, बुलडाग और लैपडाग जाति के कुत्ते प्रसिद्ध हैं। इनके रंग, रूप, बल, स्वभाव और गुण में भेद होता है।

वासस्थान—यह प्रायः पृथ्वी के सब भागों में भिन्न २ रङ्ग रूप में पाया जाता है।

स्वभाव और गुण—यद्यपि कुत्ता बहुत भोजन का प्रेमी है तथापि सन्तोषी भी बड़ा है। जब यह जंगली रहता है तब बड़ा ही भयानक और घातक बना रहता है। यहाँ तक कि बाघ से भी सामना करके मार बैठता है। पालने से बड़ा ही पोस मानता है और ऐसा स्वामिभक्त बन जाता है जिसकी तुलना नहीं हो सकती। बहुत दिनों के बाद भी अपने स्वामी को देख नाचने कूदने लगता है। इसकी घ्राणशक्ति बड़ी तीव्र होती है। शिकार का पाँव सूँघ कर उसके पीछे दौड़ मारता है। यहाँ तक कि हवा से भी गन्ध लेकर पीछा किये चला जाता है। कुत्तों के कामों से उसकी विलक्षण बुद्धि का पता मिलता है। कुत्ता सभ्य, असभ्य, परिचित और अपरिचित का भेद बहुत अच्छी तरह समझता है। इससे वह मैले कुचैले कपड़े वालों और अपरिचितों को देख कर भूँकने लगता है। बहुत तेज और साहसी तथा निर्भय होता है। शिकार का भी गुण इसमें विशेष है। इसका सोना और जागना भी बहुत प्रसिद्ध है। कितना ही सोया रहे पर जरा सी आवाज होते ही उठ खड़ा होता है। यह भी जीभ से पीता है। इसे गर्मी बर्दाश्त नहीं होती। गर्मी के दिनों में जल और ठंढी जमीन को ढूँढते फिरता है और जीभ-

चीर, और खाने के और' हैं। पीठ ढालुवाँ होती है। रीढ़ कुछ निकली रहती है। आगे के भाग की अपेक्षा पीछे का भाग झुका होता है। पैर मोटे २ खम्भे के समान होते हैं। नीचला भाग चौड़ा, गोल और नाखून वाला होता है। पीछे एक लम्बी पूँछ होती है। उसके अन्त में बालों का एक गुच्छा होता है। इसीसे हाथी देह झाड़ता और किसीको मारता है। एशिया के हाथी के कान छोटे और अफ्रिका के हाथी के कान बड़े होते हैं। हिन्दुस्तानी हाथी काला होता है पर श्याम और ब्रह्मदेश में सफेद रंग का भी हाथी होता है।

वासस्थान—ब्रह्मा, श्याम, आसाम, लङ्का में कम और एशिया तथा अफ्रिका में हाथी बहुत पाये जाते हैं। भारत के हाथी प्रसिद्ध हैं। देश-भेद से इनके रंग रूप भिन्न २ होते हैं। इनके पकड़ने का ढंग बड़ा विचित्र है। जिस जंगल में हाथी रहते हैं उसमें उनके आने जाने का रास्ता तजवीज करके गड्ढे खोद दिये जाते हैं। उनपर घास आदि बिछा कर ऐसा बना दिया जाता है जिसमें हाथी को वे गड्ढे बराबर ज़मीन के से ही मालूम पड़ें। फिर हथिनी का लगाव का लोभ देकर उधर उन्हें आह्वान किया जाता है। जब वे आते हैं तब गड्ढे में गिर पड़ते हैं। कुछ दिनों तक उन्हींमें पड़े पड़े निर्बल हो जाते हैं तब मुँह बांध कर उन्हें निकाल लेते हैं और पोस पाल कर अपने काम लायक बना लेते हैं।

स्वभाव और गुण—हाथी की पूरी आयु १२० वर्ष की है, पर कोई कोई १५० वर्ष तक भी जीता रहता है। इससे
भी हाथी को जीता सुना गया है। हाथी देह के
भी होता है। हाथी बोझ खूब जानता है और

(ख) वन्यजन्तु (*Wild Animals*)

हाथी (The Elephant)

जाति वा श्रेणी—हाथी चतुष्पद, स्तनपायी और शाकाहारी है। यह स्थूलचर्मवालों की श्रेणी में है। यह स्थलचर जीवों में सब से बडा है।

आकार प्रकार—हाथी की देह बडी विशाल होती है। ऊँचाई में ८ से १८ फीट तक और लम्बाई में भी उसीके अनुसार हाथी होता है। यह मोटा ताजा भी खूब होता है। कोई कोई हाथी देखने में सुन्दर और कोई २ विरूप होते हैं। इसका मस्तक विशाल, आँखें बहुत छोटी और कान सूप के जैसे होते हे। इसकी गरदन देह की अपेक्षा बहुत छोटी होती है। इसी से परमेश्वर ने कृपा कर एक बहुत लम्बी सूंड इसे दे दी है। हम लोग हाथ से जो काम लेते हैं, वही काम यह अपनी सूंड से लेता है। कोई चीज उठाना, चारा खाना, पानी पीना, देह पर पानी छींटना, सूँघना आदि सब काम बडी आसानी से इसीके द्वारा वह कर लेता है। इसीसे इसको 'करी' और 'हस्ती' कहते हैं। सूंड में दो छिद्र होते हे। इन्हीं छिद्रों में पानी खींच कर फिर मुख में डालता है। सूंड और मुख दोनों से पीने के कारण इसका नाम द्वीप भी है। जब यह जमीन सूँघने लगता है तब उसमें हवा के पैठने से मनोहर शब्द होता है। सूँड की उपमा जंघा से दी जाती है। भीतर के चबाने वाले दाँतों के अतिरिक्त हाथियों के दो बडे और दाँत होते हैं। हथिनियों के ये दाँत नहीं होते। जो आदमी ऊपर का भाव दूसरा और भीतर का भाव दूसरा रखता है उस पर यह कहावत कहते हैं कि 'हाथी के दाँत दिखाने के

कंघी, खड़ाऊँ, छड़ी की मूठ आदि चीजें बनती हैं। हाथीदाँत की चीजें बड़ी बेशकीमत और खूबसूरत होती हैं। हाथी मरने पर भी अपने मालिक को अपनी देह से रुपये दिलवाता है। उसकी एक व एक जमा डूबने नहीं देता। वह जब मदैला हो जाता है तब लोगों को बहुत नुकसान पहुँचाता है। इसके सिवा पालतू हाथी से कोई अपकार नहीं होता। इसके व्यापार से भी खूब नफा होता है। एक कहावत है "ऊख की सी खेती और हाथी का सा व्यापार कोई नहीं है।" हाथी के सम्बन्ध की बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

बाघ (The Tiger)

जाति या श्रेणी—बाघ चतुष्पद, स्तनपायी, मांसाहारी और शिकारी है। सिंह की अपेक्षा यह बिडाल से बहुत कुछ मिलता है। इससे यह बिडाल ही की श्रेणी में गिना जाता है। कोई २ इसे सिंह की श्रेणी में ले जाते हैं।

आकार प्रकार—बाघ सिर से पूँछ तक लम्बाई में चार पाँच हाथ के लगभग होता है। इसकी पूँछ की लम्बाई शरीर के बराबर होती है। यह चार फीट ऊँचा भी होता है। सिंह और बाघ डीलडौल में समान ही होते हैं। पर कोई २ बाघ सिंह से बड़ा होता है। शरीर की बनावट बिडाल की सी ही होती है। यह देखने में सुन्दर और भयानक मालूम होता है। इसका शरीर पीला और कोहिया धारियों के रंगों से रँगा रहता है। मस्तक और पीठ पर काले २ लम्बे लिखे दाग होते हैं। छाती और पेट के पास [illegible] । [illegible] तक के बाघ १०—११ हाथ लम्बे और [illegible] इसका

मालिक को खूब पहचानता है। महावत के आज्ञानुसार काम करता है। धीर, गम्भीर और सहनशील होने पर अगर इससे कोई बुराई करे तो बदला खूब लेता है। क्रोध करने पर पागल हो जाता है और अपकारी को दाँत और पैर से कुचल देता है। हाथी की बुद्धि, स्मरणशक्ति और स्वामिभक्ति प्रशंसनीय होती है। जङ्गली हालत में ये दल बाँध कर रहते हैं। बड़े २ बलवान हाथी दल के मुखिया होते हैं। इनका प्रभुत्व सबों पर रहता है। बीच में बच्चों और हथिनियों को रख कर चारे के लिये झुंड बाँध कर सब बाहर होते हैं। ये दिन में छिपे रहते हैं और रात को बाहर निकल कर खेतिहारों की खेती चौपट कर डालते हैं। पेड के डाल, पत्ते, छाल और घास भी खाते हैं। ऊख और महुआ भी खूब चाव से खाते हैं। चावल का दाना हाथी को पिंडाढी में दिया जाता है। मलीदा भी कभी २ इसे दिया जाता है। हथिनी १८ मास गर्भ धारण करने के बाद एक बच्चा पैदा करती है। हाथी पानी में रहना अधिक पसंद करता है और उसमें घंटों सूँड निकाल कर डूबा रहता है। यह संगीत का भी बहुत प्रेमी होता है। गम्भीरता में इसकी गम्भीर गति की उपमा दी जाती है।

उपकार और अपकार—प्राचीन समय में हाथी युद्ध के काम में आते थे। वीर इसी पर बैठ कर लडते थे। आजकल इससे अनेक प्रकार के बोझा ढोने और खींचने का काम लिया जाता है। बरात में सवारी का काम भी लिया जाता है। हाथी जब खूब हौदे और झूल से सजाया जाता है तब उसकी बडी शोभा होती है। इस पर चढ कर बाघ आदि का शिकार भी किया जाता है। इसकी हड्डी से छूरी की बेंट,

कंघी, खड़ाऊँ, छड़ी की मूठ आदि चीज़ें बनती हैं। हाथीदाँत की चीज़ें बड़ी बेशकीमत और खूबसूरत होती हैं। हाथी मरने पर भी अपने मालिक को अपनी देह से रुपये दिलवाता है। उसकी एक व एक जमा डूबने नहीं देता। वह जब मरैला हो जाता है तब लोगों को बहुत नुकसान पहुँचाता है। इसके सिवा प्रायः हाथी से कोई अपकार नहीं होता। इसके व्यापार से भी खूब नफा होता है। एक कहावत है "ऊख की सी खेती और हाथी का सा व्यापार कोई नहीं है।" हाथी के सम्बन्ध की बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

बाघ (The Tiger)

जाति या श्रेणी—बाघ चतुष्पद, स्तनपायी, मांसाहारी और शिकारी है। सिंह की अपेक्षा यह बिडाल से बहुत कुछ मिलता है। इससे यह बिडाल ही की श्रेणी में गिना जाता है। कोई २ इसे सिंह की श्रेणी में ले जाते हैं।

आकार प्रकार—बाघ सिर से पूँछ तक लम्बाई में चार पाँच हाथ के लगभग होता है। इसकी पूँछ की लम्बाई शरीर के बराबर होती है। यह चार पाँच फीट ऊँचा भी होता है। सिंह और बाघ डीलडौल में समान ही होते हैं। पर कोई २ बाघ सिंह से बड़ा होता है। शरीर की बनावट बिडाल की सी ही होती है। यह देखने में सुन्दर और भयानक मालूम होता है। इसका शरीर पीत और लोहित वर्णों के रंगों से रँगा रहता है। बगल और पीठ पर काले २ लम्बे तिर्छे दाग होते हैं। मुख और पैर के बाल सफेद होते हैं। सुन्दर बन के बाघ १०-११ हाथ लम्बे और तीन हाथ ऊँचे होते हैं। इसका

मुखमण्डल गोलाकार, दाँत बडे चोखे, कल्ले मजबूत, पूछ लम्बी और पजे भी चोखे और मज़बूत होते हैं।

वासस्थान—यह एशिया के ग्रीष्म-प्रधान देशों में रहता है। विशेषत भारत में और उसके निकटवर्ती द्वीपों में बाघ बहुत होते है। *सुन्दरवन में रायल बाघ होते हैं।* बाघ प्राय ऐसी ही जगहों में पाया जाता है जहाँ कोई जलाशय के पास जङ्गल हो। स्थान-भेद से इनमें भेद होता है। आसाम के जङ्गलों में एक प्रकार का चीता बाघ होता है। बाघ का पकडना बडा भयानक होता है। भेड और बकरे का प्रलो-भन देकर यह जाल में फसाया जाता है। अगर कहीं जाल टूट गया तो जान बचनी मुशकिल हो जाती है। चीन के लोग बक्स में ऐनक रख कर इसे पकडते हैं। बाघ कूद फॉद कर अपने प्रतिबिम्ब पर टूट पडता है और पकड लिया जाता है। अग्रेज और कुछ भारतीय राजे महाराजे बाघ का शिकार बहुत पसन्द करते हैं।

स्वभाव और गुण—बाघ की आयु ५०-६० वर्ष की होती है। बाघ बहुत ही प्रचण्ड और बली होता है। यह कहना कठिन है कि बाघ और सिंह में कौन अधिक बली होता है। बाघ में सुनने की शक्ति बडी तीव्र होती है। यह बडे २ जानवरों को मार कर पीठ पर ले भागता है। सिंह ही का सा इसका भी स्वभाव देखा जाता है। इसका गरजना बडा भयानक होता है। सिंह और बाघ अत्यन्त ही निष्ठुर, क्रूर और घातुक होते हैं। शिकार मार-कर यह पहले कठ का रक्त पीता है। फिर उसको फाड कर खाता है। बाघ भी भालू की तरह लूक और मशाल से डरता है और बाजे से भी भागता है। जब शिकार पर चोट करता है तब खूब गरजता है। बाघ तैरना

भी अच्छा जानता है। पोसने से पालुआ हो सकता है पर विश्वासघाती हो जाता है। बाघिनी एक बार दो चार बच्चे पैदा करती है। जब इसका बच्चा कोई चुरा लेता है तब इसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहता। बाघ जंगल की घासों में एक दम छिप जाता है और दबक २ कर फिरता रहता है।

उपकार और अपकार—बाघ का छाल पवित्र समझा जाता है। चीन में इसकी गद्दी तैयार होती है। साधु सन्यासी इस पर बैठ कर पूजा पाठ और ध्यान किया करते हैं। जीभ और नह दवा के काम में आते हैं और वे विषैले समझे जाते हैं। यह सिखलाने पर अनेक प्रकार का खेल दिखलाता है। जब यह जंगल में रहता है तब तो अनेक जीवों को मारता ही है पर कभी २ गाँवों में भी आ आकर घरैले पशुओं को ले भागता है। यह मनुष्यों को भी जब कभी मार बैठता है।

सिंह (The Lion)

जाति या श्रेणी—सिंह चतुष्पद, स्तनपायी, मांसाहारी और बड़ा ही शिकारी जन्तु है। यह बिडाल की श्रेणी में आता है। मांसाहारियों में प्रधान है। इससे प्रबल कोई और पशु नहीं है। इसका वन में पशुओं पर एकाधिपत्य रहता है। इससे इसे मृगराज, वनराज और मृगेन्द्र कहते हैं।

आकार-प्रकार—सिंह जैसा ही रूपवान होता है वैसा ही भयङ्कर भी होता है। बड़े बड़े सिंहों की लम्बाई नाक से पूँछ तक १०–१२ फीट और उसमें पूँछ की लम्बाई चार पाँच फीट की होती है। सिंह के मुखमण्डल और मस्तक बड़े विशाल होते हैं। सिर और गरदन पर काले २ लम्बे २ और झब्बेदार बाल होते हैं। सिंहनी सिंह से छोटी होती है और

उसको ऐसे बाल नहीं होते। शरीर पर के बाल छोटे ? विरल और उतने काले नहीं होते। पूँछ के अन्त में बालों का एक झब्बा रहता है। सिंह कई प्रकार का होता है। इससे इनके रङ्ग में भी फरक होता है। पर प्राय सिंह का रङ्ग कुछ पीला सा होता है। काठियावाड और गुजरात के सिंह की गरदन पर इतने बाल नहीं होते। इसके दाँत लम्बे, चोखे और ऐसे चुभने वाले होते हैं जिनसे वह अपने शिकारों के टुकडे-२ कर डालता है। आँखें गोल और चमकीली, मूछें बडी और कडी तथा नाक मोटी और खोटी होती है। आगे से पिछला भाग कुछ पतला सा होता है। पैर मजबूत और उसके पजे गद्दीदार होते हैं। वह पंजों में अपने लम्बे और तेज नाखूनों को छिपा सकता है और बाहर कर सकता है। पैर की अँगुलियों में मास की गद्दी होने से इसके चलने में आहट नहीं होती। इससे इसको शिकार पकडने में बडा सुभीता होता है। यह बादल का सा गरजता है। इसका गरजना सुन कर सभी जीव थर्र मार जाते हैं और उन्हें जान बचाने की फिक्र पड जाती है।

वास-स्थान—सिंह का वास ग्रीष्म-प्रधान देशों में होता है। सिंह प्राय. अफ्रिका में अधिक और प्रसिद्ध होते हैं। पर वे अरब, ईरान और भारतवर्ष के गुजरात और राजपुताना आदि प्रदेशों में भी पाये जाते हैं। स्थान-भेद से इनमें भी बहुत कुछ भेद होता है।

स्वभाव और गुण—सिंह साठ वर्ष से लेकर अस्सी वर्ष तक जीते हैं। यह बलवान् ऐसा होता है कि एक २ थप्पड में गाय, भैंस और घोड़े की कमर तोड डालता है। यह कोसों बडे बडे जानवरों को लेकर भाग जाता है और जहाँ

इच्छा होती है उसे मार डालता है। यह बाघ का सा हिंसक नहीं है। बचपन से पोसने पालने पर यह अपने मालिक से मिलजुल जाता है। यह बड़ा ही गम्भीर पशु है। इसकी गति से गम्भीरता की उपमा दी जाती है। इसका जीवन घास, पात खाने वाले जन्तुओं पर निर्भर रहता है। सिंह सूर्य की रोशनी बरदाश्त नहीं कर सकता। इससे यह दिन भर झाड़ी और गुफा में छिपा रहता है। सिंह जहाँ कहीं छिपा बैठा रहता है। जब शिकार पास आ जाता है तब वह गरज कर उस पर कूद पड़ता और पकड़ लेता है। सिंहनी छ सात मास गर्भधारण कर तीन चार बच्चे एक साथ पैदा करती है। सिंहनी अपने बच्चे को बहुत प्यार करती है। जब सिंह झुण्ड बाँध कर निकलते हैं तब हाथी पर भी झपेट करते हैं।

उपकार और अपकार—सर्कस वाले सिंहों को सिखा कर इसके अनेक खेल दिखाते हैं। सिंह वाला सर्कस नामी समझा जाता है और उसे गहरी आमदनी होती है। चमड़ा आसनों के काम में आता है और नख, मांस आदि बहुत सी दवाओं के काम में आता है। सिंह का शिकार भी होता है पर इसमें बड़ा भारी खतरा रहता है। कभी २ जीता पकड़ लिया जाता है और कभी २ मार दिया जाता है। शिकारी जाल तरकीब से इसे फँसाते हैं। जब एक बार मनुष्य को खा लेता है तब वह मनुष्यों ही पर विशेष चोट करता है।

विशेषता—जब तक सिंह को भूख नहीं लगती तब तक वह शिकारी को नहीं मारता और न कहीं धावा करता है। वह दूसरे का मारा शिकार कभी नहीं खाता। वह आप ही आप शिकार करता है। एक बार जब अपने शिकार पकड़ने में विफल हो जाता है तब दूसरी बार कोशिश नहीं करता। एक

बार खाकर यह पाँच छः रोज पड़ा रहता है। जब तक इसे भूख नहीं लगती तब तक चलता फिरता नहीं। हिंसक होने पर भी व्यर्थ की हिंसा नहीं करता। पुराने समय में सिंह बहुत थे, अब बहुत कम हैं।

बन्दर (The Monkey)

जाति वा श्रेणी—वानर एक विचित्र जन्तु है। इसके रङ्ग-ढङ्ग, चाल-चलन और काम-काज मनुष्यों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इससे यह आधा मनुष्य और आधा पशु गिना जाता है। चतुष्पद होने पर भी द्विपद है। क्योंकि अगले दोनों पैर हाथ के ही अधिकतर काम देते हैं। स्तनपायी और शाकाहारी है।

आकार-प्रकार—मनुष्यों से बन्दरों का बहुत सादृश्य है। देखने में बड़ा ही कुरूप होता है। पूँछ लम्बी होती है। समूचा शरीर भूरे और कुछ पीले केशों से ढँका रहता है। इसका मस्तक गोलाकार, आँखें धँसी हुई और गाल पचका हुआ रहता है। इसके चारों पैर बहुत ही हलके होते हैं। दाँत हम लोगों के से और समूचा मुखमण्डल लाल और बुड्ढे का मुँह सा धँसा रहता है। पैर के चारों तलवे हाथ के से होते हैं। इससे इसे चार हाथ का जानवर भी कहते हैं। बन्दर कई प्रकार के होते हैं। स्थान भेद से भी इनमें भेद होता है। इनमें साधारण बन्दर, लंगूर, पूँछहीन बन्दर, गोरिला, वनमानुष, मंद्रिल बन्दर, चिंपजी, ओरङ्गउतान आदि मुख्य हैं। बन्दर का मुँह लाल और लंगूर का मुँह काला होता है। इसको बन्दर की सी गाल में थैली नहीं होती। युक्तप्रान्त में बन्दर अधिक हैं और बङ्गाल में लंगूर।

वास-स्थान—बन्दर प्रायः सभी ग्रीष्म-प्रधान देशों में पाया जाता है। अफ्रिका, भारत, अमेरिका, ब्रह्मा आदि देशों में बहुत मिलता है।

स्वभाव और गुण—बन्दर स्वभाव के बड़े चञ्चल होते हैं। इनके लिये क्षणमात्र स्थिर रहना कठिन है। मृग जैसे समतल पर खूब तेज दौड़ते फिरते हैं वैसे ही बन्दर पेड़ों की डालियों पर तेजी से कूदते फाँदते फिरते रहते हैं। इससे इन्हें शाखामृग कहते हैं। जैसे ये मानवों का अनुकरण कर सकते हैं वैसा कोई जानवर नहीं कर सकता। शाखा ही इनके घर और फल मूल ही इनका आहार है। बन्दर बड़े ही धूर्त, छली और स्वार्थी होते हैं। शहर और गाँव के बन्दर सब प्रकार के अन्न भी खाते हैं। बन्दर अपनी बुद्धि और समझदारी के ऐसे २ काम दिखलाते हैं जिससे मनुष्य दंग हो जाते हैं। इनके हृदय में मनुष्य के से ही प्रेम और बैर के भाव उदय होते हैं। इनकी पारस्परिक सहानुभूति प्रशंसनीय है। बच्चे के बड़े प्रेमी हैं। ये बड़े कौतुक प्रिय होते हैं। शिक्षित होने से ये अनेक प्रकार के खेल दिखलाते हैं। ये पोस बहुत मानते हैं। पहले खाने की चीजें गरदन की थैली में रख लेते हैं फिर पीछे उन्हें पेट में ले जाते हैं। बड़े २ विकासवादी विद्वान, मनुष्यों को बन्दरों ही से परिवर्तित मानते हैं। ये पचीस तीस वर्ष तक जीते हैं। हिन्दू इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते हैं और इन्हें मारते नहीं। इससे ये बस्तियों और मकानों में अधिकतर रहते हैं। इनकी घुड़की बहुत प्रसिद्ध है।

कथा कहावत—जब बन्दर घुड़कते हैं तो मालूम होता है कि बस सिर पर सवार हुए। पर वे वहीं के वहीं ही रहते हैं।

इससे किसीके व्यर्थ ताव-भाव दिखलाने पर लोग कहते हैं कि 'बन्दर घुड़की' रहने दीजिये। 'बानर के हाथ में नरिअर' और 'बानर के घाव' ये दो कहावतें भी इनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध हो गयी हैं।

उपकार और अपकार—बन्दरों को सिखा पढ़ा कर बहुत से भिखमगे इन्हें लिये फिरते हैं और इनकी लीला दिखा कर कमाते खाते हैं। सर्कस में भी इनसे काम लिये जाते हैं पर इनसे हानि बहुत होती है। जगली बन्दर फुलवाड़ी, खेत उजाड़ डालते हैं और खाने पीने की चीजें, लत्ता-कपड़ा, गहना वर्तन लेकर भाग जाते हैं। कभी २ आदमी को ऐसा काटते हैं कि वह खाटी धर लेता है।

प्रश्न—भालू, हरिन, भेड़िया, सियार और खरगोश पर एक २ लेख लिखो।

(ग) मनुष्य (*Man*)

अंग्रेज (Englishman)

परिचय—अग्रेज इग्लेंड के रहने वाले हैं। उनकी भाषा अग्रेजी या इग्लिश है। इग्लेंड में दो शब्द हैं—'इग्' और 'लेंड'। इसका अर्थ है "अग्रेजों की भूमि।" अर्थात् अग्रेजों के रहने की जगह। बगाली अग्रेज को 'इग्रेज' और फरासी 'ऑग्लिश' कहते हैं। हिन्दी में अग्रेज नाम है।

प्रारम्भिक इतिहास—इग्लेंड बहुत दिनों तक पहले ऐंगल और सेक्सन जाति के अधिकार में था। उसी समय फ्रान्स के नार्मन जाति के लोगों ने उस इग्लेंड पर अपना अधिकार किया। वे इग्लेंड में अपना अड्डा जमा कर रहने लगे।

क्रमशः उन दोनों जातियों में नार्मनों के रीति रिवाज, चाल चलन, रहन-सहन, तौर-तरीके, आचार-व्यवहार और भाषाओं का मेल-जोल होने लगा। इस मेल मिलाप का परिणाम यह हुआ कि एक भिन्न जाति ही पैदा हो गयी। यही जाति आजकल के अङ्गरेज नाम से प्रसिद्ध हुई है।

वंश-परम्परा और भाषा—ऐंगल, सेक्सन और नार्मन तीनों ही उत्तरीय ट्यूटेनिक वंश के हैं और उन्हींसे आधुनिक अङ्गरेज जाति का सङ्गठन हुआ है। अङ्गरेजी भाषा भी मूलतः ट्यूटेनिक ही है। उसमें रोमन भाषा भी शामिल है।

सामाजिक और धार्मिक जीवन—अङ्गरेजों का सामाजिक जीवन हम लोगों से एकदम भिन्न है। समझना चाहिये कि हम लोगों से किसी प्रकार उस विषय में कोई साम्य ही नहीं है। क्या पारिवारिक जीवन हो या क्या कुटुम्ब-सम्बन्धी हो, देखने से ऐसा ज्ञात होता है जैसे इनमें घनिष्ठ सम्पर्क नहीं। गृहस्थी की व्यवस्था भिन्न प्रणाली की ही होती है। जब तक अङ्गरेजों का विवाह नहीं होता तब तक वे विविध छात्रावास में रहते हैं। विवाह होते ही अपने अभिलषित नव मकान में डेरा डण्डा डालते हैं। वे जहाँ जाते हैं, सर्वत्र साथ रहते हैं। टहलने घूमने, खेल तमाशे जहाँ जाते हैं, स्त्रियाँ उनका साथ देती हैं। पर्दा सिस्टम इनमें नहीं है। अङ्गरेजों में प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय का धर्म प्रचलित है।

स्वभाव—अङ्गरेज खुले मैदान की खुली हवा में रहना पसन्द करते हैं। पेड़ पौधे, वृक्ष, लता, गुल्म, पत्र, पुष्प के ये बड़े प्रेमी होते हैं। बाहर के प्राङ्गण में थोड़ा व्यायाम कर बहुत खुशमिजाज मालूम होते हैं। अपने अवशिष्ट कार्य के उपरान्त, इनके बगीचे ध्यान रखते हैं। समय समय इन्हें बहुत

पसन्द है। इनकी कार्य-तत्परता, कष्ट-सहिष्णुता, साहसिकता, अध्यवसायशीलता बडी प्रशंसनीय है। इनकी प्रकृति बडी प्रशसनीय होती है।

राजनैतिक अवस्था—क्या स्त्री और क्या पुरुष, सभी ही स्वतन्त्रता के प्रेमी हैं। सभी ही अपने २ विषय में स्वाधीन और भारत-सम्राट् इङ्गलैण्डेश्वर पञ्चम जार्ज के अधीन हैं। ये अपने शासन-सम्बन्ध में सुप्रबन्ध की सदैव चेष्टा करते रहते हैं और उसे जीवन का प्रधान उद्देश समझते हैं। समय के प्रभाव और स्वतन्त्रता की वृद्धि से स्त्रियाँ वहाँ अपना राजनैतिक अधिकार बहुत बढ़ाना चाहती हैं।

विशेषत्व—अगरेजों ने आविष्कार शक्ति, साहस, अध्यवसाय और कौशल आदि गुणों के कारण पृथ्वी की सारी जातियों में प्रथम स्थान पाया है। भूमण्डल के प्राय प्रत्येक खण्ड में अङ्गरेजी झण्डा फहरा रहा है। कठिन से कठिन स्थानों में जा आकर अङ्गरेजी पादरी जनसाधारण में प्रेम और दया के कार्य करते दिखलाई पडते हैं। आज कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ अङ्गरेजों का सादर सम्मान न हो। आज कल यह जाति सर्वत्र सर्वतोभाव से सभी की समादरणीय हो रही है।

प्रश्न—(१) मराठा, राजपूत, सिक्ख बगाली, पारसी और जापानी पर भिन्न २ लेख लिखो।

प्रोफेसर राममूर्ति।

परिचय—प्रोफेसर राममूर्ति देशी ही नहीं बल्कि विदेशी भी खूब अच्छी तरह जानते हैं। प्राय उनको अधिक सख्यक लोगों ने देखा होगा। नगर-निवासी तो बहुत ही कम ऐसे

मिलेंगे जिन्होंने अगर उन्हें देखा नहीं हो तो उनका नाम भी न सुना हो। क्योंकि प्रायः प्रत्येक नगर में उनके अलौकिक व्यायाम के बहुत खेल हुए हैं और लोगों ने बड़े कौतुक और आश्चर्य से देखा है। वे मायडू कुल के भूषण और आधुनिक समय के बली होने के कारण वर्तमान भीम हैं।

शारीरिक गठन—प्रोफेसर राममूर्ति का शरीर बहुत विशाल नहीं है। न वे बहुत लम्बे हैं और न बहुत छोटे ही। पर उनको देखने पर कुछ स्थूल होने से विशालता व्यक्त अवश्य होती है। उनका शारीरिक सङ्गठन प्रशंसनीय है। मस्तक विशाल, ललाट चौड़ा, नेत्र बड़े और मुख प्रफुल्ल तथा सुन्दर है। स्कन्ध मांसल, छाती चौड़ी, उदर सम, बाहु दृढ़ और अधोभाग भी शरीरानुकूल ही है। सारा शरीर सुन्दर, गठीला और चिकना है। उससे एक प्रकार की तेजस्विता, स्निग्धता, प्रफुल्लता और कमनीयता झलकती रहती है।

कार्य—चलती हुई बड़ी २ मोटरकारों को अपनी ओर खींच लेना, कच्ची मन का पत्थर छाती पर रख कर उस पर से दूसरा पत्थर घन से तुड़वाना, देह पर से भरी गाड़ी खिंचवा लेना और हाथी पार कर देना, भारी भारी मोटे २ लोहे का सीकड़ कंधे से तोड़ देना, कसे हुए सीकड़ में शरीर को निकाल लेना आदि उनके आश्चर्यजनक खेल सभी के देखे सुने हैं।

चरित्र—राममूर्ति बड़े सदाचारी, विनयी, मधुर भाषी, सच्चरित्र और उदाराशय हैं। जो उनसे मिलने जाता है उस से वे आदर और सत्कार मिलते हैं। मिलने वाले उनके वाक्य रचना, व्यवहार और वर्ताव से बड़े सन्तुष्ट हो जाते हैं। जब उनके अलौकिक और अद्भुत कामों के सम्बन्ध में कुछ किया

जाता है तब वे कहते हैं कि इन कार्यों को सभी कर सकते हैं। यह ब्रह्मचर्य और अभ्यास की महिमा है। ब्रह्मचारी हो कर मेरे समान व्यायामों को कुछ दिनों तक करे तो कोई हो मेरी समता कर सकता है। शरीर में इतना बल सञ्चय करना कोई कठिन काम नहीं है। उनकी इस निरहङ्कारिता से सभी मुग्ध हो जाते हैं। कितनों को विश्वास है कि राममूर्ति प्राणायाम के बल से भी कुछ काम करते हैं। उनमें शरीर को विस्तृत और सङ्कुचित करने की शक्ति तो देखी सुनी है। यह सर्वसाधारण नहीं कर सकता। राममूर्ति कर्तव्यनिष्ठ, परोपकारी और उच्च विचार के व्यक्ति हैं।

उपसंहार—राममूर्ति शुद्ध सनातनधर्मी हैं। आप अङ्गरेजी जानते हैं और हिन्दी भी बोल लेते हैं। आपके सिखलाये हुए व्यायामों से बहुतों ने लाभ उठाया है। उनके एक दो चेले भी ऐसे निकले हैं जो उनके कुछ कार्यों को दिखला सकते हैं। सचमुच, विद्यार्थी बाल्यावस्था ही से ब्रह्मचर्य रह कर व्यायाम करके अपने अभ्यासों को बढ़ावे तो बहुत बली, स्वस्थ और सब प्रकार सुखी रह सकता है।

प्रश्न—बुद्ध, अशोक, अलेक्जेंडर, अकबर, लार्ड हार्डिंज और किसी निजन, दौल्त, तथा गुणी पर एक २ लेख लिखो।

द्वितीय पाठ-जलजीव (Water Animals)

मछली (The Fish)

जाति या श्रेणी—अनेक जलचर जीवों में मछलियाँ ही सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और सुपरिचित हैं। ये अण्डज प्राणि हैं। इनकी गिनती रीढ़दार जीवों में होती है।

आकार-प्रकार—मछलियों के आकार-प्रकार का कुछ ठिकाना नहीं। कोई २ मछली बहुत बड़ी और कोई २ बहुत छोटी होती है। विशेषतः मछलियाँ उज्ज्वल होती हैं, पर लाल, पीले, नीले और हरे रङ्ग की भी मछलियाँ देखी जाती हैं। इनकी देह बीच में मोटी और दोनों ओर पतली रहती हैं। कितनी मछलियों के देह पर चौड़े और कड़े चौपटों की चमकीली पपड़ियाँ इस प्रकार पड़ी रहती हैं जिस प्रकार छप्पर पर एक के ऊपर दूसरा खपड़ा बिछा रहता है। इससे इनके तैरने में बड़ी सुविधा होती है। कितनी मछलियों की खाल बड़ी चमकीली और चिकनी होती है। इन मछलियों को चोइटा नहीं होता। इन्हें दो जोड़े पङ्ख छाती और पेट में रहते हैं। कितनी मछलियों को कुछ पङ्ख होते और कितनों को ये होते भी नहीं। कितनी मछलियों के इतने बड़े पङ्ख होते हैं जिनसे वे आकाश में उड़ सकती हैं। ये पङ्ख मनुष्यों के दोनों हाथ, पैर और चौपायों के चार पैर के समान काम देते हैं। इनसे भी तैरने में बड़ी सुविधा होती है। एक पङ्ख पीठ पर और एक तिकोनी पूँछ के पास भी होती है। पूँछ भी तैरने में सहायता करती है। मुँह आकार के अनुसार बड़ा छोटा सब प्रकार का होता है। आँखें छोटी और बड़ी बहुत मज़बूत होते हैं। मछलियाँ गलफड़ों ही से साँस लेती हैं। इनका कुछ-कुछ ऐसा होता है जिससे वे जल में आप ही हवा ले सकती हैं। तैरने के समय अक्सर देखा जाता है कि मछलियाँ अपना मुँह खोलती और बन्द करती हैं। इसी समय वे पानी को गलफड़ों से निकालती हैं और उनके भीतर लाल २ चमड़े के बीचों से जितनी हवा मिल सकती है, ले लेती हैं। रोहू, कतली, मोइरी, बाचा, मागुरी, सिंगी, बोआल, टेंगरा,

गरई आदि मछलियों के कई भेद हैं। झिंगा और चिंगडी की मछलियों में गिनती नहीं होती पर लोग इन्हें भी मछली ही कहते हैं। मछलियों के आकार का कोई ठिकाना नहीं। तिमी, तिमिङ्गिल और राघव नामक मछली बेप्रमाण बड़ी होती है।

वासस्थान—गड्ढा, नदी, तालाब, समुद्र आदि में मछलियां रहती हैं। कुछ मछलियाँ मीठे पानी में और कुछ खारे पानी में रह सकती हैं। कितनी दोनों ही में रह सकती हैं। इसमे पृथ्वी के सब भागों के जलाशयों में मछलियाँ पायी जाती हैं। जाल और बंशी से मछली पकडी जाती है।

स्वभाव और गुण—मछलियाँ बडी चञ्चल होती हैं। अत एव नेत्रों से इनकी उपमा दी जाती है। ये अकेली और झुंड के झुंड भी तैरती चलती हैं। प्राय बडी अकेली और छोटी दल बाँधे चलती है। सेवार, घोंघा, मुर्दा, मिट्टी, थूक, खंखार आदि खाती हैं। बडी मछली छोटी मछली को भी खा जाती है। मछलियाँ तालाबों में पोसी पाली भी जाती हैं। ऐसी मछलियाँ धान का लावा, मूडी और आँटे की गोलियाँ भी खाती हैं। पानी ही इनका जीवन है। पानी से अलग करने पर कुछ ही देर में मर जाती हैं। इससे दो प्रेमियों की उपमा इनसे दी जाती है। मछलियाँ जल को थोडी देर भी नहीं छोड़ सकतीं। इसीसे यह प्राणजीवी और अल्पायु है।

उपकार और अपकार—जीती मछलियाँ यात्रा-समय दिखाई पड जाँय तो शुभ समझा जाता है। इसीसे कहीं २ जब राजा महाराजा आते जाते हैं तब उन्हें यथा-समय जीती मछलियाँ जल भरे पात्र में दिखाई जाती हैं। बङ्गालियों का यह

प्रधान और प्रिय भोजन है। इसमें सन्देह नहीं कि मछली एक पुष्टि-कर खाद्य है। मछली के तेल और चर्बी से अनेक दवाइयाँ बनती हैं। इनारे या कुँएँ में एक दो मछलियों के रहने से कीड़े मकोड़े आदि की गन्दगी नहीं होने पाती।

ग्राह या घड़ियाल (The Crocodile)

जाति या श्रेणी—यह गिरगिट जाति की श्रेणी में है और अण्डज है। उभय-चर होने पर जल ही में विशेषतः रहता है। मच्छ, मगर और नाकुर मगर नामक इसके दो भेद होते हैं।

आकार-प्रकार—आकार गोह के समान होता है। यह जलचारी सरीसृप है। छाती के बल चलता है। इसके छोटे २ चार पैर होते हैं। अगले पैरों में चार और पिछले पैरों में पाँच २ अँगुलियाँ होती हैं। इसका शरीर चढ़ाव उतार लिए होता है। पूँछ में बड़े बड़े मजबूत काँटे होते हैं। बड़े २ घड़ियाल १६–१७ हाथ तक लम्बे होते हैं। इसका रंग काला होता है। मुँह लम्बा और उसमें बड़े २ नोक २ दाँत होते हैं।

वासस्थान—यह समुद्रों में और बड़ी २ नदियों में रहता है। गङ्गा-यमुना में भी बड़े बड़े मगर रहते हैं। जहाँ गहरे में जल अधिक रहता है वहाँ मगर अवश्य रहते हैं। बंगाल की खाड़ी में भी बड़े २ मगर देखे पड़ते हैं।

स्वभाव और गुण—इसका स्वभाव हिंसक है। मछली और अन्यान्य छोटे २ जीव इसका भोजन है। ये बाहर बालू में भी आकर पड़े रहते हैं और बकरी, भेड़ा यहाँ तक कि छोटे छोटे बच्चों को भी पकड़ खाते हैं। जो शिकार इसके जबड़े में आ जाता है उसका छूटना मुश्किल हो जाता है। शिकार

पकड कर जल में पहले ले जाता है। जब वह मर जाता है तब खाता है। बालू में अंडा देता है। बड़े २ बंशी से पकड़ा जाता है और गडहे खोद कर भी फँसाया जाता है। यह जल में भी तैरते हुए मनुष्य का पैर पकड कर डुबा देता है। जब कोई इसे ऊपर घेर घार कर फँसाना चाहता है तो अपनी पूँछ से मार कर आदमी को छिन्न भिन्न कर देता है। इससे हानि के सिवा कुछ विशेष लाभ नहीं है।

तृतीय पाठ—खेचर प्राणी (The Birds)

पक्षी (The Birds)

जाति वा श्रेणी—ये साधारणत तीन श्रेणी के होते हैं—स्थलचर, जलचर और उभयचर। पक्षी द्विपद, आकाशचारी और अण्डज जीव हैं। पक्षियों में कितने शाकाहारी और कितने मांसाहारी भी होते हैं।

आकार-प्रकार—पक्षी नाना प्रकार के होते हैं। उनका सर्वाङ्ग हलके और मुलायम रोम से ढका रहता है। रोम नाना रंग के होते हैं। उनके आकार भी छोटे बड़े सब प्रकार के होते हैं। दोनों बगल में दो डैने होते हैं। इनके उड़ने के ये ही दो साधन हैं। यदि इन दोनों पक्षों में से दो २ चार २ पर उखाड़ लिये जायँ तो ये उड़ नहीं सकते। पीछे की ओर भी एक पूँछ रहती है। चतुष्पद जन्तुओं की अपेक्षा इनकी गरदन लम्बी होती है। किसीकी चोंच छोटी और किसीकी बड़ी होती है। पैर ही के लगभग प्राय सभी पक्षियों की भिन्न २ प्रकार चोंच लम्बी होती है। चोंच के बीच में केवल एक जीभ होती है। दाँत नहीं होते। देश-भेद से एक ही

पक्षी अनेक प्रकार का होता है। पक्षियों के दो पैर होते हैं और उनमें टेढ़े २ नख भी होते हैं। वे हम लोगों की अँगुलियों से मुड़ते और फैलते हैं। इसको चंगुल कहते हैं। कितने पक्षियों का चंगुल पतले चमड़े से जुड़ा रहता है। अलबत्ता पक्षियों के चोंच, गरदन और पैर में कुछ २ भिन्नता रहती है। ऊँट पक्षी (Ostrich) सब से बड़ा होता है। बक और हड़गिल्ल की चोंच लम्बी होती है। कितने पक्षी देखने में सुन्दर और कितने कुरूप मालूम होते हैं।

प्राप्ति-स्थान--पृथ्वी का कोई ऐसा भाग नहीं जहाँ पर पक्षी न हो। देश-काल के अनुसार सर्वत्र नाना प्रकार के पक्षी पाये जाते हैं।

स्वभाव और गुण--प्राय सभी पक्षी फल, मूल और अन्न खाते हैं। सभी अण्डा देते हैं और चारा निगल कर खाते हैं। सभी पक्षी प्राय खोते बना कर रहते हैं। अण्ड और पिण्ड से पैदा होने के कारण पक्षी जाति को द्विज भी कहते हैं। पक्षियों के बीच २ में पर भी बदलते हैं। सभी पक्षिणियाँ अपनी सन्तानों का प्यार करती हैं। सब पक्षी समान भाव से उड़ नहीं सकते—कोई कम तो कोई अधिक, कोई तेज तो कोई कम। बहुत से पक्षी कीड़े मकोड़ों को भी खाया करते हैं। बाज २ पक्षी शिकारी भी होते हैं। जैसे बाज़री, बाज, ईगल आदि। वे सब पक्षियों को पकड़ते हैं और उनका मांस भी खाते हैं। गिद्ध मुर्दा खाता है। कितने पक्षियों की बोली मीठी और प्यारी लगती है और कितनों की कड़वी। कितने पक्षी सिखलाने पढ़ाने से मनुष्य के समान बोलते हैं। जैसे मैना तोता आदि। बुलबुल, मैना, कबूतर आदि अनेक पक्षी हैं। कुछ मुर्ग आदि पाल कर पाले जाते हैं। तीतर, बटेर आदि खाद्य है।

पक्षी है। कितने इन्हें लडाने ही के लिये पोसते हैं। कि
पक्षी ऐसे होते हैं जो मनुष्य की हूबहू नकल करते हैं। पक्षि
में सारस बडा मातृ-पितृ-भक्त होता है और बुढ़ापे में, मा
पिता का बडा यत्न करता है। कौवा पक्षियों में बडा च
होता है। कोयल अपने बच्चे को काक से पलवाती है
इससे पक्षियों के बुद्धि-कौशल का भी पता पाया जाता है
कितने लोग पक्षियों से शकुन-अशकुन और हानि-लाभ
चाल उसकी गति विधि से अनुमान करते हैं।

उपकार और अपकार——कई पक्षियों का मांस भक्ष्य
से लिखा गया है। बगला, बटेर, कबूतर, हारिल, जांघि
लालसर, लगलग आदि पक्षियों को लोग मारते हैं और खा
हैं। मुर्गे का मांस बहुत फायदेमन्द है। बहुत से मनु
अण्डे को भी पुष्टिकर समझ कर खाते हैं। कई बीमारि
की औषधि में पक्षी काम आते हैं। पक्षियों का रोम तकि
में भरा जाता है। अब यह कागज के काम में भी आता है
पर के कलम भी बनते हैं।

विशेषता——पक्षियों में ईश्वरीय और प्राकृतिक विचित्रत
की बहुत बातें भरी हैं। जैसे, सुग्गे की जीभ उलटी होती है
कौवे की दोनों आँखों में एक ही पुतली रहती है। कौव
बडा ही चतुर होता है और आदमी के मन की बात पहल
ही समझ लेता है। मोर साँप खाता है। सुनते हैं कि चको
आग भी खाता है। इसे चाँदनी बडी अच्छी लगती है
पपीहा स्वाती का ही जल पीता है। हंस दूध से पानी अल
करता है। सारस माता-पिता का बडा भक्त होता है। व
बुढ़ापे में उनका बडा यत्न करता है। कोयल की बोली वसन

ही में सुनी जाती है। वह अपने बच्चों को चोंच से पकड़ती है इत्यादि।

सुग्गा या तोता (Parrot)

जाति या श्रेणी—सुग्गा पठनशील पक्षियों की श्रेणी में है। यह सर्वसाधारणों का परिचित और आदरणीय है।

आकार-प्रकार—सुग्गे विशेषतः हरे और भूरे होते हैं। चोंच बहुत ही छोटी, प्रायः गोल और मजबूत होती है। आगे का भाग झुका हुआ और पतला तथा चोखा होता है। देखने में चोंच बड़ी ही सुन्दर मालूम पड़ती है। इसकी ठोर से नाक की उपमा दी जाति है। इसकी चोंच के ऊपर जहाँ से पर रहता है वहीं पतले चमड़े की झिल्ली में नाक के छेद होते हैं। जीभ मोटी होती है। दोनों पैरों में भोजन के पदार्थों को पकड़ने योग्य नख होते हैं। देश भेद से अनेक प्रकार के सुग्गे होते हैं। इसी देश में कई प्रकार के सुग्गे मिलते हैं। सुग्गे के लाल, हरे, बैंगनी, पीले आदि अनेक प्रकार के रंगदार मस्तक होते हैं। डैने मजबूत और पूंछ लम्बी होती है।

प्राप्ति-स्थान—सुग्गे सभी गर्म मुल्कों में पाये जाते हैं—विशेषतः अफ्रिका और आस्ट्रेलिया में।

स्वभाव और गुण—सुग्गे जब जंगली हालत में रहते हैं तब झुण्ड के झुण्ड उड़ते फिरते हैं और अन्न और फल खाते हैं। वे फल का गूदा और दाना का छिलका अपनी ही चोंच से छुड़ा लेते हैं। पेड़ के खोखले में बच्चे पैदा कर रहते हैं। खोखले ही में उन्हें खिलाकर बड़ा पालते हैं। लोग कैसे भी इन्हें पकड़ते हैं। अनुकूल होने के कारण, रोटी आदि सब प्रकार के पदार्थों पर वे

भोजन कर सकते हे। मनुष्य जिस प्रकार उच्चारण करता ठीक उसी प्रकार ये भी बोलते तथा शब्द और वाक्य उच्चारण करते हैं। कभी २ ये नकल करके आदमियों चिढ़ाते भी हैं। अपने भक्ष्य पदार्थ को ये अपने थैले में पह रख लेते हैं फिर पागुर करनेवाले पशुओं के समान निका कर खाते हैं। यद्यपि इनकी आवाज बड़ी तीखी हे तथा सभी को भाती हे। छेड़छाड़ करने पर ये काटते भी हैं, प यह काटना दुखदायी नहीं होता। जो सुग्गा खूब पढ़ता उसका दाम बहुत होता है।

उपकार और अपकार--हिन्दू सुग्गो को अधिक प्या से पोसते हैं और देवताओं के नाम और स्तुति सिखाते हैं सुग्गों के पढ़ने के सम्बन्ध में बहुत सी कहानियाँ प्रसि हैं। कादम्बरी में एक सुग्गे की कथा है। वह सब शा जानता था और बड़ा ही विद्वान् था। मिथिला के मण्ड मिश्र के द्वार पर सुग्गियाँ परस्पर दार्शनिक शास्त्रार्थ करत थीं। मिठबोलियाँ होने के कारण इसे बड़ा आराम और सुर होता है। अच्छे २ भोजन के पदार्थ और सुन्दर आवास मिलता है। पर बेचारों की स्वतन्त्रता मारी जाती है औ अपना देश, परिवार आदि सब छूट जाता है। इसकी कलव इनको बड़ी रहती है। सुग्गे के ऊपर बड़े २ कवियों ने काव्य लिखे हैं। तोतों पर अनेक अन्योक्तियाँ भी लि

आकार-प्रकार—इसकी ऊँचाई लगभग मनुष्य ही की जितनी होती है। जमीन से इसका सिर कभी २ तो भी दस फीट तक ऊँचा बढ़ जा सकता है। गरदन इसकी बड़ी लम्बी होती है। इसलिये इसे ऊँट पक्षी कहते हैं। समूचा शरीर सुन्दर पर से ढँका रहता है। डैने इसके आकार और ऊँचाई की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं। पूँछ भी छोटी होती है। पैर बड़े दृढ़ और मजबूत होते हैं। प्रत्येक पैर में दो २ अँगूठे रहते हैं। इसके बल यह घोड़े के मुकाबले दौड़ सकता है। यह जैसा सुन्दर है वैसा ही बेडौल भी है।

प्राप्ति-स्थान—सहारा अरेबिया और अफ्रिका की बलुआही मरुभूमि में जहाँ सूर्य का उत्ताप विशेष-रूप से पड़ता है, रहता है। इसको पकड़ने के लिये शिकारी घोड़े पर चढ़ कर पीछा करते हैं। इसकी चाल टेढ़ी-मेढ़ी है, इसलिये यह जहाँ जाता है वहीं से घूम जाता है। घुड़सवार को घोड़े का वेग रोकने में और घुमाने में विलम्ब हो जाता है। इससे आगे निकल जाता है। इसलिये घुड़सवार इसे घेरकर कर हैरान करते हैं। जब हैरान हो जाता है तब छिपाता है कि उसे कोई देख न

भोजन कर सकते हैं। मनुष्य जिस प्रकार उच्चारण करता है ठीक उसी प्रकार ये भी बोलते तथा शब्द और वाक्य का उच्चारण करते हैं। कभी २ ये नकल करके आदमियों को चिढाते भी हैं। अपने भक्ष्य पदार्थ को ये अपने थैले में पहले रख लेते हैं फिर पागुर करनेवाले पशुओं के समान निकाल कर खाते हैं। यद्यपि इनकी आवाज बडी तीखी है तथापि सभी को भाती है। छेडछाड करने पर ये काटते भी हैं, पर यह काटना दुखदायी नहीं होता। जो सुग्गा गृथ पढता है उसका दाम बहुत होता है।

उपकार और अपकार—हिन्दू सुग्गों को अधिक प्यार से पोसते हैं और देवताओं के नाम और स्तुति सिखाते हैं। सुग्गों के पढने के सम्बन्ध में बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कादम्बरी में एक सुग्गे की कथा है। वह सब शास्त्र जानता था और बडा ही विद्वान् था। मिथिला के मण्डन मिश्र के द्वार पर सुग्गियाँ परस्पर दार्शनिक शास्त्रार्थ करती थीं। मिठबोलियाँ होने के कारण इसे बडा आराम और सुख होता हैं। अच्छे २ भोजन के पदार्थ और सुन्दर आवास मिलता है। पर बेचारों की स्वतन्त्रता मारी जाती है और अपना देश, परिवार आदि सब छूट जाता है। इसकी कल[illegible] इनको बडी रहती है। सुग्गे के ऊपर बडे २ कवियों ने कित[illegible] काव्य लिखे हैं। तोतों पर अनेक अन्योक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं।

ऊँट पक्षी, शुतुर्मुर्ग वा सहरस (Ostrich)

जाति वा श्रेणी—यह भी पक्षी जाति का अण्डज प्रा[illegible] है। शाकाहारी और मांसाहारी भी है। यह पक्षियों में स[illegible] से बडा और सब से बलवान् है। जगली पालतू दोनों हैं।

वास-स्थान—बहुत सी मधुमक्खियाँ ऐसी होती हैं जो उड़ने के समय भन भन करती रहती हैं। इनके बहुत भेद हैं, जिनमें मुख्यतः स्पेन, इटाली, भारत, इजिप्ट आदि देशों की मधुमक्खियाँ हैं। रूस और जर्मनी के जंगलों में भी बहुत सी मधुमक्खियाँ होती हैं।

प्रकार—मधुमक्खियाँ चार भागों में बँटी रहती हैं। प्रत्येक भाग की मधुमक्खियों के अलग २ काम बँटे रहते हैं। वे अपना २ कर्तव्य इस योग्यता, तत्परता और सचेष्टता से पालन करती हैं जिन्हें देख कर आश्चर्य होता है। प्रत्येक छत्ते में एक रानी मक्खी रहती है। यह छत्ते के चारों ओर फिरा करती है। यही उस छत्ते में रहने वाली सब मक्खियों में सरदार होती है। इसीका शासन सब मानती हैं और पीछे लगी रहती हैं। इसका शरीर लम्बा और पंख छोटे होते हैं। यह केवल बच्चा पालने का काम करती है। दूसरे भाग में रानी मधुमक्खी के पति-स्वरूप बहुत से मक्खे होते हैं। इनका जीवन आलस्य में ही बीतता है। ये केवल बेकार छत्ते के चारों ओर भनभनाया करते हैं। तीसरे विभाग की मक्खियाँ छत्ता बनाती और उसके टूटे फूटे अंश को मरम्मत करती हैं। चौथे विभाग की मक्खियाँ काम करने वाली हैं। इनका काम है फूलों से मधु इकट्ठा करना, मोम बनाना, अण्डों की पहरेदारी करना और बच्चों को खिलाना पिलाना।

गुण और स्वभाव—मधुमक्खियाँ अत्यन्त उद्योगी होती हैं। वे सदा काम करती रहती हैं। एक क्षण भी बेकार नहीं बैठतीं। व्यवस्थित कार्य करते २ इनका जीवन समाप्त होता है। वे जिस प्रकार परिश्रमी हैं उससे कहीं अधिक वे कार्यकुशल हैं। वे अपने रहने के लिये सुन्दर

है। कभी ग्राम में यौंही उन्हें छोड भी देते हैं। फिर बच्चे तैयार होते हैं। बच्चा सहरस पकड कर पालने से पोस मानता है। अन्न, शाक, कीडे-मकोड़े खाकर ये अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये क्षुधा-शक्ति को उत्तेजित करने के लिये पत्थर के टुकडों को भी खाते हैं। बहुत दिनों तक इन्हें पानी की परवाह नहीं रहती। ये झुंड के झुंड वीरान मैदान में दौडते फिरते हैं।

उपकार और अपकार—हबशी इनको पालते हैं और चढ कर रेगिस्तान की बालू पार करते हैं। इसके पर बडे बेश कीमती होते हैं और लेडियाँ उन्हें बहुत चाहती हैं। इसके अंडे बहुत से लोग खाते हैं और इसके Shells के पियाले और गहने बनाते हैं।

प्रश्न—कबूतर, मैना, कोयल कौवा, और बाज पर एक एक लेख लिखो।

चतुर्थ पाठ—कीट-पतंग आदि।

(Worms & Insects)

मधुमक्षिका (The Bee)

परिचय—मनुष्य के उपकारी कीट-पतङ्गों में से पहला नम्बर रेशमी कीडों का है और दूसरा मधुमक्षिका का। यह भी एक प्रकार का छोटा कीडा है।

रंग-रूप—मधुमक्खी का रंग सोनहला होता है। उसके शरीर पर काले २ दाग होते हैं जो उसकी सुन्दरता को और बढा देते हैं। शरीर दो भागों में विभक्त हो कर एक चमडे से जुटा हुआ रहता है। इसके सिर में दो आँखें, दो सूँड और एक लम्बी जीभ रहती है। पिछले भाग में चार और अगले भाग में दो पैर होते हैं। इससे इनका नाम भौंरों के समान 'षट्पद' भी है।

आकार प्रकार—यह अत्यन्त क्षुद्र कीट है। किसी का आकार कुछ बड़ा होता है। माथा कुछ टेढ़ापन लिये गोल, आँखें छोटी और चमकीली, और पैर छः होते हैं। इसके दो मज़बूत जबड़े होते हैं। शरीर तीन भागों में बँटा रहता है पर वह एक दूसरे के साथ बारीक भाग से जुड़ा रहता है। चींटियाँ अनेकों प्रकार की होती हैं।

प्रकार—चींटियों के समाज में कई प्रकार की चींटियाँ होती हैं। रानी चींटियाँ अंडे पालती हैं। कामकाजू चींटियाँ समाज का तन मन से काम करती हैं। बूढ़ी चींटियाँ अंडे सेती और हर प्रकार उन्हें बचाती हैं। लड़ाकू चींटियाँ पहरेदारों का काम करतीं और समाज की खूब खबरगीरी रखती हैं। नुस्त चींटियाँ बेकार रहती हैं। कई चींटियाँ ऐसी होती हैं जो धाय और नौकर का काम करती हैं। चींटी का वह दिखाई पड़ने वाला आकार कई परिवर्तनों के बाद होता है। प्रायः अन्त समय में इन्हें पर जमता है और उनके पर दूसरों के आहार हो जाते हैं। जब कोई ऐसा काम करने लगता है जिससे उसका नाश सम्भव हो तब लोग कहते हैं कि चींटी का सा इन्हें पर जमा है।

गुण और स्वभाव—चींटियाँ बड़ी साहसी होती हैं। देखने में छोटी पर बल में बहुत बढ़ी चढ़ी हैं। अपने आकार से अत्यधिक शक्ति रखती हैं। इनकी घ्राण शक्ति इतनी तेज़ है कि बस सूँघ कर यह पता लगा लेती हैं कि हमारा भोजन कहाँ मिलेगा। झुंड बाँध कर इकट्ठी रहती और इकट्ठी होकर काम करती हैं। इन्हें भविष्यत् का खूब ध्यान रहता है। इसलिए ये बड़े श्रम से आहार और सामान के लिये अपना काम खूब संग्रह कर रखती हैं। इनका परिश्रम तो बड़ा प्रशंसनीय

दीवार, पेड़ के खोड़रे, गढ़े, पेड की डालें तथा अन्यान्य ऐसे ही स्थानों में अपना वासस्थान बनाती हैं, जिसको संस्कृत में मधुचक्र और हिन्दी में मध का छाता कहते हैं। इस मधुचक्र की अपूर्व कौशलमय रचना देख कर इनकी बुद्धिमत्ता का पूरा परिचय मिलता है। इनमें सुन्दर रूप से असंख्य बिल बने रहते हैं। एक २ में अण्डे पारे जाते हैं और उनसे कीट पैदा हो कर कुछ दिनों में मधुमक्खी के आकार के हो जाते हैं। इन मधुमक्खियों का स्वभाव देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। इनके रहन सहन, मिलनसारी, सिलसिला, शासन-कौशल आदि की प्रथा का, अवलोकन करने से बार २ विस्मित होना पड़ता है।

मधु का छाता—मध का छाता बड़ी कारीगरी से बना रहता है। कुछ उसके छेद मधु रखने के लिये, कुछ अण्डे पारने के लिये और कुछ रहने के लिये होते हैं। मक्खियाँ इन की रचना तथा नाप जोख बड़े ठौर ठिकाने से करती हैं। इनके शरीर में एक प्रकार का मोम रहता है उसीसे ये छाता बनाती हैं। एक छाते में एक रानी मक्खी, लगभग १५-२० हजार काम करने वाली मक्खियाँ और एक दो हजार मक्खे रहते हैं। मधुमक्खियाँ स्वभावतः भयानक और क्रूर होती हैं। पास पहुँचने पर ये डंक मारती हैं किन्तु नट और जंगली लोग अनेक कौशल करके छाते से मधु और मोम निकाल ही लेते हैं।

चींटी (The Ant)

जाति वा श्रेणी—चींटी कृमि-जातीय अण्डज प्राणी है। यह एक विचित्र छोटा कीड़ा है। बड़े को चींटा और छोटे को चींटी कहते हैं।

आकार-प्रकार—यह अत्यन्त क्षुद्र कीट है। किसी २ का आकार कुछ बड़ा होता है। माथा कुछ टेढ़ापन लिये गोल, आँखें छोटी और चमकीली, और पैर छ होते हैं। इसके दो मज़बूत जबड़े होते हैं। शरीर तीन भागों में बँटा रहता है पर वह एक दूसरे के साथ पतले भाग से जुटा रहता है। चींटियाँ अनेकों प्रकार की होती हैं।

प्रकार—चींटियों के समाज में कई प्रकार की चींटियाँ होती हैं। रानी चींटियाँ अंडे पारती हैं। कामकाजू चींटियाँ समाज का तन मन से काम करती हैं। बूढ़ी चींटियाँ अंडे सेती और हर प्रकार उन्हें बचाती हैं। लड़ाकू चींटियाँ पहरेदारों का काम करतीं और समाज की खूब खबरगीरी रखती हैं। सुस्त चींटियाँ बेकार रहती हैं। कई चींटियाँ ऐसी होती हैं जो दास और नौकर का काम करती हैं। चींटी का यह दिखाई पड़ने वाला आकार कई परिवर्तनों के बाद होता है। प्रायः काम समय में इन्हें पर जमता है और उनसे यह दूसरों के आहार हो जाती हैं। जब कोई ऐसा काम करने लगता है जिससे उसका नाश सम्भव हो तब लोग कहते हैं कि चींटी का सा इन्हें पर जमा है।

गुण और स्वभाव—चींटियाँ बड़ी साहसी होती हैं। देखने में छोटी पर काम में बहुत बढ़ी चढ़ी हैं। अपने आकार से आश्चर्यिक शक्ति रखती हैं। इनकी घ्राण शक्ति इतनी तेज है कि यह सूँघ कर यह पता लगा लेती हैं कि इनका भोजन कहाँ मिलेगा। झुंड बाँध कर इकट्ठी रहती और इकट्ठी होकर काम करती हैं। इन्हें भविष्यत् का खूब ध्यान रहता है। इसलिये ये बड़े श्रम से जाड़े और बरसात के लिये अपना भोजन खूब संग्रह कर रखती हैं। इनका परिश्रम भी बड़ा प्रशंसनीय

होता है। एक चींटी को जब किसी खाद्य का पता लग जाय तो वह औरों को खबर देकर झुड के झुंड चींटी बुला लेती और सब ढो ढोकर घर उठा ले जाती है। इसीसे तुलसीदास ने कहा है कि—

चींटी सहस होंहि एक संगा। फारि खाँहि मनिभार भुअगा॥

इससे छोटे को छोटा कभी नहीं समझना चाहिये। चींटियाँ मिल कर ऐसा काम कर बैठती हैं जिनका मन में कभी विश्वास भी नहीं होता। जब यह चलती हैं तब पंक्ति बाँध कर। पंक्ति से कोई चींटी विचलित नही होती। अगर जल में कोई भोज्य पदार्थ हो तो कितनी चींटियाँ जल मे पड कर पुल बँध जाने की नियत से प्राण दे देती हैं और अन्यान्य चींटियाँ उस खाद्य को खींच खाँच लाती हैं। मीठे से चींटियों का बडा प्रेम है। इससे मीठी चीजों पर ये झुक पडती है। ये घर बनाने में भी बडी चतुर होती है। टीले, भीत और जमीन के भीतर बिल में इनके सुन्दर मकान बने रहते हैं। चींटियाँ आपस में बडे प्रेम-भाव तथा सहानुभूति से बरतती हैं और एक दूसरे को खूब पहचानती हैं। यदि कोई इन्हें बाधा पहुँचाता है तो जी जान से उसका प्रतिकार करती हैं। चींटियाँ केवल अपने ही लिये नहीं बल्कि परिवार भर के लिये काम करती हैं। मीठी चीजों के सिवा ये बडे २ कीडों को भी मार कर खा जाती हैं। कहीं अंडा ले जाना हो तो मुँह में पकड कर ले जाती है। ये चींटियाँ सदा अपने काम में लगी रहती हैं और अपना थोडा समय भी बरबाद नहीं करतीं।

शिक्षा की बात—एक आदमी ने चींटी को पोस कर इसके कार्यों का बहुत पर्यवेक्षण किया था। उसने देखा कि चींटियाँ सवेरे से आठ बजे तक लगातार काम करती हैं।

उसने चीटियों से बहुत से उपदेश लिये थे। हम लोग भी इससे, एक साथ मिलजुल कर रहना और काम करना, परिश्रम से दिन बिताना और समय को व्यर्थ न खोना, अग्रशोची हो अपनी रक्षा का उपाय करना, परस्पर दुःख-सुख में सहानुभूति रखना, सच्चा और परिमितव्ययी होना आदि गुणों को सीख सकते हैं।

उपकार और अपकार—ये घर के मरे चूहे, छोटे २ कीड़ों को खींच खींच कर दूर ले जाती हैं। बीमारी फैलाने वाले बहुत से कीड़ों को खा जाती हैं। साथ ही साथ मधु, मिश्री, गुड़, चीनी आदि मधुर पदार्थों को चाट जाती हैं। किननी तो खाद्य पदार्थों में पड़ कर मर भी जाती हैं। इनसे ये ही उपकार अपकार होते हैं। पर आदमी सीखना चाहे तो इस छोटे जीव से बहुत कुछ सीख सकता है।

मकड़ा (The Spider)

परिचय—मकड़ा जाला तानने वाला एक कीड़ा है। इसे प्रायः सभी जानते हैं।

आकार-प्रकार—मकड़े के आठ पैर होते हैं। चार बड़े और चार छोटे। इसके कई भेद हैं। किसी २ मकड़े के पैर बहुत बड़े होते हैं और शरीर भी कुछ बड़ा। कोई २ मकड़ा तो बहुत बड़ा होता है। इसका मकड़ा विषैला होता है। मकड़े की पंख या डैने नहीं होते। उसके माथे पर कुछ चमकीले बिंदु होते हैं। वे ही उसकी आँखें हैं।

वास स्थान—इसके रहने का कोई खास नियम नहीं है। पर यह प्रायः उन जगहों में रहता है जो गंदे रहते हैं और जिनमें झाड़-बुहार नहीं होता। दीवार, छत, कमरे और

कोनों में भी रहता है। पेड़, पौधे और डाल-पत्तों में भी जाल बना कर यह रहता है।

मकड़े का जाल—मकड़े के पिछले भाग में कई एक छेद होते हैं। उनसे एक लसीला पदार्थ निकलता है। उसीसे वह सूत कातता है और अपना जाल फैलाता है। जब उसे जाल बनाना होता है तो वह उस लसीले पदार्थ को एक जगह चिपका देता है और आप लटक कर झूलने लगता है। तागा बढ़ता जाता है और चारों ओर घूम कर पहिये का सा गोल जाल बना देता है। इन धागों में वह बड़ी तेजी से इधर उधर दौड़ा करता है। उसका यही जाल मक्खियों को बझा कर उसका भोजन जुटा देता है।

मकड़े की बुद्धिमानी—मकड़े का जाल देख कर आश्चर्य होता है कि एक साधारण कीड़ा बिना साधन के ऐसा काम कर दिखाता है जिसको चतुर कारीगर भी अनेक साधनों को लेकर भी नहीं कर सकता। उसके जाल में तानी भरनी की बड़ी बारीकी दीख पड़ती है। जब उसे शिकार पकड़ना होता है तब वह एक ओर दबका रहता है और सुबह शाम को घूमने फिरने वाले कीड़े ज्योंही जाल में आते त्योंही उन्हें जल्द जा कर पकड़ लेता है। यदि आदमी घर बैठे भी हाथ पैर चला कर कुछ उद्योग करता रहे तो वह मकड़े के समान सुख से दिन बिता सकता है।

प्रजापति या तितिली (The Butterfly)

जाति वा श्रेणी—यह एक सुन्दर कीड़ा है। बेरीढ़ के जीवधारी कीड़ों में तितिली की श्रेणी प्रधान है। इसका खून बदरङ्ग और ठढ़ा होता है।

आकार-प्रकार—इसका रङ्ग बहुत ही चमकीला और मनोहर होता है। पाँख अनेक चित्र-विचित्र रङ्गों से चित्रित रहते हैं। पाँखों पर एक प्रकार के धूलिकण होते हैं। स्पर्श करने से हाथ में वे चिकने धूलिकण लग जाते हैं। वे पङ्ख हमेशा सीधे खड़े रहते हैं। आँखें बड़ी होती हैं। मुँह में एक प्रकार की नली होती है। वह उसे मनमाने भीतर बाहर कर सकती है। पंख चार होते हैं। देह बड़ी मुलायम होती है। इसके तीन हिस्से हो सकते हैं—पेट, छाती, सिर। इसकी देह में कई जोड़े होते हैं जिससे यह बड़े मजे में देह हिला डुला सकती है। इसकी देह में तीन जोड़े पैर होते हैं। इन छ पैरों में भी जाँघ, पैर और तलवा करके तीन हिस्से हैं।

स्वभाव—तितली छोटे २ अंडे पारती है। वे पत्तियों में चिपटे रहते हैं। जब वे बड़े होते हैं तब पत्ते खाते और प्रौढ़ होते हैं। क्रमशः शारीरिक परिवर्तन से उनमें पंख यथाक्रम निकल आते हैं और ठीक तितलियों के आकार के हो जाते हैं।

प्रश्न—तितली, [illegible]

पञ्चम पाठ—सरीसृप (Reptiles)

साँप (The Snake)

जाति या श्रेणी—साँप सरीसृप जाति के जीवों में सब से प्रधान है। इनमें से अत्यधिक विष रहने के कारण इनका नाम विषधर भी है। ये जल और थल दोनों में रहते हैं।

आकार-प्रकार—साँपों का शरीर लम्बा और लता के समान लचकीला होता है। देह छोटी बड़ी सब प्रकार की होती है। कितनों की इतनी विशाल देह होती है कि वे चल फिर नहीं सकते। इन्हें अजगर कहते हैं। इनकी विशालता की कोई सीमा नहीं है। साँपों की देह एक चमड़े की खोल से मढ़ी रहती है। वह शरीर में चमड़े के समान चिमटा रहता है। इस पर गोलाकार चकत्ते रहते हैं। नीचे लगातार लम्बी-लम्बी लकीरें चमड़े पर रहती हैं। ये ही जमीन पर पैर के काम देती हैं और इन्हीं के सहारे साँप पृथ्वी पर सरकता हुआ खूब तेज चलता है। यदि खूब चिकनी जमीन हो तो इनका चलना कठिन हो जायगा। इस चमड़े की खोल को, जब वह पुराना हो जाता है साँप छोड़ देता है जिसे सब लोग केंचुल कहा करते हैं। इनका शरीर मोटा से मोटा और पतला से पतला होता है और रंग भी भिन्न भिन्न प्रकार का। गहुमन साँप को सिर पर फन होती है। उस पर गोखुर के चिह्न होते हैं। साँप जब चाहे तो उसे फैला सकता है और एक हाथ जमीन से ऊपर उठा भी सकता है। साँपों की आँख गोली २ और चमकीली होती है। नथने सिर के निकट होते हैं। इनकी जीभ फटी और हमेशा लटपटाती रहती है। इससे इन्हें द्विजिह्व कहते हैं। साँप को कान नहीं होते, वे आँखों ही से सुनते हैं। इससे साँपों का नाम चक्षु-श्रवा भी है। मुँह में दाँतों की कतार रहती है। जहरीले साँपों के दाँत कुछ कड़े होते हैं। साँप बहुत वर्षों तक जीते हैं।

वास-स्थान—साँप ग्रीष्म-प्रधान देशों का जीव है। इस से भारत, अफ्रिका और मलयद्वीप-पुञ्जों में ये अधिकतर मिलते हैं। साँपों में गहुमन (गोखुरा), करइत, नाग और

अजगर भयानक और विषधर होते हैं और घामिन, डौंड़ बलार और होरहरा आदि निर्विष होते हैं। अमेरिका में अनेक प्रकार के साँप होते हैं। अफ्रिका के साँप बड़े विषधर होते हैं।

गुण और स्वभाव—साँपों की प्रकृति स्वभावतः क्रूर होती है। तथापि जब तक इन्हें कोई छेड़ नहीं करता तब तक किसी को ये काटने की चेष्टा नहीं करते। प्रायः निर्जन स्थानों में, पुराने मकानों और खँडहरों में, बिलों में गहुमन, करइत आदि साँप रहते हैं। ये बड़े जहरीले होते हैं। डौंड़ पानी में रहता है। यह बड़ा सीधा होता है। यह विषैला नहीं है। घामिन साँप कुछ बड़ा और डरपोक होता है। यह जहाँ रहता है वहाँ लोग धन होने की बहुत सम्भावना करते हैं। साँप प्रायः वायुभक्षी हैं। लावा दूध भी खाते हैं। मेंढक से बड़ा ही बैर है और वे इनके प्रधान भोजन हैं। छोटे २ अन्यान्य जीवों को भी ये निगल जाते हैं। साँपिन एक बार बहुत अण्डे देती है और सब को फोड़ कर पी जाती है। कोई कोई ऐसा अण्डा होता है जो उससे बच जाता है। इसीसे साँपिन को 'पुत्राशिनी' अर्थात् पुत्र खाने वाली कहते हैं। अजगर बड़े २ जानवरों को भी निगल जाता है। सर्प का विष प्राणनाशक है। वह आगसे, हवा और अन्यान्य उपायों से कम हो जाता है। साँप बहुत तेज दौड़ सकते हैं।

उपकार और अपकार—यद्यपि साँप मनुष्यों के एक प्रकार के काल हैं तथापि इन्हें मनुष्य [illegible] बनाया करता है। मदारी विषधर साँपों के विषैले दाँतों को उपाय से तोड़ कर अपने पास रखते हैं और उन्हें दिखा कर भिक्षा माँगते हैं। साँप के विष से अनेक रोगनाशिनी दवायें प्रस्तुत होती हैं। केंचुल भी दवा के काम आता है।

विशेषता—हमारे यहाँ साँपों की बड़ी महिमा गायी गयी है। पुराणों मे लिखा है कि वासुकि सर्प के सिर पर पृथ्वी है। भगवान् शेषनाग पर सोते है। बड़े २ विषधर शिवजी के भूषण है। नागपञ्चमी को नाग पूजा होती है। पुराने आर्य सर्पों के उपासक थे। इनमें वे देवांश समझते थे। ग्राम्य कथाओं में भी साँपों की अनेक कहानियाँ सुनी जाती है। मनियारे सर्प की कथा मशहूर है।

छिपकिली (Lizard)

जाति वा श्रेणी—छिपकिली रेंगने वाले जानवरों की श्रेणी में है। हिन्दी में कहीं २ इसे बिछुउतिया भी कहते है। संस्कृत में इसका नाम है 'पल्ली'। रेंगने वाले को उरङ्गम भी कहते है। क्योंकि ये छाती के बल चलते है। पर इनमें भेद है। साँप ही यथार्थत उरङ्गम कहा जा सकता है क्योंकि वह ठीक छाती के बल रेंग कर चलता है। पर बिछुउत, गिरगिट आदि कितने सरीसृप जीव हैं जो केवल छाती के बल से ही नहीं बल्कि पैर के बल से भी चलते हैं। छिपकिली इसी भेद में है।

आकार प्रकार—यह लगभग पाँच छ इञ्च लम्बी होती है। प्राय शरीर के आधे भाग में पूँछ है और आधे में सर्वाङ्ग। शिर छोटा, मुँह पतला, आँखें ठीक सामने बड़ी और चमकीली होती है। रङ्ग विशेषत भूरा होता है। काली छिपकिली भी होती है। सर्वाङ्ग पर एक प्रकार का चिन्ह मालूम होता है। उस पर जहाँ कहीं काली विन्दियाँ दिखलाई पड़ती है। पेट उजला और चिकना होता है। पैर चार होते है। दो आगे और दो पीछे। पिछले पैरों की अपेक्षा अगले पैर कुछ छोटे

रहती हैं। फिर पतली २ डालियों में फूल खिलते हैं। फूल के बीच में केशर रहता है।

वर्णन—अपने से उपजने वाला गुलाब बहुत देशों में पाया जाता है परन्तु हिन्दुस्तान में पहाड़ों के सिवा और कहीं नहीं मिलता। भारत में जितने गुलाब पाये जाते हैं सब लगाये हुए हैं। इनमें हल्का गुलाबी रंग होता है। इसकी कलियाँ बहुत सुन्दर होती हैं। फूलने पर यद्यपि देखने में छोटी मालूम होती हैं तथापि इसकी सुगन्ध बड़ी तेज और मीठी होती है। एक दो रोज के बाद इसकी पखड़ियाँ जब शिथिल हो जाती हैं तो झर पड़ती हैं। ऐसे गुलाबों से इत्र बहुत निकलता है। इसीका नाम देशी या फसली गुलाब प्रसिद्ध है। विलायती गुलाब देखने में बड़ा और सुन्दर होता है पर निर्गन्ध। कितनों का बहुत ही गाढ़ा लाल रंग होता है। ऐसे गुलाब भी बड़ी बड़ी फुलवाड़ियों में क्यारियों को दिखलाई पड़ जाते हैं।

उपयोग—फसलवाली गुलाब को साधारणतः सुगन्धि के लिये लगाते हैं। विशेषतः पूजा-पाठ में इसका ये उपयोग करते हैं। यही इसका मुख्य प्रयोजन है। वाटिका की शोभा बढ़ाना इसका गौण प्रयोजन समझा जाता है। कहीं कहीं अर्क उतारने और इत्र बनाने के लिये भी लोग इसकी खेती करते हैं। गाज़ीपुर में इसकी खेती होती है और बहुत से गुलाब बाग देखने में आते हैं। यहाँ इत्र और गुलाब के बड़े २ कारखाने हैं। गाज़ीपुर का इत्र और गुलाब बहुत प्रसिद्ध है। इससे बनाये गुलाब जल, गुलकन्द, गुलरोगन और और औषध की शोभा बढ़ाने के काम में आता है।

अर्क—गुलाब का अर्क भी उतारा जाता है। एक सेर में

गुलाब की पखड़ियाँ रखकर पानी भर देते हैं और उसका मुँह बन्द करके आग पर चढ़ा देते हैं। ऊपर का ढकना इस प्रकार होना चाहिये जिसमें पानी रह सके और यह फेर बदल करने से हमेश ठंडा बना रहे। आँच देने से फूलों में जो रस रहता है वह भाफ बन जाता है और ऊपर की सर्दी पाकर पानी के भाफ के साथ जल में परिणत होकर एक नली द्वारा दूसरे बर्तन में जा गिरता है। इस प्रकार जो अर्क निकलता है वह गुलाब या गुलाबजल कहाता है। इसी प्रकार सब चीजों का अर्क उतारा जा सकता है।

इत्र—यदि इस गुलाब को रात भर छोड़ दें तो उसके ऊपर गुलाब का तेल जमा हो जाता है। इसीको इत्र कहते हैं। बहुत अर्क में से बहुत कम इत्र निकलता है। यह बहुत मँहगा बिकता है। अब शायद ही कोई इस प्रकार इत्र तैयार करता हो। आज कल बाजार में जो इत्र मिलता है वह नकली है।

लाभ—इत्र और गुलाब बहुत ही अच्छी चीज हैं। इत्र से मस्तिष्क ताजा होता है। दुर्गन्ध-जनित विकार दूर हो जाते हैं। आदर सत्कार में इत्र का बहुत उपयोग होता है। गुलाब से सब प्रकार की चीजें सुगन्धित बनाई जाती हैं। बारात और महफिल वगैरह में छींटा जाता है। जल भी इससे सुवासित कर पीते हैं। इत्र और गुलाब का खाने पीने, पहनने ओढ़ने में सर्वत्र उपयोग होता है।

प्रश्न—कमल, बेला, नेवार, केवड़ा और जूही पर एक एक लेख लिखो।

छठा पाठ—घास (Grass)

ऊख या ईख—(Sugarcane)

परिचय—ऊख घास जाति का पौधा है । घासों में यह बहुत बड़ा मोटा और मजबूत होता है । संस्कृत में इसे इक्षुदंड कहते हैं ।

उपजने की जगह—इसकी खेती बहुत पहले भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर होती थी और यह वहीं से यूरोप में जाता था । अब इसकी अधिकतर खेती चीन, ब्रेज़िल, अमेरिका, पेरू, फिजी, इजिप्ट और भारत में होती है । ऊख देश भेद से भिन्न भिन्न तो होते ही हैं पर भारत में भी सनगो, बरउखा, गन्ना, कुसारी आदि इसके कई भेद होते हैं ।

ऊख की खेती—फागुन चैत में इसकी खेती शुरू होती है । छोटे २ ऊख की गुल्लियाँ किसे भर भर की काटते हैं । उनमें राख और पानी फेंट कर खेत के एक कोने में गाड़ देते हैं । दो तीन रोज़ के बाद प्रत्येक गिरह की आँखें जब कुछ बढ़ जाती हैं तब उसको बोने के उपयुक्त समझते हैं । खेत खूब अच्छी तरह से जोत कर तैयार रहता है । उसमें एक आदमी हर जोतता आगे चलता है । उसके पीछे लगभग दो हाथ के अन्तर पर दूसरा आदमी वही गुल्ली गिराते आता है और पीछे के सब आदमी इसे गाड़ते आते हैं । इस प्रकार बोने के बाद ऊख में बड़ी मेहनत होती है । जब तक लगभग दो हाथ तक ऊख बढ़ नहीं जाता तब तक कई बार पटाना और कोड़ना पड़ता है । जेठ की दुपहरी में पुरुषों को जलती हुई लू-लपटों में कोड़ते देख पड़ता पड़ता है कि वह कैसी पसीने से भीगे जाते हैं । पटाने और कोड़ने के अलावा

में गृहस्थ एक ऐसी कहावत कहते हैं 'तीन पानी तेरह कोड नव देखे ऊखी के पोर।" जब ऊख के लिये सुसमय होता है और वह कीड़े आदि से बच जाता है तब गृहस्थों के अनवरत परिश्रम और यत्न से ऊख बढ कर तैयार होता है। ज्यों २ वह बढता जाता है त्यों २ नीचे की पत्तियाँ सूखती जाती हैं। कार्तिक के छठ या देवठन (एकादशी) से नये ऊख को चूसना लोग आरम्भ करते हे। अगहन से उसको पेरना शुरू करते हैं और दो तीन महीनों में पेर पार कर छुट्टी करते हैं। इस प्रकार ऊख की खेती साल भर में खतम होती है। ऊख की खेती से बहुत नफा होता है। तीन चार सौ रुपये बिगहा भी सध जाता है। एक कहावत है "हाथी ऐसा व्यापार न ऊख की सी खेती" मतलब यह कि इससे बढ कर किसीमें अधिक लाभ नहीं।

गुड, चीनी आदि बनाना- जब ऊख का रस पाँच छ घड़ा तैयार हो जाता है तब उसको लोहे के कडाह में औटते हैं। गाढा हो जाने पर वह रस गुड हो जाता है। फिर यथा समय उसको उतार कर और ढाल कर गुड की चक्की बना लेते हैं। यही सब प्रकार के मधुर पदार्थ बनाने और खाने के काम में आता है। जब भेली (गुड की गोली) बनाना होता है तो रस छानते, दूध वगैरह देकर उसकी मैल निकालते और मिर्च सौंप वगैरह देकर जलपान के योग्य बना लेते हैं। जब चीनी आदि बनाना होता है तो बहुत गाढ़ा होने के पहले ढीले रस को एक गढ़े में ढारते जाते हैं। इस प्रकार राब तैयार होता है। राब से छोआ निकाल कर कुछ साफ कर देते हैं तो वह भूरा और शकर कहलाने लगता है। राब को फिर औटकर और दूध वगैरह देकर उसकी मैल साफ

करते हैं। फिर चेवार प्रक्रिया से उसे खूब साफ करते हैं तो चीनी बन जाती है। अब तक इसके कई कारखाने यहाँ पर हैं और यहाँ ही आजकल शुद्ध चीनी मिलती है। आजकल अधिकतर चीनी कल से ही तैयार होती है। कलें यहाँ पर भी हैं। बाहर से भी कल द्वारा चीनी बन कर आती है। ऐसी चीनी को मोरिस कहते हैं। चीनी ही की विशेष प्रक्रिया से मिश्री बनती है। मिश्री ही से ओला बनता है, जो मिश्री से भी उत्तम होता है। इसमें जरा सी भी मलिनता नहीं रहती।

लाभ—गुड़ और चीनी के बिना कोई चीज मीठी नहीं हो सकती। जहाँ गुड़ नहीं होता वहाँ मधु से भी मीठा पदार्थ तैयार होता है, पर वैसा नहीं। खजूर का भी गुड़ होता है पर वैसा अच्छा स्वाद उसका नहीं होता। यूरोपीय पण्डित ताड़, अंगूर, दूध, आदि अन्यान्य पदार्थों से भी चीनी काढ़ते हैं, पर वह इतना थोड़ा है कि उससे कुछ होने जाने का नहीं। जहाँ तक मधुर पदार्थ भिन्न २ प्रकार के हैं सब गुड़ चीनी को ही बदौलत बनते हैं।

प्रश्न—धान, [illegible] पर एक एक लेख लिखो।



समस्त आष्ट्रेलिया, भारत, अफ्रिका, न्यूजीलैंड का टापू, साइप्रस, हाङ्काङ्ग आदि अंग्रेजी शासन के अधीन हुए। क्राइमियम युद्ध, चीनयुद्ध, बुअरयुद्ध, अमेरिका की लड़ाई आदि कई एक युद्ध हुए जिनमें अंग्रेजी सेना ने बड़ी प्रसिद्धि पाई और प्राय हरेक लड़ाई में इङ्गलैंड ही की विजय हुई।

देश के सुधार, उन्नति और भलाई के लिये अनेक कानून बनाये गये। सार्वजनिक स्वास्थ्य का नियम हुआ, जिससे देश में हैजा आदि भयङ्कर रोगों का प्रभाव कम हो गया। शिक्षा के नियम बने जिन से शिक्षा सब इङ्गलैंडवासियों के लिये बाध्य कर दी गई और देशीय प्राथमिक शिक्षा मुफ्त में दी जाने लगी।

इस समय ग्रेट ब्रिटेन की जन संख्या दूनी, धन प्राय तिगुना और व्यापार छ गुना बढ़ गया था। उपनिवेशों की भी ऐसी ही तरक्की हुई। कलाकौशल, व्यापार और विज्ञान की भी बहुत अधीक उन्नति हुई। बिजली के द्वारा नये नये आविष्कार हुए।

पचास वर्ष का शासन समाप्त होने पर १८८७ ई० में बड़ी धूम धाम से जुबिली का उत्सव मनाया गया। महारानी की सारी प्रजा ने दिल खोल कर अपना आह्लाद और अनुराग प्रकट किया। उसके दश वर्ष बाद १८९० ई० में हीराजुबिली का उत्सव हुआ। इसमें पहले की अपेक्षा चोगुनी धूमधाम से उत्सव मनाया गया। भारतवासियों ने इस मौके पर अपनी सर्वप्रसिद्ध राजभक्ति दिखलाई। २२ जनवरी १९०१ को सम्राज्ञी विक्टोरिया ने परलोकवास किया।

उपसंहार—महारानी विक्टोरिया बड़ी उदार-प्रकृति की थीं। ये बड़ी ही योग्य, विज्ञ तथा राज्य शासन में प्रवीण थीं। इन्होंने अपने समय में राजा और प्रजा में पूर्ण विश्वास और

प्रेम उत्पन्न करके राष्ट्र को बहुत सबल और दृढ़ बना दिया। इनमें अनेकानेक गुण थे। इनका सौहार्द, बुद्धिमत्ता, प्रजाओं पर ममता, जीवन में पवित्रता और कामकाज में निःस्वार्थ भक्ति की मात्रा बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी। इनके शान्तिमय सुदीर्घ राज्य काल में जनता ने अपूर्व शान्ति-सुख लाभ किया। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि अपनी समस्त प्रजा को महारानी एक दृष्टि से देखती थीं और वे भी उनकी ओर सानन्द और पूज्यबुद्धि से देखते थे। इतिहास में सम्राज्ञी विक्टोरिया के राज्यकाल का यह स्थान है जो इनके पूर्व किसीको उपलब्ध नहीं था।

प्रश्न—चन्द्रगुप्त और अकबर का राज्य, सिकन्दर का भारत आक्रमण, [illegible] [illegible] की लड़ाई और १८५७ की [illegible] पर एक एक लेख [illegible]।

द्वितीय परिच्छेद—जीवनचरितात्मक प्रबन्ध।

BIOGRAPHICAL ESSAYS

प्रथम पाठ—प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी।

(Lives of Great men)

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

भूमिका—"विद्यासागर" इस शब्द से केवल बंगाल ही में नहीं किन्तु अन्यान्य प्रान्त में भी सभी पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम लेते हैं। विद्यासागर भारतवर्ष में जैसे विशिष्ट विद्वान, कर्मकर्ता, परोपकारी, देशहितैषी, दयालु और सुधारक समझे जाते हैं वैसे इंग्लैंड आदि देशों में भी अंकित हैं। विद्यासागर का नाम चिरस्मरणीय कहा जाय तो इसमें भी अत्युक्ति नहीं होगी।

जन्मकाल—प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म ता० २६ सितम्बर सन् १८२० ई० में मेदिनीपुर जिले के वीरसिंह ग्राम में हुआ था। आप के पिता पण्डित ठाकुरदास एक दरिद्र ब्राह्मण थे। कलकत्ते में सिर्फ ८) रु० पर नौकरी करते थे। उनकी बडी इच्छा थी कि ईश्वरचन्द्र किसी प्रकार पढ़ लिख जाय।

विद्याध्ययन—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जब ५ वर्ष के थे तब गाँव की पाठशाला में पढ़ने लगे। इसी समय से बालक विद्यासागर अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय देने लगे। कुछ साल के बाद वे कलकत्ता पढने के लिये आये। आने के समय इन्होंने माइल-स्टोन के अङ्कों को देख कर अंग्रेजी संख्या ठीक कर ली और कलकत्ते मे पहुँच कर एक बिल का जोड ठीक कर दिया। आठ वर्ष के बालक का यह चमत्कार देख कर सब विस्मित हुए। नव वर्ष की उम्र में कलकत्ता संस्कृत कालेज में इनका नाम लिखा गया। क्रमश ईश्वरचन्द्र ने अत्यन्त मनोयोग, असाधारण अध्यवसाय, अतिशय आग्रह और आनन्द से व्याकरण, साहित्य, अलंकार, स्मृति, न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि विविध शास्त्रों को केवल १२ वर्ष में पढ़ डाला। पढ़ने के समय अपनी कक्षा में सर्वोच्च स्थान अधिकार कर वे सभी उच्च पुरस्कार और वृत्ति पाते रहे। सभी अध्यापक उनका परिश्रम और प्रतिभा, सदाचार और सद्व्यवहार देख कर मुग्ध हो गये। २० वर्ष की अवस्था में जब सर्व-शास्त्र पारदर्शी होकर कालेज से अलग होने लगे तब वहाँ के सब अध्यापकों ने 'विद्यासागर' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया।

कार्यकाल—कालेज छोडते ही विद्यासागर को फोर्ट

लियम कालेज में ५०) के प्रधान पण्डित का पद मिला। समय इनका पाण्डित्य प्रकट होने लगा और उन्नति भी साथ साथ होती गई। बाद यथावसर संस्कृत कालेज के सहकारी सम्पादक, सहकारी अध्यापक और अन्त में उसके अध्यक्ष (Principal) हुए। विद्यासागर ही बंगालियों में सर्व-प्रथम प्रिंसिपल थे। इसी समय कितनी ही संस्कृत पुस्तकों का संस्करण, सम्पादन और अनुवाद तथा कितने नूतन संस्कृत ग्रन्थ विद्यासागर ने लिखे। फिर वे असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर हुए। अब इन्हें ५००) रुपये मासिक मिलने लगा। इसी समय इन्होंने स्कूल-सम्बन्धी कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं और अन्यान्य शिक्षा-सम्बन्धी सुधार किये। तीन वर्ष इन्स्पेक्टरी करके इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी। अवशिष्ट जीवन इन्होंने देश और समाज के हितकर कार्यों में बिताया।

गुणावली—विद्यासागर ही ऐसे अध्यवसायी व्यक्ति थे जिन्होंने इतनी दीन हीन अवस्था में विद्योपार्जन किया। जब वे कलकत्ते आये थे तब दोनों साँझ चौका बर्तन करना, रसोई बनाना, हाट-बाज़ार करना, पिता और भाई की सेवा करना आदि सब काम इन्हींको करना पड़ता था, तथापि अपने पढ़ने का समय वे खूब निकाल लिया करते थे। आधी रात में उठ कर सबेरे तक वे पढ़ा करते थे। रसोई बनाने के समय और दाल बाटने के समय भी वे अपना पाठ याद करना नहीं भूलते थे। इनमें माता पिता की भक्ति कूट कूट कर भरी थी। नौकरी लगते ही इन्होंने पिता को नौकरी से अलग कर घर पर रहने को भेज दिया। एक बार इनकी माँ ने इन्हें देखने के लिए अभिलाषा की और वे [illegible] दामोदर नदी पार कर घर जा पहुँचे। [illegible]

दरिद्रों का दुःख छुड़ाना, अनाथों को आश्रय देना और सत्कर्म करने वालों को उत्साह देना इनका प्रधान काम था। इनका अत्यन्त कोमल हृदय स्वदेश-वासियों का कष्ट सहन नहीं कर सकता था। इनके दान की सीमा नहीं थी। ये स्वदेश और स्वजाति का प्यार करते थे। अपनी अशेष हानि उठाकर स्वदेश और स्वजाति के लिये ये अनेकानेक कार्य कर गये हैं। परोपकार, करुणा और वात्सल्य की ये मूर्ति ही थे। इनमें जैसी स्वाधीन चित्तता और आत्मनिर्भरता थी वैसी अब तक किसी में न देखी गई। ये अपने विचार से तिल मात्र भी डिगते न थे। इन्होंने ५००) की नौकरी छोड़ दी पर अपना विचार नहीं बदला। कोई कैसा ही काम हो, जो अपने से हो सकता था, उसमें ये दूसरे की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं करते थे। विद्यासागर के समान उदार-प्रकृति और स्वाधीन मनुष्य दुर्लभ है। उनका वेश ऐसा साधारण था कि सब लोग उन्हें पहचान भी नहीं सकते थे। महापुरुषों में जितने गुण होने चाहिये वे सब इनमें वर्तमान थे। इसी गुणावली से बंगाल के छोटे लाट तक के ये आदरणीय थे।

सुधार—विद्यासागर सुधार के भी बड़े पक्षपाती थे। बाल-विवाह, वृद्ध विवाह और बहु-विवाह के बड़े ही कट्टर शत्रु थे। इसके लिये इन्होंने बड़ा यत्न किया। इनके जीवन का उद्देश्य विधवा-विवाह का प्रचार भी था। इन्होंने १८५६ में इसका क़ानून भी बनवा डाला।

साहित्यसेवा—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे आधुनिक हिन्दी लेखन-प्रणाली के जन्मदाता थे वैसे ही आधुनिक बङ्ग साहित्य के जन्मदाता विद्यासागर थे। उनके पहले गद्य की कोई सुललित प्रणाली नहीं थी। इन्होंने ही गद्य-साहित्य को नवीन

आकार और गाम्भीर्य देकर उसका गौरव बढ़ाया। उनकी स्वच्छ, सुमिष्ट और गम्भीर लेखन प्रणाली से सभी मुग्ध थे। 'सीतार बनवास' इसके उदाहरण के लिये पर्याप्त है। शकुन्तला, कथामाला आदि और भी इनकी बहुत सी पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। संस्कृत की पुस्तकों में इनकी व्याकरण कौमुदी चारों भाग और उपक्रमणिका बहुत प्रसिद्ध है। इन्हींकी देखादेखी नये ढंग-ढंग से संस्कृत सीखने के लिये कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

देशसेवा।—इन्होंने अपने मकान पर उच्च श्रेणी का एक अवैतनिक विद्यालय और चिकित्सालय खोल रक्खा था। बंगाल में होमियोपैथिक चिकित्सा के प्रवर्तक ये ही थे। आप ऋण ग्रस्त होकर फ्रांस में अपने दान से 'मेघनाद वध' काव्य कर्त्ता माइकेल मधुसूदन दत्त को मृत्यु मुख से मुक्त किया था। कलकत्ते में इनका स्थापित फर्स्ट ग्रेड कालेज इनकी अक्षय कीर्ति का उद्योत कर रहा है। ऐसे ही आपकी देशसेवा के अनेक कार्य्य हैं।

जो विद्यासागर दयासागर हो दीनों के दुःख दूर कर रहे थे वे ७१ वर्ष की उम्र में १८९१ ई० में ऐहलौकिक लीला समाप्त कर परलोक को सिधारे।

सुकरात का जीवन-चरित्र।

इतिहासों से प्रगट है कि यूनान देश प्राचीन काल में एक समय को विद्या, शिल्प, विज्ञान आदि के लिये अति प्रसिद्ध था, यहां तक कि विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगा। वहीं के बड़े बड़े विद्वान दार्शनिकों में एक सुकरात भी था। यह ईसाई सन के ४७१ वर्ष पहिले

आसीनिया नगर में पैदा हुआ था, और "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस कहावत के अनुसार छोटी ही उमर में अपने बाप के सौदागरी पेशे का काम झटपट सीख सिवाय भली भाँति प्रखर हो गया। तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों में काटने लगा, जिनके सत्संग से कुछ दिनों के उपरान्त अपनी विमल बुद्धि के कारण यह सम्पूर्ण विद्या, विज्ञान और शिल्प शास्त्र में भली भाँति कुशल होकर यूनान के बड़े बड़े विद्वान् और दार्शनिकों से भी वाद विवाद में भिड़ जाता था। उनका पक्ष खण्डन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था, यहाँ तक कि कुछ दिनों में सम्पूर्ण यूनान भर में इसके लोकोत्तर चमत्कार बुद्धि की धूम मच गई। एकबार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार लूट, जो उस समय का यूनानी सिक्का था, निज के खर्च के लिये दे गया था, पर इसने उन सब रुपयों को बतौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया था। उसने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिये, पर सुकरात ने इस बात का कुछ भी ख्याल न किया और न उससे रुपये कभी माँगे। मेसिडोनिया के राजा अर्किलीस ने बहुत कुछ चाहा कि सुकरात एक बार उससे किसी बात के लिये कुछ कहे पर इसने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न दिया। इस बुद्धिमान् हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रंज जो इस पर आ पड़ते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों पर उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था, उसके मन की सबसे बड़ी अभिलाषा—जिसके लिए यह अत्यन्त लौलीन रहा करता था—यह थी कि जिस तरह हो सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ

कागज और कपड़े के अलावे चमड़े के जिल्द भी बँधते हैं। रंगीन अक्षरों में नाम छापने के अतिरिक्त रुपहले सुनहले अक्षरों में भी नाम छापे जाते हैं। कागज भी भाँति २ के सुन्दर, भारी, हलके, महगे और सस्ते मिलने लगे हैं। पत्रावली पुस्तक जो प्रायः लीथो में छपती थीं और गाते के भीतर रक्खी जाती थीं, अब नहीं छपतीं। अब हरेक प्रकार की पुस्तकें सादी और जिल्ददार ही छपती हैं। अब सुदर्शन होने के साथ ही पुस्तकें सुलभ भी हो गई हैं।

उपसंहार—पहले जब पुस्तकें नहीं थीं और न लिखने पढ़ने का कुछ सामान ही था तब लोग एक दूसरे के विचार को कण्ठस्थ कर रखते थे। उसके बाद किसी प्रकार कुछ लिखना पढ़ना होने लगा तो पूर्वोक्त साधन से लोग काम लेने लगे। पर इन दोनों बातों से शिक्षा प्रचार और ज्ञान विस्तार में इतनी असुविधायें थीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अब पुस्तकों के हो जाने से एक सुविस्तृत ज्ञान भाण्डार हमें मिल गया है। उस अक्षय ज्ञान भाण्डार को लूट लूट कर अनेक मनुष्य देश और समाज की बहुत कुछ उन्नति कर रहे हैं और करते जायँगे। एक आदमी के विचार यदि किसी कारण में चर्चा न हो, यदि ग्रन्थ में लिख दिये गये हों तो वह सैकड़ों वर्ष तक पढ़ कर अनेकानेक मनुष्य लाभ उठा सकते हैं। ऐसे ही कोई शिक्षा, कोई ज्ञान तथा कोई आवश्यक और उपयोगी बात हो, झटपट चारों ओर दुनिया में होने से फैल जा सकती है। संसार में ग्रन्थों से जो लोगों को लाभ पहुँचा है वह लाभ प्राप्त करने के और दूसरे साधन से हो नहीं सकता।

किला (Fort)

'पैथगढ़' का किला 'हैदराबाद' के सामान्य मील की दौर

के उत्तर और पश्चिम के कोने में है। यह किला भी बहुत ऊँची पहाडी के ऊपर विचित्र ढंग का बना हुआ है जिसके देखने से आश्चर्य होता है। पहाड का बहुत बडा हिस्सा छील कर दीवार की जगह कायम किया गया है। पहाड के चारों तरफ एक खाई है और उसके बाद तेहरी दीवार है। अन्दर जाने का रास्ता किसी तरफ से मालूम नहीं होता। शहर उन तीनों दीवारों के बाहर बसा हुआ है और शहर के बाहर शहरपनाह की बडी मजबूत दीवार है। पहाड काट कर अन्दर ही अन्दर किले में जाने के लिये सीढियाँ बनी हुई हैं जैसे किसी बुर्ज या धरहरे के ऊपर चढने के लिये सीढियाँ होती हैं। उस राह से जानकार आदमी का भी बिना मशाल की रोशनी के सीढ़ियाँ चढ कर किले के अन्दर जाना बहुत मुश्किल है। किले के अन्दर जहाँ वह रास्ता पूरा हुआ है उसके मुँह पर बडा भारी लोहे का तावा इसलिये रक्खा हुआ है कि यदि कदाचित् दुश्मन इस रास्ते में घुस आवे तो तवे के ऊपर सैकडों मन लकडियाँ रख आग जला दी जाय जिसमें उसकी गरमी से दुश्मन अन्दर ही अन्दर जल मरे। इस किले के अन्दर पानी के कई हौज हैं और एक सौ साठ फुट ऊँचा एक बुर्ज भी है, जिस पर से दूर दूर की छटा दिखाई देती है। यह किला अभी तक देखने लायक है, देखने से अकिल दंग होती है। मुमकिन नहीं कि कोई इसे लड कर फतह कर सके। चौदहवीं सदी में दिल्ली का बादशाह "तोगलक" दिल्ली उजाड के वहाँ की रिआया को देवगढ में बसाने के लिये ले गया था और देवगढ़ का नाम दौलताबाद रख कर अपनी राजधानी कायम की थी। परन्तु अन्त में उसे पुन. लौट आना पडा। देवगढ़ के इर्द गिर्द में कई स्थान अब भी देखने योग्य हैं

जिसका आनन्द देशाटन करने वालों ही को मिल सकता है ।

—बाबू देवकीनन्दन खत्री ।

प्रश्न—रचबोल म्योमपाल, कोई अपूर्व भवन, कोई सुन्दर बाग और मन्दिर पर एक २ लेख लिखो ।

चतुर्थ पाठ—प्राकृतिक वस्तुयें और दृश्य आदि ।

(Natural objects and sceneries)

नदी तट पर सायंकाल ।

(An evening on the bank of a river)

दिन भर गर्मी के मारे बेचैन पड़ा रहा । सायंकाल होने का समय निकट आया नदी की ओर निकल ही चल पड़ा । नदी को देखते ही एक प्रकार आँखों में ठंडक पहुँची । तट पर पहुँच कर इधर उधर टहलने लगा । सूर्य की प्रखर किरणें शान्त हो चली थीं इससे हवा में भी ठंडक आ गई थी । वायु नदी की ओर से बह कर तन तन को शीतल करने लगी । मन विकसित हुआ । हृदय देह पुलकित हुई । नदी की लोल लहरियाँ अनेक २ लीलायें कर रही थीं । एक के पीछे दूसरी लहर उठा करती थी । कभी इनके परस्पर सम्मेलन से जल की नन्हीं २ बूँदें उछल रही थीं । यह मनोहारी दृश्य सच मुच मनोमोहक था । जब इनमें सूर्य की किरणें प्रवेश करतीं थीं तो जो अनुपम रङ्ग लोगों को दृष्टि गोचर होते थे वे बूँदें के कारण शोभित होते जान पड़ते थे । धीरे २ सूर्य का चक्र डूब गया । आकाश की लाली मिट चली । अँधेरा होने लगा । पक्षी पेड़ों पर जा कलरव चहचहाने लगे । नदी के निकटस्थ मंदिर में घड़ियाल बजने लगी । घड़ियाल में एक, दो, तीन, चार

कर करके शत २ नक्षत्र जगमग २ दिखलाई पड़ने लगे। उ
लोगों का चाकचिक्य अपूर्व मनोरञ्जक हुआ। गगनमण्डल
देदीप्यमान दीपक के समान नक्षत्रमण्डल हीरकखण्ड क
लज्जित करने लगे। उनके बीच दिव्य आभा से आभासि
चाँदी के थाल से पूर्णचन्द्र विराजमान हुए। क्रमश उनक
प्रकाश बढ़ने लगा। अब वे परम रमणीय रूप धारण क
अनिर्वचनीय आनन्दोल्लासकारी सुधामय किरणों से जगत् क
सुधापूर्ण करने लगे। कभी २ उनका प्रकाशमान रश्मिजा
सलिल के तरलतरङ्गों में प्रविष्ट होकर कम्पायमान होते हु
अन्त करण को हरण करने लगता। उस समय चारों ओ
जो सुषमा बरस रही थी उसका वर्णन करना बड़ा ही कठि
है। क्योंकि वह आँखों ही से देखने और सहृदय हृदय ही
अनुभव करने योग्य था। मैं एक स्थान पर आसन जमा क
बैठ गया। ऊपर से चाँदनी बरस रही थी। कल्लोलिनी क
कलरव कानों में गूँज रहा था। शीतल समीरण तन मन प्राण
प्रसन्न कर रहा था। जलकण आ आकर अङ्गों को आर्द्र क
रहे थे। आँखों में अजब समा समा रहा था। प्रकृति शान्
और निस्तब्ध हो चली तो भी स्वर्गीय साम्राज्य के सुख से
चित्त वञ्चित होना नहीं चाहता था। कह नहीं सकता कि
कब तक मैं उस नदी तट पर बैठ कर यह प्राकृतिक दृश्य
देखता रह गया।

समुद्र (The Sea)

परिचय—पृथ्वी पर सब से बड़ा जो जल का आकर है उसका नाम है समुद्र। समुद्र भी उस महासागर का छोटा हिस्सा है जो पृथ्वी को चारो तरफ से घेरे हुए है। समुद्र रत्नों की खानि होने से रत्नाकर और पृथ्वी पर बहने वाली

सारी नदियों के आश्रयभूत होने से सरित्पति के नाम से भी प्रसिद्ध है।

उत्पत्ति और इतिहास—समुद्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई तरह की बातें हैं। कहते हैं कि जब इन्द्र ने सगर राजा के अश्वमेधीय अश्व को चुरा लिया और उनकी सन्तानें ढूँढ़ कर जब थक गईं तब सगर ने सम्पूर्ण पृथ्वी को खोद डालने को कहा। ऐसा ही उन्होंने किया और कपिलमुनि के पीछे जहाँ आजकल महासागर का सङ्गम है, बँधे हुए अश्व को पाया। इस तरह जो स्थान खुदा हुआ था, समुद्र हो गया। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जब जलमयी सृष्टि थी तब जिस स्थान पर आवश्यकता थी ईश्वरेच्छा से पृथ्वी उत्पन्न हो गई इत्यादि। पर, प्राकृतिक तत्ववेत्ताओं का सिद्धान्त यह है कि पृथ्वी जब तरलावस्था से सङ्कुचित होने लगी तब उसका कुछ भाग ऊँचा हो गया और कुछ गहरा। गहरा स्थान ही कालक्रम से जलपूर्ण हो समुद्र हो गया। कभी २ इस गर्मी के कारण अब भी जल-स्थल में अनेकानेक विकार उत्पन्न हुआ करते हैं।

आकार—समुद्र का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल से लग-भग तिगुना है। समुद्र के पानी की गहराई भूमि की ऊँचाई से अधिक है। इतना गहरा होने पर भी अनुसन्धानकारी यात्रियों ने उसके तल भाग का पता लगा लिया है। उसके जीव जन्तु, सिपी, घोंघे, पत्थर, कीच, पेड़, पौधे और अन्यान्य वस्तुओं तक का पता लगा लिया गया है। समुद्र का पानी खारा होता है। कोई कोई ऐसा स्थान है जहाँ का जल कुछ मीठा होता है। यह पार्थिव विकार से होता है। कहीं २ ध्रुव-प्रदेश के समुद्र का पानी जम कर बर्फ हो जाता है।

दृश्य—समुद्र के तट पर खड़ा होकर यदि समुद्र की ओर दृष्टि फेरे तो जहाँ तक दिखाई देता है जल ही जल देख पड़ता है। समुद्र के सुविस्तृत जलतल में हमेशा वायु बहने के कारण छोटी २ लहरें उठा करती हैं। कभी २ तो बहुत ही ऊँची लहरें उठा करती हैं। समुद्र में चलते हुए जहाज जब भारी अन्धड़ आता है तब लहरों में पड़ कर डूब जाते हैं। प्रात और सन्ध्या के समय सूर्य की किरणों से, मेघ छा जाने से और बूँदों के पड़ने से समुद्र का सुदृश्य बड़ा ही मनोहर होता है।

उपकार—समुद्र अनेक प्रकार से मनुष्यों का लाभकारी है। सामुद्रिक पथ से ही जहाज द्वारा अनेक आवश्यक वस्तुयें हमें प्राप्त होती हैं। समुद्र के अनेक जीव जन्तु मनुष्यों के काम आते हैं। इसके गर्भ से भी अनेक अमूल्य वस्तुयें हमें यथासमय मिला करती हैं। सामुद्रिक जल से जो अत्याधिक वाष्प उठता है उससे मेघ बनते हैं और उनसे सर्वत्र वर्षा होती है। समुद्र ही के द्वारा बड़े २ जहाज आते जाते हैं जिन पर चढ़ कर हम विदेश जाते और अनेक तरह के लाभ उठाते हैं। समुद्र से मोती मिलते हैं और अन्यान्य बहुमूल्य रत्न भी पाते हैं। समुद्र विश्वकर्ता की विश्वसृष्टि के रचना कौशल और महिमा का अपूर्व उदाहरण है।

गंगा नदी (The Ganges)

परिचय—भारतवर्ष की सब से बढ़ी चढ़ी नदी गङ्गा है। हिन्दू इसको बड़ी पवित्र मानते हैं। पुराणों में लिखा है कि गङ्गा भगवान् के चरण और शिव की जटा से निकली है और सूर्यवंशी राजा भगीरथ ने अपने मृत पूर्व पुरुषों के उद्धारार्थ

ड़ी तपस्या से पृथ्वी में इसे प्रवाहित किया है। इसीसे इसका एक नाम भागीरथी भी है।

उत्पत्ति और प्रसार—हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रान्त से जहाँ से सतलज नदी निकली है, गङ्गा भी कुछ ही दूर पर निकली है और लगभग १५०० मील बहने के बाद बंगाल की खाड़ी में गिरी है। पहले दक्षिण पूर्व की ओर फिर बंगाल में ५०० मील के लगभग राजमहल तक सीधे पूर्व की ओर बही है। राजमहल के बाद फिर पहले की तरह दक्षिण पूर्व में बहती हुई अनेक डेल्टाओं को बनाती हुई समुद्र में जा मिलती है। स्थान-भेद से इसके भागीरथी, गङ्गोत्री, फिर जाह्नवी आदि नाम भी होने गये हैं। जब यह सम्मिलित धारा अलकनन्दा से मिलती है तब इसका नाम गङ्गा होता है। हरिद्वार से फिर सीधी बहती हुई प्रयाग में जहाँ यमुना और सरस्वती का भी संगम है, आई है। फिर इसमें क्रमशः यथा स्थान घर्घरा, गोमती, राप्ती, गण्डक, कूसी आदि नदियाँ मिलती गयी हैं। बंगाल में फिर यह भागीरथी आदि के नाम से कई भागों में बँट गई है और कुछ दूर जा कर फिर भी उनमें से कुछ नदियों से मिलती है। गङ्गा की प्रधान धारा पद्मा नाम से प्रसिद्ध है। यह कलकत्ते के पास से भी एक धार बही भी जहाँ अब हुगली नदी है। यह ब्रह्मपुत्र से भी मिल जाती है।

उपकार और माहात्म्य आदि—गङ्गा का माहात्म्य तो देवनदी होने के कारण यों ही बढ़ा चढ़ा हुआ है। फिर भी इसके तट पर काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि तीर्थों और बिठूर, कानपुर, बनारस कलकत्ता, पटना आदि प्रसिद्ध और बड़े २ व्यापारी शहरों के होने के कारण लौकिक विचार से भी इसका माहात्म्य अधिक बढ़ा हुआ है। अब रेलवे का प्रचार न

था तब इसीसे भारत में व्यापार होता था और अब भी नाव और वोटों से यह काम जारी है। गङ्गा का जल अधिकतर पीने के काम में भी आता है और इसकी नहरें खेती को भी काफी जल पहुँचाती है। गङ्गा में बहुत से जल-कल लगे हुए हैं। सन्ध्या के समय गङ्गा तट पर बैठने, उसका सुदृश्य देखने, उसके जलस्पर्श करने, बहती हुई हवा लगने आदि से जो आनन्द मालूम होता है वह अकथनीय है। गङ्गा का तट शान्तिमय है। बहुत से साधु महात्मा अपनी कुटी बना कर ईश्वर का ध्यान और गङ्गा-सेवन करते हैं। गङ्गा हमारे लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों का मूल है।

बराबर पहाड़ (The Barabar Mountain)

परिचय—यह पहाड़ गया से कुछ दूर उत्तर पड़ता है। बाँकीपुर से गया को जो रेलवे लाइन गई है उसीमें एक बेला स्टेशन है। वहीं से बराबर जाना पडता है। कोई २ इसे बानावर भी कहते हैं।

वर्णन—यह पर्वत देखने में रमणीय एवं मनोहर है। जिस तरह यह लोक लोचनानन्ददायक है उसी तरह अगम्य रहस्यों से परिपूर्ण एवं अपूर्व माहात्म्य आदि से भी महनीय है। यह पहाड बहुत ऊँचा होने के कारण दूर ही से देख पडता है। इसके सब से ऊँचे शिखर पर एक बडा भारी पेड़ और मन्दिर है। उस मन्दिर में सिद्धनाथ महादेव हैं। कहते हैं कि ये सिद्धेश्वरनाथ महादेव सबकी मनोकामनाओं को सिद्ध करते हैं। इससे श्रावण और भाद्रपद महीने में यहाँ मेला खूब लगता है। यद्यपि यह हिंस्रजन्तुओं—साँप, बिच्छू, बाघ, बनैला सूअर आदि—से परिपूर्ण है तथापि किसीको

उनसे कुछ भी हानि हुई, यह अबतक सुनने में नहीं आया। यहाँ तक कि कभी २ मनुष्य और बाघ से हाथ भर पर परस्पर भेंट हो गई है पर दोनों बिना छेड़ छाड़ के अपने पथ के पथिक हो गये हैं। लेखक को भी इसका अनुभव हुआ है।

दर्शनीय-स्थान—इस पर्वत पर बहुत से सुन्दर स्थान हैं जो देखने ही लायक हैं। यहाँ झरनों की कमी नहीं, गह्वरों की कमी नहीं, छोटी २ झीलों की कमी नहीं और दर्शनीय स्थानों की भी कमी नहीं है। इसका सब से बढ़ा चढ़ा झरना 'पाताल गङ्गा' नामक है। जहाँ से इसका पानी बहता है उसका पता नहीं। यह एक स्थान पर झील सा बन गया है। 'योगिया आसन' नाम का एक स्थान है जो एक कन्दरे में है। उसमें एक सङ्कीर्ण राह से पैठ कर जाना पड़ता है। यहाँ कितने कितने ऐसे गह्वर हैं जिनमें बहुत दूर तक आदमी गहरा २ जा सकता है। कुछ खोहों में से झरने का पानी भी बहा करता है। इसमें 'मानगढ़ा' नामक एक स्थान है, जो पहाड़ काट कर बनाया गया है। बाहर का पत्थर बड़ा ही खुरदुरा है, पर भीतर का ऐसा सुन्दर और चिकना पत्थर है कि शीशे का काम देता है। मानों घरों का एक दूसरे में लगाव है। हाँ पर लग मैंने भी पैठ कर देखा है। सुरंग राह के आगे बहुत अँधेरा है। अब तक मानों का ठिकाना भी पता नहीं लगा है। इससे सात घरों की कल्पना कितनों मूलक जान पड़ती है। ऐसा ही एक बना हुआ गढ़ रत्नपथ भी है जो 'बनखीगार' कहाता है। लोगों का अनुमान है कि यह निश्चयों का बनाया हुआ है। पामर से इसकी विचित्र रचना एक बार मन में ऐसा विस्मय उत्पन्न करा देती है।

था तब इसीसे भारत में व्यापार होता था और अब भी नाव और वोटों से यह काम जारी है। गङ्गा का जल अधिकतर पीने के काम में भी आता है और इसकी नहरें खेती को भी काफी जल पहुँचाती हैं। गङ्गा में बहुत से जल कल लगे हुए हैं। सन्ध्या के समय गङ्गा तट पर बैठने, उसका सुदृश्य देखने, उसके जलस्पर्श करने, बहती हुई हवा लगने आदि से जो आनन्द मालूम होता है वह अकथनीय है। गङ्गा का तट शान्तिमय है। बहुत से साधु महात्मा अपनी कुटी बना कर ईश्वर का ध्यान और गङ्गा-सेवन करते हैं। गङ्गा हमारे लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों का मूल है।

बराबर पहाड (The Barabar Mountain)

परिचय—यह पहाड गया से कुछ दूर उत्तर पडता है। बाँकीपुर से गया को जो रेलवे लाइन गई है उसीमें एक बेला स्टेशन है। वहाँ से बराबर जाना पडता है। कोई २ इसे बानाबर भी कहते हैं।

वर्णन—यह पर्वत देखने में रमणीय एवं मनोहर है। जिस तरह यह लोक लोचनानन्ददायक है उसी तरह अगम्य रहस्यों से परिपूर्ण एव अपूर्व माहात्म्य आदि से भी महनीय है। यह पहाड बहुत ऊँचा होने के कारण दूर ही से देख पडता है। इसके सब से ऊँचे शिखर पर एक बडा भारी पेड और मन्दिर है। उस मन्दिर में सिद्धनाथ महादेव हैं। कहते हैं कि ये सिद्धेश्वरनाथ महादेव सबकी मनोकामनाओं को सिद्ध करते हैं। इससे श्रावण और भाद्रपद महीने में यहाँ मेला खूब लगता है। यद्यपि यह हिंस्रजन्तुओं—साँप, बिच्छू, बाघ, बनैला सूअर आदि—से परिपूर्ण है तथापि किसीको

उनसे कुछ भी हानि हुई, यह अबतक सुनने में नहीं आया। यहाँ तक कि कभी २ मनुष्य और बाघ से हाथ भर पर परस्पर भेंट हो गई है पर दोनों बिना छेड़ छाड़ के अपने पथ के पथिक हो गये हैं। लेखक को भी इसका अनुभव हुआ है।

दर्शनीय-स्थान—इस पर्वत पर बहुत से सुन्दर स्थान हैं जो देखने ही लायक हैं। यहाँ झरनों की कमी नहीं, गह्वरों की कमी नहीं, छोटी २ झीलों की कमी नहीं और दर्शनीय स्थानों की भी कमी नहीं है। इसका सब से बड़ा चश्मा झरना 'पाताल गङ्गा' नामक है। जहाँ से इसका पानी बहता है उसका पता नहीं। यह एक स्थान पर झील सा बन गया है। 'योगिया आसन' नाम का एक स्थान है जो एक कन्दरे में है। उसमें एक सङ्कीर्ण राह से पैठ कर जाना पड़ता है। यहाँ कितने कितने ऐसे गह्वर हैं जिनमें बहुत दूर तक आदमी खड़ा २ जा सकता है। कुछ खोहों में से झरने का पानी भी बहा करता है। इसमें 'सतधरवा' नामक एक स्थान है, जो पहाड़ काट कर बनाया गया है। बाहर का पत्थर बड़ा ही खुरदरा है, पर भीतर का ऐसा सुन्दर और चिकना पत्थर है कि शीशे का काम देता है। सातों घरों का एक दूसरे में लगाव है। दो घर तक मैंने भी पैठ कर देखा है। इसके घर से आगे बहुत अँधेरा है। अब तक सातों का किसी को भी पता नहीं लगा है। इससे सात गर्तों की कल्पना किम्वदन्ती मूलक जान पड़ती है। ऐसा ही एक बना हुआ गर्भस्थान भी है जो 'कन्यादीपार' कहाता है। लोगों का अनुमान है कि यह विश्वकर्मा का बनाया हुआ है। साधारण में इसकी निरखि सबका एक बार मन में ऐसा विश्वास उत्पन्न करा देती है।

किम्वदन्तियाँ—कहते हैं कि वाणासुर की कन्या उष का इसके आस पास में ही विहार-स्थान था। इस अनुमि विहार-स्थान के स्थान पर आज भी उसके भग्नावशेष चि देख पड़ते हैं। वहाँ एक भीम की पाषाणमयी रमणीय मूर्ति भी है। वहाँ उषा नित्य सिद्धेश्वरनाथ की पूजा करती थी स्वप्नावस्था में शिवाज्ञा पा कर उसने एक पार्वती जी क मन्दिर बनवाया था और उनकी भी पूजा किया करती थी आज भी यह मन्दिर और 'उषा स्वामिनी पार्वती जी क मूर्ति बेला स्टेशन के पास हैं।

वृद्धों का कहना है कि इसमें बहुत से ऋषि मुनि रहते हैं और समय २ पर लोगों को दर्शन दिया करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ऐसा सुरम्य और शान्ति-स्थान ऋषि मुनियों से हीन होगा। एक राह सिद्धेश्वर नाथ के से नीचे गई है। कहते हैं कि यह राह नीचे जो प्राचीन सिद्धेश्वर नाथ हैं वहाँ तक गई है। पर मार्ग की विषमता के कारण वहाँ अब तक कोई जा नहीं सका है। उस पहाड़ पर रहने वाले कितने विश्वासी पुरुषों ने कहा है कि रात में गर्डी घंटे की आवाज सुन पड़ती है।

दृश्य—इस पहाड़ का दृश्य बड़ा मनोरम है। वृक्ष झाड़ियाँ तथा अनेक औषधियों से यह परिपूर्ण है। स्थान २ पर झरने, रहने योग्य गुफायें, छोटी २ बावलियाँ, घूमने फिरने तथा देखने सुनने के योग्य अनेक दर्शनीय स्थल सर्वत्र है। इस पहाड़ के एक ओर कौआडोल पहाड़ विराजमान है। एक ओर फल्गु नदी भी बह रही है। चारों ओर हरियाली की बहार, पक्षियों का मनोहर गान देख सुन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने

ने 'आश्चर्य वृत्तान्त' नामक ग्रन्थ में इस पहाड़ का बड़ा अपूर्व वर्णन किया है। यह पहाड़ सब प्रकार देखने ही य है।

प्रश्न—जंगल, मरुभूमि, जलप्रपात, ज्वालामुखी और चाँदनी रात पर एक लेख लिखो।

पाँचवाँ पाठ—स्थान, नगर, भवन आदि।

(Cities, Homes etc)

पाटलिपुत्र (Patna)

नामोत्पत्ति—पटना का बहुत प्राचीन नाम पाटलिपुत्र । ग्रीक लेखकों में इसका नाम पालिबोथ अर्थात् पा(ट)लि र है। कोई २ कहते हैं कि पाटलिपुत्र यह नाम (Bignonia Suaveolens) से परिगृहीत हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों कहीं २ कुसुमपुर और पुष्पपुर ये दो नाम भी मिलते हैं। हते हैं कि सम्भवतः ये दोनों नाम बाहरी पुष्पोद्यान और न्द कानन के रहने और क्रमशः उनके लघुत्व हो जाने के रण हो गया है जिसके चिह्न अब भी आसपास बाँ के बाग के म में वर्तमान हैं। भविष्य, ब्रह्माण्ड, वायु आदि पुराणों बृहत्कथा आदि कथा ग्रन्थों में और दशकुमारचरित, क्षांकावदान, मुद्राराक्षस आदि काव्यों में पाटलीपुत्र, कुसु पुर और पुष्पपुर के नाम से पटना का उल्लेख है। महाकवि त्योंक्लृप्त नामक पाली ग्रन्थ और हेमचन्द्ररचित अभिधा णी नामक ग्रन्थ में भी पटना का उल्लेख है।

प्राचीन पाटलिपुत्र—पटना के पास ही पहले लोग अब व जानना था। अब यह जाना पहले से १५ मील पर है।

प्राचीन संस्कृत और पाली ग्रन्थों से पता लगता है कि खृष्टाब्द के ४६० वर्ष पूर्व तत्कालीन गङ्गा और शोण के सङ्गम पर शिशुनागवंशी राजा अजातशत्रु ने मिथिला के पराक्रान्त वृज्जि जाति के आक्रमण के अवरोध के लिये एक किला बनवाया था। क्रमशः आवश्यकतानुसार जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही आश्रयस्थान की वृद्धि होते २ धन जन-पूर्ण एक ग्राम बस गया। आधी शताब्दी के बाद राजा उदय मगध की राजधानी राजगृह को छोड इस पाटलिग्राम में रहने लगा। राजा के रहने के साथ ही राजकर्मचारी और अन्यान्य धनी मानी के प्रासाद-निर्माण से यह पाटलि गॉव एक बडा शहर हो गया। एक शताब्दी के बाद पूर्णरूप से यह राजधानी हो गया और राजगृह उजाड पड गया। खृष्टीय शताब्दी के ३०० वर्ष पूर्व चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने इसी पाटलिपुत्र में शत्रुओं का संहार कर यहॉ का सिंहासन दखल किया और यहॉ ही उनके दरबार में ग्रीक दूत मेगस्थिनीज उपस्थित हुआ था।

पाटलिपुत्र का इतिहास—खृष्टाब्द से ३२५ वर्ष पहले प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त से ले कर खृष्टाब्द ५४० तक गुप्त वंश के ध्वंस पर्यन्त आठ शताब्दी से अधिक पाटलिपुत्र मगध की राजधानी रहा। इसी बीच ५०० वर्ष समग्र उत्तर भारत की भी राजधानी था। मौर्यसम्राटों के समय पटना की उन्नति चरम सीमा तक पहुंच गयी थी। खृष्टाब्द से ३०० वर्ष पहले ग्रीकदूत मेगस्थिनीज ने अपनी आँखों से देख कर लिखा है—यह राजधानी नौ मील लम्बी और डेढ मील चौडी थी। बडे २ शाल काठ के बेडे से घिरी हुई थी। इस बेडे में ५४ फाटक और ५७० मञ्च (बुरुज Bastion) रक्षकों के लिये

ने थे। बाहर ३० हाथ गहरी और ४०० हाथ चौड़ी चारों ओर खाई हमेशः सोन के जल से भरी रहती थी। (मैकेण्डल) । राजप्रासाद काठ का बना था। किन्तु पारस की राजधानी के प्रासादों की अपेक्षा अत्यन्त सुन्दर था। राजभवन के बाहर चारों ओर उद्यान, तालाब और फल फूल के पेड़ थे।

पटना के कई स्थानों में २४ फूट जमीन के नीचे शाल की लकड़ी के खूँटे मिले हैं। जान पड़ता है वह उसी बेड़े के खूँटे हैं। कहीं ७ पर फूट २ तक शाल की लकड़ी के मञ्च पाये गये हैं। भिन्न २ विद्वानों का अनुमान है कि वे प्राचीर, जल प्रणाली या डक होंगे।

मौर्य युग में नाना देश के वणिक् व्यवसायी और भ्रमण कारी इतने अधिक आते थे कि राजा उनके लिये पाँच निरी-क्षक नियुक्त करते थे (स्माक ८७)। इसी शहर में शुभवती दिग्विजयी राजा पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया था। खृष्टीय तीन शताब्दी तक शकों के प्रभाव से पटना छोटा हो गया था। फिर चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में लिच्छविराज के जामाता, मगध के जमींदार चन्द्रगुप्त ने नूतन राज्य स्थापित किया। उनके पुत्र समुद्रगुप्त के समय पटना फिर भी उत्तर भारत की राजधानी हुआ। ४०० खृष्टाब्द में समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में चीन का यात्री फाहि यान पटने की सर्वोत्कृष्ट समृद्धि और गौरव देख गया था। राजप्रासाद के खंभों को अशोक की आज्ञा से दानवों ने बनाया था। इस प्रकार की दीवार, दरवाजा और पत्थर और पर चित्र बनाना मनुष्यों का काम नहीं है। (Beni 111.) ज्योतिषी वराहमिहिर ने (जन्म ४७९ खृष्टाब्द) यहीं अपने

सिद्धान्त ग्रन्थ बनाये थे। उसके बाद गुप्त-साम्राज्य खण्ड २ हो गया। साथ ही पाटलिपुत्र का गौरव और सम्पत्ति अस्त हो गई। पाँचवी और छठी शताब्दी में हूणों ने पटने को खूब लूटा खसोटा। सातवीं शताब्दी में हर्षवर्द्धन ने कान्यकुब्ज को उत्तर भारत की राजधानी बनाया। उसके समादृत चीन यात्री यानचाङ्ग ने ६४० ई० में आकर देखा कि पटना श्मशान में परिणत हो गया है। कहीं पर जन-मानव का नाम नहीं है। चारों ओर उजाड और जंगल हो गया है। सैकड़ों मन्दिर और सङ्घाराम स्तूपाकार में परिणत हो गये हैं। केवल गङ्गा के किनारे २ लगभग १००० घर का एक शहर बनाकर मत्र लोग बसे हुए हैं। (Beal, II 82—86)

नवंम शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक पालराजगण पटने में जब कभी आ आकर रहते थे। पर उनकी यह राजधानी नहीं थी। पटने का पूर्व ऐतिहासिक गौरव फिरा नहीं। तथापि गङ्गा, गण्डक और सोन के सङ्गम पर रहने के कारण पटना वाणिज्य के लिये सुविधाजनक स्थान था। अतीत इतिहास की गोरवस्मृति के लिये काशी से पूर्व पटना सर्व-प्रसिद्ध शहर था। (अलबरुनी १०७० खृष्टाब्द)

पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर पटने की ओर फिर राजा की दृष्टि गयी। १५४१ में शेरशाह ने दिल्ली का सिंहासन दखल करने के बाद पाँच लाख रुपये खर्च कर यहाँ ईंटा का एक पक्का किला बनवाया। मुगल युग में विहार-प्रदेश की राजधानी विहार नामक नगर से उठकर पटने में चली आई। किन्तु अब्बुलफजल (१५८३ खृष्टाब्द) ने लिखा है कि यहाँ कोई बड़ा सुन्दर शहर था ही नहीं। दो छोटे २ दुर्ग की बात उन्होंने लिखी है, जिनमें एक मिट्टी का और दूसरा ईंट का था। उस

समय के कितने चित्रकारी से भरे हुए काठ के खम्भे, खिलान और अंगले पुराने मकानों में अब भी मौजूद हैं। पटने में मुसल्मानी समय के स्मृति-चिह्नस्वरूप अब तक भी कितनी बड़ी २ पुरानी मसजिदें और दो प्रसिद्ध कब्र हैं। अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में औरंगजेब का पोता अजीम उश्शान इस प्रदेश का सूबेदार था और उसीके अनुरोध से बादशाह शहर का नाम अजीमाबाद रखने को सम्मत हुए थे। नवाबी अमल में शहर दीवाल से घिरा हुआ था। इस दीवार का पूरब दरवाजा, पच्छिम दरवाजा अब तक प्रसिद्ध है। रामनारायण का वह किला भी अब नहीं है। इस दुर्ग के बाहर मुगल बादशाह आला अली जौहर ने (फिर द्वितीय शाह आलम) मुर्शिदाबाद के नवाब के हाथ से बिहार प्रदेश छीन लेने के लिये १७५६ ई० में अन्तिम प्रयत्न किया था। गङ्गा की ओर से शत्रुओं के आक्रमण रोकने के लिये जो ऊँची दीवार और बुर्ज थीं वह बहुत कुछ नदी-गर्भ में चली गयी हैं और प्रति वर्ष कुछ न कुछ जाती ही रहती हैं। किन्तु १७८५ ई० के डानियल का जो चित्र है उसमें अब भी बहुत कुछ देखा जा सकता है। १९११ में बिहार प्रदेश स्वतन्त्र हुआ और बाँकीपुर उसकी राजधानी हुआ।

आधुनिक पटना।—बिहार की राजधानी पटना, बाँकीपुर और दानापुर इन तीन शहरों को लेकर बनी हुई है। पूरब में पटना, बीच में बाँकीपुर और पच्छिम में दानापुर, पटना शहर वाणिज्य का एक प्रधान केन्द्र है और बाँकीपुर शासन केन्द्र है। ये दोनों एक साथ मिले हुए हैं। दानापुर में सेना निवास है। बाँकीपुर और दानापुर के बीच २ में कहीं २ बहुत जमीन है। तीनों जगहों में ई० आई० आर० रेलवे के प्रधान

स्टेशन है । पटना पुराना शहर है । हिन्दू और मुसल्मानों के समय यहीं राजधानी थी । यहाँ शहर भर की म्युन्सीपेल्टी, एक फौजदारी सब डिविजन, दो हाईस्कूल और एक अस्पताल है । वाणिज्य-सम्पत्ति में पटना अभी भी एक प्रधान शहर है । बाँकीपुर में समस्त सरकारी अदालत, आफिस, स्कूल, कालेज, प्रधान तारघर और डाकघर, और बैंक वगैरह है । बाँकीपुर से ठीक पच्छिम, स्टेशन के पास और रेलवे लाइन से उत्तर एक और नया शहर बस रहा है । जहाँ विहार-प्रदेश के लाटभवन, हाई कोर्ट, सेक्रेटरियेट आफिसर और कर्मचारियों के घर वगैरह बने हुए हैं ।

पाटलिपुत्र के दर्शनीय स्थल—बाँकीपुर स्टेशन से तीन मील पूरब कुम्हड़ार नामक एक स्थान है जहाँ प्राचीन पाटलिपुत्र का अवशेषांश वर्तमान है । वहाँ की खुदाई से अनेक प्रकार के प्राचीन बहुत से दर्शनीय पदार्थ निकले हैं । इन सब वस्तुओं से प्राचीन इतिहास का बहुत कुछ पता मिलता है । खुदाबख्श खाँ की लाइब्रेरी पटने में एक अपूर्व चीज है । भारतवर्ष में इस प्रकार का कोई मुसल्मानी ग्रन्थों का संग्रहालय नहीं है । इसमें फारसी और अरबी के ऐसे २ ग्रन्थ हैं जो कहीं नहीं मिल सकते हैं । इसमें अनेक रंग ढंग के प्राचीन चित्र, मुगल बादशाहों के हस्ताक्षरों के नमूने, मध्य एशिया, अरब और स्पेन के लिखे मूल्यवान् ग्रन्थ और अनेक हस्तांकित चित्र रक्खे हैं । अंग्रेजी के भी बड़े २ अलभ्य ग्रन्थ हैं । मुसल्मानी बादशाहत के समय के इतने ऐतिहासिक साधन इसमें संगृहीत हैं जिनका पारावार नहीं । इसके सब अंग्रेजी ग्रन्थों का मूल्य एक लाख, फारसी अरबी लिपियों का मूल्य चार पाँच लाख से कम नहीं । और इस लाइब्रेरी का सुन्दर भवन,

पचास हजार की लागत से बना हुआ है। स्थानीय बैरिष्टर मानुक साहब ने हजारों रुपये खर्च कर १५-१६ वर्ष से भारतीय प्राचीन चित्रों का संग्रह कर एक चित्रशाला बना रक्खी है। इसमें कृष्ण-चरित सम्बन्धी कितने तो ऐसे चित्र हैं जिनके गम्भीर भाव, सौन्दर्य और अद्भुत यूरोपीय चित्रों की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं है। अकबर और शाहजहाँ के समय के भी अनेक चित्र हैं। बाँकीपुर मैदान के उत्तर पश्चिम गोल घर है। १७८६ खृष्टाब्द में गारस्टिन नामक एक इञ्जिनियर ने वारेन हेस्टिंग के आज्ञानुसार इसे बनवाया था। उद्देश्य यही था कि इसमें गल्ला रक्खा जायगा और अकाल के समय वह काम आवेगा। ऊपर चढ़ने के लिये बाहर से सीढ़ी है। चढ़ कर देखने से पटने का एक बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखलायी पड़ता है। ऐसे ही अन्यान्य प्राचीन, नवीन, ऐतिहासिक और अनैतिहासिक बहुत से स्थान पटने में दर्शनीय हैं।

उपसंहार—पटना जब से बिहार प्रदेश की राजधानी हुआ, तब से पटने के सम्बन्ध में भिन्न २ भाषा की भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेकानेक लेख निकले हैं और अब भी निकलते ही जा रहे हैं। यद्यपि उनके लेखकों के ऐतिहासिक विचारों में कुछ मत भेद है तथापि पटने की प्राचीनता सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इसकी समृद्धि और सम्पत्ति तथा इसके गौरव का गुण गान सभी करते हैं।

(यह लेख विशेषतः पटना कालेज के सर्वप्रधान ऐतिहासिक अध्यापक बाबू यदुनाथ सरकार एम० ए० की एक पुस्तक के आधार पर लिखा गया है। पाटलिपुत्र का इतिहास यह एक उसका अनुवाद है।)

तपोवन ।

तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और फल भार से भूमि स्पर्श करते थे। लायची और लवंग की सुगन्ध चारों ओर छा रही थी। मधुप झनकार करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किंशुक, पलिश और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्ष और लता के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर रमणीय गृह बन गये थे जिनमें सूर्य्य की किरण प्रवेश नहीं कर सकती थी। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ कर होम कर रहे थे और अग्नि की ज्वाला से वृक्षों की पत्तियाँ मलिन हो रही थीं और वायु होमगंध मय होकर धीरे धीरे बह रहा था। सब मुनिकुमार, कोई तो उच्च स्वर से वेद पढ़ रहे थे और कोई शान्ति-भाव से धर्मशास्त्र पढ़ रहे थे। मृग गण निशङ्क चारों ओर भ्रमण कर रहे थे।

तपोवन को देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके भीतर देखा कि एक पल्लव-लम्बित रक्ताशोक वृक्ष के नीचे एक पवित्र स्थान पर बेंत के आसन पर महातपी जाबालि ऋषि बैठे हैं और उनके आस पास और और मुनि लोग बैठे हैं। जाबालि ऋषि बड़े बूढ़े थे और उनके बाल तथा रोयें सब पक गये थे और ललाट में बलो पड़ गई थी, सिर नीचा हो गया था पञ्जर और मस्तक की हड्डी निकल आई थी और श्रवण सम्पुट श्वेत लोम से ढक गये थे। उनकी मूर्ति देखने से जान पड़ता था कि वे करुणारस के प्रवाह, क्षमा और सन्तोष के आधार, शान्ति रूपी लता के मूल, क्रोध भुजङ्ग के महामन्त्र, सत्पथ दर्शक और सत्स्वभाव के आश्रय हैं। उनको देख कर मेरे मन

में एक वैर भय और विस्मय दोनों उत्पन्न हुए और मैंने कहा कि इनका कैसा प्रभाव ! इनके प्रभाव से वन में हिंसा, द्वेष, और मात्सर्य आदि का नाम भी नहीं है। हिरन के बच्चे सिंह के बच्चों के सग सिंही का दूध पीते हैं । हाथी और सिंह परस्पर खेल रहे हैं। मृगगण धीर-चित्त होकर शृगाल के संग चर रहे हैं और सूखे वृक्ष कुसुमित हो रहे हैं । मानों सत्ययुग कलियुग के भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है। वृक्षों की शाखा में मुनियों की छाता, कमण्डल और माला लटक रही थी और नीचे बैठने के लिये वेदी बनी थी, मानों सब वृक्ष भी तपस्वी का वेश धारण करके तपस्या करते थे ।

बाबू गदाधर सिंह ।

पवार (A Village)

अवस्थिति — इस नाम का एक गाँव जिला शाहाबाद के प्रधान नगर आरे से ६ कोस लगभग दक्खिन में है। आरे से सहसराम तक जो लाइट रेलवे गयी है उसीमें दो स्टेशन के बाद तीसरा स्टेशन गड़हनी है। यह बड़ी बस्ती है और बाजार वगैरह भी लगता है। वहीं से पवार एक कोस के लगभग पूरब दक्खिन के कोन पर बसा हुआ है। पैदल आने का भी सुभीता है और अच्छा गाड़ी वगैरह भी आ जा सकती है। इस गाँव से चार कोस पश्चिम बाबू कुँवर सिंह की बस्ती जगदीशपुर है।

नामोत्पत्ति—लोग कहते हैं कि इसका कुछ नाम पहले प्रमार था पर उससे अपभ्रंश होकर पवार हो गया। पीछे के नगर-बाजार के साथ अर्थ-साम्य भी है। अब कुछ [illegible] [illegible] की [illegible] आदि [illegible] [illegible] [illegible] के

सूखने के लिये छोड देते हैं तब किसीके पूछने पर ग्राम्य भाषा में उसे कहते हैं कि पथार पडा है। अब भी पथार में खूब पथार पडता है।

पुरानी दशा---पहले यह गॉव बहुत ही छोटा था और इसके चारों ओर जङ्गली पेड, पौधे और झाडियॉ थीं। अब भी उसके दो चार चिन्ह हैं। उस समय इस गॉव में विशेषत क्षत्रिय और अन्यान्य जातियों के दो चार घर थे। लगभग ७० वर्ष के होता है कि उक्त गडहनी गॉव से दो चार शाकद्वीपीय ब्राह्मण यहॉ आ बसे। तब से इस गॉव का नाम होने लगा और जन संख्या भी बढ गयी। यद्यपि अब भी वह बड़ा गाँव नहीं कहा जा सकता तथापि एक सामान्य गॉव भी नहीं है।

प्राकृतिक दृश्य—यद्यपि यह गॉव बहुत छोटा है तथापि कई बातों से यह बडे २ गॉवों से भी बढ कर है। इसकी प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ी चढ़ी है। इसके चारों ओर बाग बगीचे और काफी हरियाली सदा बनी रहती है। गाँव के पूरब और पश्चिम सटे हुए लम्बे लम्बे बड़े बडे तालाब से गढे हैं जिनमें हमेशा पानी भरा रहता है। इसकी उपमा किले की खाई या बडी बडी झील से दी जा सकती है। कुछ ही दूर पर पश्चिम नहर भी खुदी है और पूरब की ओर बनास नाम की एक नदी है। इसमें साल भर निर्मल जल बहा करता है। बरसात में इसका दृश्य देखने ही लायक होता है।

वर्णन---यहॉ बाबू कुँवरसिंह की दी हुई लाखराज जमीन में करीब २० घर के शाकद्वीपीय ब्राह्मण बसते हैं। गॉव में ये ही विद्या और धन दोनों के धनी है। इनके चेले जजमान बडे बडे जिमींदार हैं। इनकी प्रतिष्ठा बडे बडे रजवाडों में है और अब तक भी वहॉं उनका वैसा ही आदर सत्कार बना हुआ

है और बिदाई भी हुआ करती है। बाबू कुँवरसिंह के घराने में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनके दिये हुए गाँव अब तक भी इनके अधिकार में हैं। यहाँ एक से एक ऐसे दिग्गज पण्डित हो गये हैं जो पूने तक से सभा जीत कर बिदाई ले आये थे। पं० उमादत्त मिश्र, इस ग्रंथकर्ता के प्रपितामह पं० कुलधर मिश्र, पं० देवीदत्त मिश्र, पं० हनुमानदत्त मिश्र और पं० युधिष्ठिर मिश्र—ये पाँचों भाई पाँचों पाण्डवों के समान विद्या, बुद्धि और बल में बड़े विख्यात थे। इन्हीं लोगों के पुण्य प्रताप से अब भी पाँचों के वंशधर विद्या-बुद्धि-सम्पन्न होते आते हैं और अपने पूर्वजों की अक्षय कीर्ति निबाहते चले आते हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मणों में और अन्यान्य पण्डित मण्डली में पण्डितों की चर्चा छिड़ने पर यहाँ के प्राचीन और नवीन पण्डितों का लोग आदर से नाम लेते हैं। अब भी ये विद्या-व्यसनी हैं। पर दुःख की बात है कि इनमें परस्पर वैमनस्य की वृद्धि होती जाती है। यदि इनमें ऐक्य स्थापन हो जाय और सभी के दुःख सुख में सभी सुखी दुखी समान भाव से हों तो हम नवीनों को भी पूर्वजों का वह पारस्परिक व्यवहार, जिसे अब तक बूढ़ों के मुख से सुनते आते हैं, प्रत्यक्ष दीख पड़ने लग जाय। इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त ५० घर के लगभग प्रतिष्ठित विसेन क्षत्रिय और कुछ अहीर, सुनार, कलवार, कुम्हार, काँदू, तेली, जुलाहे आदि भी रहते हैं।

उन्नति—इतनी छोटी बस्ती होने पर भी यहाँ शिक्षा-प्रचार के साधारण साधन नहीं हैं। एक संस्कृत-पाठशाला, एक लोअर प्राइमरी स्कूल और एक कन्या पाठशाला है। इनमें कोई सौ से भी अधिक विद्यार्थी हैं। यहीं से एक पाठशाला उठ कर नरहनी में चली गई है जिसमें इसी गाँव के दो अध्या-

पक रहते हैं और बोर्ड उन्हें २५) रुपया देता है। यहाँ के अन्यान्य पण्डित सरकारी और गैरसरकारी स्कूलों, पाठशालाओं में पढ़ाते है। ये भी सभ्यता की वृद्धि कर रहे हैं। यहाँ के वैद्य दिहात भर के लोगों को मुफ्त दवा देते हैं।

उपसंहार—यह गाँव इन बातों से अपनी अवस्था और योग्यतानुसार नमूने का गाँव कहा जा सकता है।

प्रश्न—लण्डन, दिल्ली, काशी, वासगृह और स्कूल के ऊपर एक एक लेख लिखो।

छठा पाठ—काल (Seasons, Time etc)

भारत की ऋतुयें (The Seasons in India)

परिचय—पीछे के एक लेख में ऋतुपरिवर्तन का कुछ जिक्र हो गया है। सूर्य के आस पास कई कारणों से पृथ्वी इस प्रकार घूमती है कि प्रायः वर्ष भर में दिन रात का समय समान नहीं होता। इसीसे ऋतुओं का भी क्रमश परिवर्तन हुआ करता है। यह ज्ञात होगा कि पृथिवी का अपनी धुरी पर घूमने से दिन रात और सूर्य की परिक्रमा करने से ऋतुयें हुआ करती हैं। कक्षा के स्थान-परिवर्तन और सूर्य की ओर ध्रुव के झुकाव से भिन्न २ ऋतुयें बदला करती हैं।

ऋतु-परिवर्तन—ऋतुओं के सम्बन्ध में भारत का सा सौभाग्य-शाली कोई देश नहीं है। क्योंकि ऋतुयें यहाँ के अधिवासियों को समय समय पर अपना २ खेल खूब दिखलाया करती हैं और सभी का उपभोग सबों को होता रहता है। यदि किसीको किसी ऋतु से कुछ दुःख भी हो तो वह चिरस्थायी नहीं होता। इंग्लैंड में तो प्रधानतः चार ही ऋतुयें होती हैं पर भारत में ६ ऋतुयें होती हैं। वर्ष में बारह मास

होते हैं और दो दो महीने की एक ऋतु। उनके क्रमशः ये नाम हैं। ग्रीष्म (Summer) वर्षा (Rains) शरद् (Early Autumn) हेमन्त (Later Autumn) शीत (Winter) और बसन्त (Spring)।

ग्रीष्म—वैशाख और ज्येष्ठ। इन दोनों महीनों में कड़ाके की खिलखिलाती धूप होती है। सूर्य की प्रखर और तीक्ष्ण किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं। दो पहर के समय का ताप असह्य हो उठता है। पछेया हवा धूल उड़ाती हुई खूब ज़ोर से बहती है और अन्धड़ भी खूब उठता है। लू लपट से देह झुलसने लगती है। रास्ते में चलने से आँख में धूर भर जाता है। प्यास से गला सूख जाता है। पेड़ पौधों के पत्ते मुरझा जाते हैं। गड़हे, तालाब, पोखरे प्राय सूख जाते हैं। पशुओं को बड़ी तकलीफ होती है। दिन रात में गर्मी के कारण कितने काम रुक जाते हैं। दिन रात पङ्खा चलने पर भी नींद नहीं आती। गर्मी विकल किये रहती है। लोग दिन में शीतल छाया ढूँढ़ने चलते हैं। बर्फ़ की बिक्री बढ़ जाती है। बँगले में खस की टट्टियों पर पानी छिड़ा जाने लगता है। बड़े आदमी मसूरी, दार्जिलिंग आदि शीतप्रधान देशों में जा छिपते हैं। हैजा और महामारी का भी यही समय है। गर्मी के दिन में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं।

वर्षा—आषाढ़ और श्रावण। इस ऋतु में आकाश प्रायः सदा मेघाच्छन्न रहता है। काले २ बादल आकाश में दौड़ते हुए दिखलाई पड़ते हैं। आकाश की छटा दर्शनीय हो जाती है। कभी बादल गरजते, कभी बिजली चमकती और कभी कभी कड़कड़ाहट के साथ वज्रपात होता है। कभी २ लगातार पानी पड़ता रह जाता है। कभी २ हफ्तों तक पानी पड़

जाता और फिर आकाश साफ हो जाता है। रात में इस चाल की घोर अँधेरी होती कि हाथ को हाथ नहीं सूझता गड्ढे, तालाब आदि जो गर्मी में सूखे हुए थे, भर जाते हैं रास्ता, घाट, गली और सड़क सब कीचडमय हो जाते हैं दादुरों की टरटराहट खूब रहती है। पेड पौधे हरे भरे हो जाते हैं। हरी २ घासों से भूमि पट सी जाती है। धान की खेती शुरू होती है। वर्षा में प्रकृति की शोभा अनुपम हो जाती है। (प्रथम भाग में वर्षाकाल देखो

शरत्—भादो कुआँर। इस ऋतु में वर्षा का अन्त होता है, पर कुछ दिनों तक लगातार वर्षा होती है। बाद जब कभी वर्षा हो जाया करती है। आकाश में सादे २ मेघ दिखलाई पडते हैं। वर्षाकालीन कोई उपद्रव नहीं रहता। शान्ति और समृद्धि का यह बडा अच्छा समय है। चारों ओर प्रशस्तता छा जाती है। प्राकृतिक दृश्य बडा मनोहर हो जाता है शस्यों में फूल फल लग जाते हैं। ये दोनों मास व्रत और पर्व के लिये प्रसिद्ध हैं। कास, कुसुम, कमल खिलते हैं। चन्द्रमा की चाँदनी बडी सुख-दायिनी होती है।

हेमन्त—कार्तिक अगहन। शस्य सब पक कर तैयार हो जाते हैं। घर की गई सम्पत्ति समृद्धि शालिनी होकर फिर घर में आ जाती है। इस ऋतु में शिशिर का प्रारम्भ होता है। आकाश साफ रहता है। खेती की खेती इसी ऋतु में प्रारम्भ हो जाती है। वायु भी प्रशस्त रहती है। रात्रि में शीत कुछ मालूम होता पर वह बडा ही आनन्द जनक प्रतीत होता है। रात में कुछ कुहरा भी पडता है।

शिशिर वा शीत—पूस माघ। यह शीतप्रधान ऋतु है। इसमें शीत पूर्णरूप से पडता है। यह धनियों के लिये सुखप्रद

और दरिद्रों के लिये दुखद है। बेचारे रात को किसी प्रकार ठिठुरे हुए बिताते हैं। आजकल घाम बहुत प्रिय होता है। आग छोड़ने को जी नहीं करता। तूल, तैल, ताम्बूल और तम भोजन रुचिकर है। दिन छोटा और रात बड़ी होती है। इस ऋतु में मनुष्य भोजन विशेषतः करता है। पर्वतीय स्थानों में बहुत अधिक जाड़ा पड़ता है। बर्फ की अधिकता से जाड़ा का परिमाण बहुत बढ़ जाता है। पेड़ पौधों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं। साँझ से सबेरे तक बहुत कुहरा पड़ता है। कभी २ पाला भी पड़ जाता है। आदमी काम विशेष करता है। ऊनी कपड़े, घी, दूध, आदि गर्म पदार्थ लाभ-जनक होते हैं। माघ शुक्ल पञ्चमी ही से वसन्त का प्रारम्भ हो जाता है।

वसन्त—फागुन चैत। यह सब ऋतुओं से बढ़ा चढ़ा है, इससे इसे ऋतुराज कहते हैं। पेड़ पौधे जितने हैं सब में नयी २ रंगदार कोमल पत्तियाँ लग जाती हैं। नाना तरह के फूल फूलने लगते हैं। मलय पवन बहने लगता है। आमों में मंजरियाँ लग जाती हैं। कोयल कुहू २ की रट लगाती है। सभी का चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। रुईदार जाड़े के कपड़े शरीर से उतर जाने और साँई की बहार हो जाती है। लोगों के ललाट पर गुलाल की बहार दिखलाई पड़ती है। मन में प्रफुल्लता और शरीर में एक प्रकार की स्फूर्ति आ जाती है। हृदय में नव उत्साह के हिलोरे उठने लगते हैं। कविमण्डली में इस ऋतु का जैसा आदर है वैसा किसीका नहीं।

प्रश्न—ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, [illegible]

सप्तम पाठ—पर्व (Festivals).

श्रीपञ्चमी।

इस बात को तो सब लोग जानते होंगे कि हिन्दुओं की प्रत्येक बात में धर्म-भाव प्रतिष्ठित है, यहाँ तक कि उन आमोद-प्रमोद वा हँसी-दिल्लगी भी भगवत्-सम्बन्ध से खाली नहीं है। कोई सप्ताह भर में एक बार निराकार की बहार देख कर अपने सिर से एक बला टाल देता है और कोई दिन भर में पाँच बार पञ्चाङ्ग पाठ कर अभिमान करने लगता है कि हमारे बराबर उपासक जन एक भी नहीं। किन्तु यदि निरपेक्ष भाव से दुराग्रह छोड़ हिन्दुओं के सनातन धर्म की आलोचना की जाय तो यह सहज ही में निश्चय हो कि इस जाति की तुलना दूसरी जाति धर्म-भाव में नहीं कर सकती। हमारे दूरदर्शी प्राचीन महर्षि हमारे लिये अमृत ही नहीं छोड़ गये वरञ्च विष में भी "अमृत" मिला कर हमें निर्भय कर गये हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम शास्त्र रहस्य या धर्म-तत्व को न जान कर अमृत को भी विष समझ त्याग रहे हैं।

माघ सुदी पञ्चमी का नाम "वसन्त पञ्चमी" है और इसका दूसरा नाम श्रीपञ्चमी" भी है। वसन्त पञ्चमी नाम होने का यह कारण है कि इसी दिन से "वसन्तोत्सव" का प्रारम्भ होता है। यों तो वसन्त ऋतु में चैत्र वैशाख इन दो महीनों की गणना है किन्तु हमारे यहाँ के सहृदय पुरुष इसी दिन से वसन्त को अलापने लग जाते हैं। इसी दिन से कुछ और ही प्रकार की पवन चलने लगती है तथा और ही प्रकार के मन हो जाते हैं। इसी दिन "भगवान् मुरली मनोहर" पर

...ाव चढ़ा कर पहले पहल बसन्त गाया जाता है। इसी दिन ...ड़फ बजने लगता है। "ऋतुराज" की स्वागत की धूम धाम ...ी दिन से आरम्भ हो जाती है। यहाँ यह कहना अनावश्यक ...कि उस उत्सव में भगवद्भजन ही की प्रधानता है।

...दूसरा नाम इसका 'श्री पञ्चमी' है। इस नामकरण का ...रण हमारे शास्त्र में * यह लिखा है कि इस पवित्र दिन से ...ञ्चमी का व्रत प्रारम्भ होता है। नारदमुनि को भगवती ...र्मी देवी ने उपदेश किया है कि "जो सौभाग्यवती स्त्री इसी ...न से व्रत प्रारम्भ कर ५ वर्ष तक प्रति मास पञ्चमी का ...। करेगी वह मेरे समान सुखी और पतिव्रता होगी।"

इसी दिन जगदम्बा वीणापाणी सरस्वती जी का 'सार- ...तोत्सव' करना लिखा है। दिन के प्रथम भाग अर्थात् ...र्वाह्न काल में पुष्प धूपादि से सरस्वती के षोडशोपचार ...जन और "दवात कलम" के अर्चन का विधान है। यही वह ...न है जिसकी प्रतीक्षा भारत के मसिजन वर्ष दिन से किया

* [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible])
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible])

करते हैं। इस दिन जिस शिष्य को उपदेश दिया जाता व कृतार्थ होता है। गुरु कृपा से जिसको इस दिन 'सरस्व कवच' मिल जाता वह असाधारण बुद्धिसम्पन्न होता है किन्तु आज वह समय नहीं है। भारतवर्ष के मूर्ख—प्रा नास्तिक पुरुष—अब इस दिन का महत्त्व भूलते जाते हैं।

जब कोई विचारवान् पुरुष कुछ काल के पश्चात् अप जन्मभूमि को देख कर प्रसन्न होता है और उसके दर्शनमात्र एक एक करके वे सब बातें उसे स्मरण आने लगती हैं वहाँ हो चुकी हैं वह माता की असाधारण कृपा, वह लड़ पन का अमायिक चरित, वह समवयस्क मित्रों की म और सरस बातें, वह पाठशाला का लिखना पढ़ना, म पाठियों से लड़ना झगड़ना और गुरुजनों की प्रेम परि ताड़ना जब याद आती है, हृदय की जैसी दशा होती है हृदय ही जानता है। यदि दुर्भाग्यवश स्नेही मित्र और न जनों से वियोग हो गया हो तो वह देश या स्थान और काटने लगता है। उस समय सुख होता है कि दुःख यह भुक्तभोगी ही जानें किन्तु इस बात को हम भी कुछ जानत केवल दुःख ही दुःख नहीं होता कुछ सुख भी होता है क्यों देखा गया है कि अपने मृत पुरुषों के स्मशान या समाधि स्थ देखने में अश्रुपात होता है, कुछ दुःख भी होता है किन्तु सु शान्ति न होती तो दर्शन की प्रवृत्ति ही क्यों होती?

जैसे देश या स्थान का प्रभाव मनुष्य के चित्त पर अच्छ या बुरा अवश्य होता है ठीक उसी प्रकार काल का भी प्रभा मानव मण्डली में व्यर्थ नहीं होता। चाहे काल का महत्व ह जिस बुद्धिदोष के कारण ज्ञान न हो परन्तु इसमें सन्देह ना है कि बड़े तार्किक और दार्शनिक पण्डित इस विषय को मण्ड

गये हैं कि साधन सामग्री में काल वा समय भी एक मुख्य वस्तु है। चाहे जैसा खेत अच्छा हो जल का भी अभाव न हो, और किसान भी कृषिकार्य्य में कुशल हो, तथापि बिना मौसिम के खेती कदापि न लगेगी। इस कारण कालपुरुष के साथ राम की तुलना शास्त्रकारों ने की है। यहाँ इस विषय का विचार नहीं करना है कि काल क्या वस्तु है और कार्य्य मात्र के प्रति उसकी कारणता क्यों स्वीकार की गई है? यहाँ केवल इतना ही कहना है कि हमारे शास्त्रकारों ने प्रत्येक कार्य्य का विधान देश, काल और पात्र के अनुसार किया है सो युक्ति युक्त होने से सर्वथा उपादेय है। दिन में क्यों जागना और रात में क्यों सोना इत्यादि प्रश्न उठ कर स्वभावसिद्ध और समयानुकूल कार्य्यों को यदि कोई दुराग्रही कुछ हेरफेर करना चाहे तो कर भी सकता है, परन्तु इसमें कष्ट और हानि के अतिरिक्त लाभ की सम्भावना नहीं है। होली, दिवाली आदि धार्म्मिकोत्सव वा त्योहार पर जो कुछ क्रियाकलाप हमारे यहाँ होता है एवं शास्त्र ने जिसका विधान भी किया है उसका ठीक वही काल है। उस काल में कालोचित कार्य करने पर मनुष्य उतना ही लाभवान होता है जितना मौसम पर खेती करने वाला किसान।

श्रीपञ्चमी वा वसन्तपञ्चमी यह भी हमारा एक बड़ा त्योहार है। केवल इसी कारण से नहीं कि इस दिन देव मन्दिरों में वसन्त का खूब ठाठ जमता है, प्रत्युत् इसलिये यह दिन अधिक माननीय माना गया है कि इस दिन उस महाशक्ति का महोत्सव होता है जिसके बिना बड़े बड़े धुर सज्जनों की बुद्धि भागी ऐसा काम की बात में एक ही निमेष पर बुद्धिमान पुरुष से पामर हो गये। जिसके बिना राजाधिराज त्रिभुवन

बन गये और तेजस्वी निस्तेज हो गये, उसी ब्रह्मस्वरू
सनातनी शक्ति महामाया सरस्वती देवी के आराधन का य
पवित्र दिन है।

गौतम, कणाद, कपिल और व्यासादि को आनन्द का यह
दिन है। कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों का यह
उपास्य समय है। विक्रम भोज के समय में इस दिन की धूम
धाम का ठिकाना न था। क्योंकि सरस्वती की सुसन्तान क
यह महापर्व है। सच्चे सारस्वतों का यह "सारस्वतोत्सव
सर्वस्व है। भारत में अब कितने महापुरुष इस दिन की महिम
समझने वाले हैं? कितने पुरुष हैं जो यह समझते हों कि ते
प्रताप का कारण शुष्क वीरता नहीं है, सरस्वती प्रदत्त बुद्धि
मत्ता है, पुराणों में लक्ष्मी का वाहन उलूक और सरस्वती क
हंस लिखा है। क्या इससे हमको यह शिक्षा नहीं मिलती कि
लक्ष्मी के कृपापात्र प्राय घोंघावसन्त होते हैं जिनको दिन
मणि के प्रकाश में सूझता तक नहीं और सरस्वती के दयापा
वे महापुरुष हैं जिनमें 'दूध का दूध और पानी का पानी, कर
की असाधारण सामर्थ्य विद्यमान है। जिनको भूत, भविष्
और वर्तमान के महत्व समझने की महाशक्ति परमात्मा ने दी
है और जो सरस्वती की पूर्ण कृपा से 'महाशक्तिमान' पद के
अधिकारी हैं।

सरस्वती की जिन पर कृपा है वे ही विधाता के स्नेह
भाजन होते हैं, मटा सरस्वती की अपर मूर्ति महालक्ष्मी क
उन्हीं के यहाँ आसन जमता है। जरा विचार कर तो देखिये,
प्रबल पराक्रान्त महावीर महाराष्ट्र पानीपत के पिछले युद्ध में
नादिरशाह से क्यों परास्त हुए? पलासी के प्रसिद्ध युद्ध में
सिराजुद्दौला पर जय-श्री क्यों अप्रसन्न हुई और मुष्टिमात्र

ओला से लार्ड क्लाइव ने क्यों विजय पाई । क्या कभी विचार कर देखा है ? देखने पर विदित होगा की सरस्वती के कृपा-पात्र थे वे ही समर में बलवान् और युद्ध विजयी हुए ।

पाठक ! श्रीपञ्चमी के दिन भगवती वीणापाणी के सामने बैठ कर उन महापुरुषों का एक बार ध्यान करना, जिनका पार्थिव शरीर सहस्रों वर्ष से संसार में नहीं, किन्तु उनका यशः-रूपी दिव्य विग्रह ज्यों का त्यों बना है और बोध होता है 'आचन्द्रार्क दिवाकर' बना रहेगा । आज दिन लोगों को उन महाप्रतापी महावीर राजाधिराजों का नाम तक याद नहीं रहा, जिनके नाम बड़े बड़े ऊँचे जय-स्तम्भों पर लौह लेखनी से पाषाण में खोदे गये थे । वे ऊँचे ऊँचे स्तूप वा मीनार अपने यश के साथ भू-गर्भ में समा गये जो किसी समय नभांकार होआसमान थे किन्तु उन सरस्वती के पुत्रों का नाम मिटाने वाला कौन है जो औरों का नाम भी अमर कर गये हैं ।

पाठकवृन्द ! जिस प्रकार दशहरे का त्योहार शस्त्र-पूजन के निमित्त हमारे पूर्वजों ने स्थापन किया है जिससे कि भारत के वीर पुरुषों के अतीत गौरव तथा युद्ध-क्रीड़ा का स्मरण होता है उसी प्रकार 'श्रीपञ्चमी' भी पूर्वगौरव का स्मारक है । भेद इतना ही है कि इस दिन के उपास्य लेखनी और मसीपात्र हैं, तथा व्यासादि महर्षियों का विद्यागौरव स्मरणीय है । पिछली विद्या के बदौलत विद्या के विज्ञान चाहने का यही दिन है । इसे केवल कलम की जड़ पूजा समझ कर परित्याग न करना, यह अलौकिक शक्ति की पूजा है जो कुपात्रों को भी पाने पर विलक्षण चतुर करती है ।

पाठक ! श्रीपञ्चमी को तो सब कहें किन्तु इस दिन भारत में

माता सरस्वती की पूजा कौन करेगा, यही चिन्ता है? क्या हम लोग इस योग्य रह गये हैं जो भगवती के सामने इस दिन पवित्र लेखनी का स्पर्श करें? जो लोग जान बूझ कर दुराग्रह और द्वेष के कारण धर्म-प्रचारक साधु सच्चरित्र महानुभावों पर अपशब्दों की वृष्टि कर निज नीच हृदय के उद्गार निकाल वाणी की अप्रतिष्ठा कर रहे हैं क्या वे लोग इस दिन लेखनी की पूजा कर सकते हैं? परदारलम्पट को जितेन्द्रिय, धूर्त प्रवञ्चक को ससारत्यागी निर्लोभ सन्यासी धर्म्म और देश के सहारकर्त्ता, उदर सर्वस्व को देशहितैषी, धर्मात्मा और गण्डमूर्ख को सुपण्डित, सुलेखक, सुवक्ता लिखना जिनके बाँयें हाथ की करतूत है, जो सामान्य लाभ के कारण पेट भरे अपनी आत्मा के विरुद्ध लिखने में नेक भी सकोच नहीं करते, उन्हें लेखनी या सरस्वती पूजने का क्या अधिकार है? जो रुपये लेकर पतित से पतित पुरुष को भी धर्म्मात्मा और वर्णसकर या शूद्र को क्षत्रिय बना सकते हैं धर्म्म व्यवस्था के नाम से अधर्म्म और रक्त से भरी व्यवस्था दे सकते हैं और जो एक दरिद्र, निरवलम्ब पर, धर्मात्मा पुरुष के गिडगिडाने और हाहा खाने पर भी बिना टका लिये चार पाँच पक्ति लिखना मूर्खता समझते हैं, उन अर्थपिशाच पापियों का इस सारस्वतोत्सव में लेखनी-पूजन का क्या अधिकार है? वे शारदा के कुपुत्र माता सरस्वती के दरबार में किस मुँह से आ सकते हैं—यह आप ही सोच लें।

इसमें सन्देह नहीं यदि हमारे कार्य्यों की छानबीन की जाय, तो हम इस योग्य कदापि नहीं ठहर [illegible] स्वती देवी को 'मा' कह कर पुकारें, तथापि 'म[illegible] । ही है, "कुपुत्रो जायेत [illegible] न [illegible]

ाइये पाठक "श्रीपञ्चमी" के वार्षिकोत्सव में सब पापों की मा माँग कर जगदम्बा से प्रार्थना करें कि—

"येऽग्, शास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत्।
न विहीनं त्वया देवि ! तथा मे सन्तु सिद्धयः॥
लक्ष्मी मेधा धरा पुष्टि गौरी तुष्टि प्रभा धृति।
एताभि पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति!

—पण्डित माधवप्रसाद मिश्र (सुदर्शन)

दुर्गापूजा (The Durgapuja)

प्रारम्भ—दुर्गापूजा या दशहरा का उत्सव हिन्दूमात्र के घर ों होता है। यह पर्व हिन्दू जाति मात्र का विशेषतः बङ्गालियों ा सर्वश्रेष्ठ पर्व है। वे इसे दुर्गोत्सव कहते हैं। पूजा की ुट्टी सब जगह होती है। अतएव, पूजा छुट्टी कहने ही से ुर्गापूजा या दशहरे की छुट्टी समझी जाती है। जो पूजा ारद्काल के आश्विन मास में होती है वह शारदी और ासन्त ऋतु के चैत्र मास में जो दुर्गापूजा होती है वह ासन्ती पूजा कहलाती है।

उत्पत्ति—त्रेतायुग में रामचन्द्र ने युद्ध में लङ्काधिपति ावण पर विजय पाने के उद्देश्य से आश्विन मास में महा ुरितनाशिनी दुर्गा भगवती की पूजा की थी। उसी समय े यह दुर्गापूजा प्रचलित है।

वर्णन—आश्विन कृष्ण पक्ष अमावस्या को महालय होता ै और शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् तिथि से दशहरा आरम्भ होता ै। उसी रोज से बहुत स्थापनपूर्वक दुर्गापाठ आदि होने गता है। फिर शुभ लग्न में देवी की स्थापना होती है। ङ्गदेश बङ्गाल में तथा अन्यान्य नगरों में भगवती की कई

प्रकार की मूर्त्तियाँ बनती हैं। अधिकतर दशभुजी भगवती ही की मूर्त्ति बनती है। उसमें भगवती का दहिना चरण अपने वाहन सिंह के ऊपर और बाँया चरण महिषासुर के काँधे पर रहता है। दशभुजी के दशों हाथों में दश प्रकार के अस्त्र शस्त्र बने रहते हैं। उसमें जो बर्छा है वह उस राक्षस की छाती में पैठा रहता है। भगवती के दक्षिण पार्श्व में सौभाग्य देवता लक्ष्मी और वाम भाग में सरस्वती विद्यमान रहती हैं। लक्ष्मी की दाहिनी ओर सिद्धिदाता गणेश और सरस्वती की बाँयी ओर सेनापति कार्तिकेय बने रहते हैं। प्रतिमा के ऊपर शिव की भी मूर्ति बनी रहती है। पूजा के समय इनकी भी पूजा होती है। पढ़ने लिखने वाले ब्राह्मण सरस्वती की भी पुस्तक-रूप में स्थापना करते हैं और सरस्वती पाठ आदि करते हैं। तीन रोज खूब धूम-धाम से पूजा होती है। दूसरे दिन की पूजा का नाम है महाऽष्टमी पूजा और अन्तिम दिन की पूजा का नाम है नवमी पूजा। स्नान, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फल मूल आदि से पूजा होती है। खसी, भेड़ा, भैंसे आदि का बलिप्रदान भी होता है। विजयादशमी को पूजा समाप्त होती है और प्रतिमाविसर्जन किया जाता है। बडी धूम-धाम और बाजे-गाजे के साथ प्रतिमा रथ पर निकाल नदी में डुबा दी जाती है। राम ने रावण पर आज ही विजय पाई थी, इसीसे इसका नाम विजयादशमी पड़ा है। आज शाम को सब लोग बड़े छोटे सब से मिलते जुलते और प्रणाम पाती करते हैं। छोटे आशीर्वाद-स्वरूप बड़ों से मिठाई और पान पाते हैं। नीलकण्ठ-दर्शन भी आज लोग करते हैं। आज के दिन कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता जो प्रफुल्ल मुख न हो।

उपसंहार—बंगाल का यह सर्वप्रिय त्योहार है। इससे
…की बाट सब बंगाली साभिलाष जोहते हैं। सब लोग
…स समय अस्त-व्यस्त मालूम पड़ते हैं। बाहर रहनेवाले सभी
…ता कपड़ा वगैरह बढ़ियाँ बढ़ियाँ चीज, मा, बहन, भाई,
…ी आदि के लिये खरीद कर घर पहुँचते हैं और सभी से
…मिल जुल कर पूजा के दिन बड़ी खुशी के साथ बिताते हैं।
…खरीद बिक्री भी खूब होती है। सब को कुछ न कुछ इसमें
…लाभ हो ही जाता है। दशहरा एक जातीय पर्व है। इसमें जो
…नन्द न मनावे उससे बढ़ कर मनहूस कोई दूसरा हो ही
नहीं सकता।

मोहर्रम (Mohurrum)

परिचय—मुसलमानों का यह सब से बड़ा पर्व है। मुस
…मानों में जो शिया होते हैं वे ही इसको मनाते हैं। सुन्नी
…मुसलमानों में यह बुरा समझा जाता है और इसे वे इस्लाम
…धर्म का बाधक समझते हैं।

समय—मुसलमानों के यहाँ चान्द्रमास माना जाता है।
इसमें इसका कोई खास महीना निश्चित नहीं है। चान्द्रमा…
…नुसार जिस समय पड़ जाय उसी समय यह होता है।

प्राचीन इतिहास—आषाढ़ सुदी सम्वत् ६२६ (मा…
…र्गो) में हजरत मुहम्मद साहिब का मदीना नगर में…
…इन्तकाल हुआ। आपको कोई लड़का न था, केवल…
…लड़की थी। यह हजरतअली को ब्याही गई। हजरतअली…
…दो लड़के हुए। बड़े इमाम हसन और छोटे इमाम हु…
मुहम्मद साहब के देहान्त के बाद क्रमशः उमर फारुख,…
…उसमानी और मुहम्मद साहब के दामाद हजरतअली ख…

हुए। हजरतअली की मृत्यु के बाद इनके लडके इमाम हसन खेलाफत के दावीदार हुए पर परस्पर के फूट वैर के कारण अमीर मुआविया आप खलीफा बन बैठा और राजधानी मदीने से उठा कर दमिश्क को ले गया। इसकी मृत्यु के बाद इसका यजीद जबर्दस्ती खलीफा हो बैठा और हसन को जहर दिलवा कर मरवा डाला। यजीद ने दीक्षा लेने के लिये हुसैन को पत्र-लिखा पर मुसल्मानों की राय से हुसैन ने इस बात को इनकार किया। इस पर यजीद बहुत क्रुद्ध हुआ। इसी समय कूफा के लोगों ने यजीद के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया और हुसैन को सुअवसर जान वहाँ बुलवाया। यह जान कर यजीद ने अपने एक आदमी को कुछ सेना के साथ कूफा भेजा। वहाँ पहले से जाकर हुसैन के चचेरे भाई लोगों को दीक्षा दे रहे थे। वे अपने लडकों समेत मारे गये। यह खबर पीछे से जाते हुए हुसैन को मिली। वे सपरिवार लौट कर 'करबला' में पहुँचे और उन्होंने फुरात की नहर पर अपना डेरा डाला। यहीं पर इब्नसाद ने २२००० सिपाहियों को लेकर इन्हें घेर लिया और नहर से पानी लेना बन्द कर दिया। हुसेन के बहुत कुछ कहने सुनने और अपने नाना पैगम्बर मुहम्मद साहेब के याद दिलाने पर भी उसने इन्हें लड़ने को बाध्य किया। लडाई बडी भयावनी और कारुणिक हुई। अन्त में भूखे प्यासे हुसेन करबला के मैदान में मारे गये। मुहर्रम इसी शोचनीय घटना का स्मारक है।

मोहर्रम का वर्णन—अमावस्या के बाद जिस रोज चन्द्रमा दिखलाई पडता है उसी रोज से मुसल्मान आशूर खाना में इकट्ठे होकर फतेहा करते हैं तथा शरबत पीते और बाँटते हैं। रात में सब इकट्ठे होते हैं और गदा वगैरह खे

या हसन और हुसेन करके छाती पीटते हैं। हुसेन के स्मारक स्वरूप नाना भाँति के ताजिये (ढाहा) बाँस और कागज का बना कर रखते हैं। दसवें रोज ताजिये को घुमाते हुए बड़ी धूम धाम के साथ एक निश्चित स्थान पर दफनाने को ले जाते हैं। ले जाने के समय मर्सिया पढ़ते हैं और हसन हुसेन कर छाती पीटते हैं। भक्त मुसलमान रात भर स्तुति करते रहते हैं। गरीबों को खाना वगैरह भी बाँटा जाता है।

उपसंहार—अरबों के यहाँ मोहर्रम का महीना पवित्र समझा जाता था और वे बड़ी खुशियाँ मनाते थे, पर इमाम हुसेन की शहादत के बाद यह महीना गम का हो गया और सभी मुसलमान १—१० तक गम मनाते हैं। शिया लोग रोते, चिल्लाते, सिर पीटते, ताजिया बनाते और आलम निकालते हैं। फिर एक जगह को करबलाह मान ताजिये को दफनाते हैं।

—मीर मुहम्मद मुनिस।

प्रश्न—जन्माष्टमी, रामनवमी, होली, दिवाली और शिवरात्रि पर प्रबन्ध लिखो।

तृतीय परिच्छेद—उद्भिद्-विषयक प्रबन्ध ।

ESSAYS ON VEGETABLES

प्रथम पाठ—वृक्ष (Trees)

वट-वृक्ष (The Banyan tree)

परिचय—वट-वृक्ष अंग्रेजी में बनयान ट्री कहा जाता है। यह भारतवर्ष में सर्वत्र तथा अन्यान्य देशों में भी पाया जाता है। इसके आकार, प्रकार और विस्तार को देख कर इसे

वृक्षराज कहना कुछ भी अनुचित नहीं है। उपजने, बढ़ने, फैलने और फूलने तथा फलने में कोई वृक्ष इसकी समता नहीं कर सकता।

उत्पत्ति आदि—इसका बीज छोटा से छोटा, लगभग दाने के बराबर होता है। उसीसे मोटी डंटी चौडे चौडे पत्तों को लिये निकलती है, फिर क्रमश बढ़ती जाती है। इसके बाद चारो ओर मोटी मोटी शाखायें निकल पडती है। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों यह विशाल होता जाता है। इसकी लम्बाई, चौडाई और उँचाई, फैलाव तथा झुकाव और घेराव का कोई ठिकाना नहीं है। इस पेड की विचित्रता यह है कि लगभग सौ वर्षों तक यह सामान्य वृक्षों का सा ज्यों का त्यों बना रहता है पर उसके बाद अपनी डालियों से बरोह पैदा करता है जो उसका एक प्रकार का सोर है। वे जमीन से रस चूस चूस कर खूब मोटे ताजे हो जाते हैं और वे मोटे मोटे गोल गोल एक बडे भारी प्रासाद के खम्भे से जान पडने लगते हैं। जिनकी फैली हुई डालियाँ और पत्तियाँ छत की भाँति लगती है। सोर जिस प्रकार पृथ्वी के रस को लेकर अपने समूचे धड़ में रस फैलाते हैं वैसे ये भी पृथ्वी का रस शाखाओं और पत्रों में पहुँचाते है। इससे वट वृक्ष की वृद्धि में विशेष सहायता मिलती है। बरोह बडे मजबूत और चिमडे होते हैं जिन्हें पकड सभी झूला झूलते हैं। क्रमश. बरोह बहुत बडे हो जाते और स्वतन्त्र वृक्ष का आकार धारण कर प्रधान काण्ड के जीर्ण, शीर्ण और शुष्क हो जाने पर भी हजारों वर्ष तक जीते रहते हैं। कलकत्ते के पास बोटानिकल गार्डन में एक बरगद का पेड है जो कई एकड जमीन घेरे हुए है। कहते है कि भारत में एक बरगद का पेड़ है जिसके

साढ़े तीन सौ बड़ी बड़ी डालियाँ हैं। यह इतनी जमीन घेरे हुए है कि उसके नीचे सात हजार आदमी रह सकते हैं। यह वट वृक्ष अब तक ज्यों का त्यों बना हुआ है और इसके होने का वह समय अनुमित हुआ है जिस समय अलक्जेण्डर ने भारत को जीता था। यह ईश्वर की महिमा है कि इतना विशाल वृक्ष एक क्षुद्र बीज से पैदा होता है। उसमें भी, इसके लिये कोई यत्न नहीं करना पड़ता। जहाँ तहाँ दीवार, कुँए, पुल, कंगूरे और मन्दिरों पर यह उपजा करता है। और, कहीं मैदान में जम कर बच गया तो हजारों वर्ष जीता रहता है।

लाभ—इसकी पत्तियाँ इतनी घनी होती हैं कि उनके नीचे प्रकाश नहीं होता। इससे किसी पौधे के न होने से नीचे सफाचट मैदान बना रहता है। अगर वर्षा में कोई बटोही इसके नीचे चला जावे तो भीग नहीं सकता। इसकी छाया बड़ी सुखप्रद है। इसकी छाया शीतकाल में उष्ण और उष्ण काल में शीतल होती है। थका माँदा बटोही इसके नीचे बड़ी शान्ति पाता है। बहुत से बानर डालियों पर डेरा जमाये रहते हैं और चिड़ियाँ घोंसले बना कर रहती और हमेशा चहचहाया करती हैं। जब इसके गूँदे २ लाल २ फल पक कर लाल हो जाते हैं तो चिड़ियों का बड़ा कोलाहल सुन पड़ता है। कुछ आदमी भी इसके फल खा जाते हैं। लोग भी दुपहरी में चरवाहे, बटोही, पथिक इसके नीचे एकत्र होकर आनन्द उठाते हैं। इसके पत्ते पत्तल के काम में भी आते हैं। लकड़ी इसकी कुछ कड़ी होती है। इससे [illegible] कामों में उपयोग होता है। इसका दूध कई दवाओं के काम में आता है। दाँतों में इसके दूध लेपने से गुण होता है। [illegible], मधु [illegible], [illegible] रोगों का

चौरा वट के नीचे रहता है। प्राय गाँव के पास एक दो बरगद के पेड अवश्य रहते हैं और उनके नीचे बरात, साधुओं की जमायत ठहरती है। वट का पेड रहने वालों के लिये बिना शामियाना का शामियाना बना रहता है।

प्रश्न—पीपल, पाकड़, ताड़, महुआ और नीम पर एक एक लेख लिखो।

द्वितीय पाठ—फल (Fruits)

आम (The Mango)

परिचय—आम से बढ़ कर कोई फल संसार में नहीं है। इसकी गणना फलों में सबसे पहले होती है। यह भारतवर्ष के सर्वसाधारण का सुपरिचित फल है। इसका वृक्ष तरुश्रेणी भुक्त उद्भिद् है।

उत्पत्ति-स्थान—उष्ण प्रकृति के जितने देश हैं उन सबों में आम फलता है। विशेषत भारतवर्ष ही आम के लिये प्रसिद्ध है। क्योंकि यहाँ के ऐसे स्वादिष्ट आम अन्यत्र नहीं होते। लङ्का आदि टापुओं में भी आम होता है।

रोपण-प्रणाली—हमारे देश में दो तरह से आम उत्पन्न किया जाता है। एक बीया बोकर, और दूसरा कलम लगा कर। पहले बीया बो देते हैं। समय पर उससे अङ्कुर उत्पन्न होता है और थोड़े ही दिनों में बढ कर बडा हो जाता है। इस तरह के आम का पेड अपने बीजानुसार ही फल देता है। जब कलम लगाना होता है तो आम के पौधे का छिलका छील कर उसके साथ जिस आम की कलम लेनी होती है उसकी डंडी के साथ वैसे ही छिलका छील देते हैं और दोनों को सटा कर खूब बाँध देते हैं। कुछ दिनों के बाद आम के पेड से डंठी काट कर पौधे को अलग कर लेते हैं। पौधे का पहला सिर काट देते हैं।

इस प्रकार कलम का भाड़ तैयार होता है। इससे जो आम फलते हैं वे कलम वाले पेड़ के आम के समान होते हैं।

आकार-प्रकार आदि—बीजू आम का आकार और विस्तार लम्बा और चौड़ा होता है। इसकी डालियाँ कुतवार पत्ते लम्बे तथा डंठीदार और छाया घनी होती है। कोई २ पेड़ तो बहुत ही बड़ा होता है। बीजू आम में गुठली बड़ी, रेशे अधिक और रस पतला होता है। कोई बिना रेशे का और खूब गूदेदार होता है। खूब पकने पर घुल जाता है और उसका रंग पीला हो जाता है। कलमी आम से बीजू देखने में छोटा, प्रतिष्ठा में कम और स्वाद में न्यून होता है, पर गुण में, कोई कोई तो स्वाद में भी और तरस्ठेपन में बहुत बढ़ा चढ़ा होता है। बीजू, सेंदुरिया, रोहिनिया, चौरिया, लेढ़िया, मिठइया, खटइया, मधुकना आदि इसके अनेक भेद हैं। बीजू आम की ही खटाई और अचार होता है।

कलमी आम का पेड़ छोटा, डालियाँ छोटी पर पत्ते लम्बे और चौड़े होते हैं। ऊपर का विस्तार घना होता है। देखने में बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। कलमी आम देशी, आम्र वा आम्रभेद से भिन्न है। मालदह, बम्बई, लँगड़ा, गोपाल भोग, फैयर, शाहपसन्द, बम्बैया, शाहजहाना आदि इनके नाम प्रसिद्ध हैं। नाम के साथ साथ इनके आकार प्रकार में भी भेद होता है। ये आम सब प्रकार कच्चे से पक्के पकते हैं। ये आम धनियों ही के लिये सुलभ हैं। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मुर्शिदाबाद और मालदह के जिले इन आमों के लिये प्रसिद्ध हैं। ये पकने पर भी कड़े और ज्यों के त्यों रस-दार रहते हैं। स्वाद में लँगड़ा और बम्बैये के मुकाबले का कोई आम नहीं होता। इसमें रेशा नहीं होता। कलकत्ता अब

से बडा होता है पर रुचिकर नहीं होता। कलमी आम का गुदा पचने में गम्भीर होता है।

आम पूस के अन्त में मँजराने लगता है। वसन्तपञ्चमी को इसका मोंजर प्रथम खाया जाता है। चैत्र सक्रान्ति से टिकोरे की चटनी लोग चखने लगते हैं। रोहिणी नक्षत्र से आम पकने लगता है। आर्द्रा में आम ब्राह्मणों को खिलाया जाता है। भादों तक पका आम मिलता है। दर्भंगे का बधुआ आम कातिक तक मिलता है। यत्न करने से पका आम साल भर मिल सकता है पर सुस्वादु नहीं लगता। कोई कोई आम बारहमसिया होता है।

लाभ—आम हरेक प्रकार से हम लोगों के काम में आता है। आम की लकडी, दतुअन और पल्लव पवित्र समझे जाते हैं। पल्लव पूजा, पाठ, हुवन, कलश, तोरण आदि के काम में आता है। मञ्जरी के रस से भौंरे मधु-सग्रह करते हैं और कोयल कलकण्ठ होती है।

कच्चे आम से चटनी, कूँचा, अचार, मुरब्बा और खटाई होती है। पके आम खाने के अतिरिक्त उसका रस गार कर अमावट बनाते हैं। पत्ते को पशु खाते हैं। लकडी से सन्दूक, निपाई, किवाड, धरन, चौखट आदि सब बनते हैं।

प्रश्न—गागुर, बदहर, अमरूद अनार और नीबू पर एक एक लेख लिखो।

तृतीय पाठ—लता (Creepers)

ताम्बूली-लता या पान (Betelnut)

परिचय—पान एक ऐसा प्रसिद्ध पदार्थ है जिसे सब कोई जानते हैं। यह सब स्थानों में पाया जाता है। यदि यह विलास का ही सामान समझा जाता तो इसकी इतनी प्रसिद्धि नहीं

होती किन्तु इसका उपयोग धार्मिक, सामाजिक और लौकिक सभी कामों में होता है। इससे इसको क्या धनी क्या गरीब, क्या पण्डित और क्या मूर्ख सभी जानते और पहचानते हैं। यह एक प्रकार का उद्भिद् है। इसकी गणना लताश्रेणी में है। इसमें फूल और फल नहीं होते। इसका पत्ता ही काम में आता है।

पान की खेती—जहाँ पान बोया जाता है वहाँ बोने के पहले चारो ओर टट्टी घेर देते हैं। जैसे बीच बीच में दीवार के स्थान पर एक एक काठ का खम्भा देकर ओले की छाजनी करते हैं उसी प्रकार बीच बीच में बाँस का अवलम्बन देकर घेरी हुई टट्टी के ऊपर छाजनी कर देते हैं। टट्टी और छाजनी ऐसी झिंझिरीदार होती है कि उससे हवा भीतर आती जाती रहती है। प्रकाश भी उसमें अच्छी तरह आता है। गरमी के दिनों में इस टट्टी में आदमी रहे तो बड़ा आनन्द मालूम होता है। ऊपर से झिलमिल घाम, चारो ओर की टट्टियों से फिर फिर हवा और जमीन की तरावट से मन मस्त हुआ रहता है। इसमें एक ओर दर्वाजा रहता है जिससे एक ही आदमी जा सकता है।

इसके लिये ढालुआ और ऊँची भूमि चाहिये। जमीन में आवश्यक खाद आदि देकर खूब जोतते हैं फिर उसमें लम्बी २ क्यारियाँ बना देते हैं। उसमें समान अन्तर पर सकरकन्द और कुम्हड़ी की लता जैसे गाड़ गाड़ कर लगायी जाती है उसी प्रकार इसकी भी डंठी लगायी जाती है। जब वह प्रति दिन बढ़ते बढ़ते कुछ बढ़ जाती है तब डंडा या बाँस की पतली फाड़ कर उसका सहारा देते हैं। उसीके अवलम्ब से लता ऊपर चढ़ती जाती है। जब जब चार हाथ ऊपर चढ़ कर

छप्पर तक पहुँच जाती है, तब फिर उस लता को नीचे की ओर कर देते हैं। फिर नीचे से क्रमशः प्रौढ पत्तों को काटते जाते हैं। पान की अधिकतर खेती तालाब या गढहे के किनारे होती है क्योंकि इसमें पानी की अधिक आवश्यकता रहती है। इसकी खेती गरमी और बरसात में होती है।

प्रकृति—पान की खेती करने वाला बरई बहुत यत्न से पानों के प्रत्येक थाले में कांधे पर घडा लिये पानी डालते चलता है और पनेरी तथा खाने के शौकीन लोग पान के पत्ते को भिगो कर रखते हैं। उसको प्रति दिन फेरते हैं और सडे हुए भाग को कतरनी से कतर देते हैं। इस प्रकार यदि पान रोज फेरा और कतरा न जाय तो सब गल जाय। बहुत दिन तक बचाकर रखने से पान पक कर पीला हो जाता है। का कुछ स्वाद अच्छा हो जाता है और मँहगा मिलता है।

यह लता बडी सुकुमार होती है। यह न ताप की अधिकता सह सकती है और न शीत की अधिकता। कडे घाम से झुलस जाती है और पाला या शीत पडने से गल जाती है। इसका आरोपण और सरक्षण बडे प्रयत्न से सम्पादित होता है।

पान के प्रकार—पान की खेती प्राय भारत में सर्वत्र होती है। देश भेद से इसका नाम भी भिन्न भिन्न होता है। जैसे बँगला और मगही। बँगला पान का पत्ता बडा होता है मगही का छोटा। तीता, मीठा, साँची और कपुरिया भी उसमें भेद हैं। बरई पनेरियों के हाथ ढोली के और पनेरी खिल्ली के हिसाब से बेंचते हैं। २०० पान की ढोली होती है और १०८ ढोली का एक लेसो होता है। को बीडा भी कहते हैं। गिलौरी, सिंघाडा भेद से कई तरह के होते हैं।

पान लगाना—पान लगाने में भी बड़ी चातुरी है। सब अच्छा पान नहीं लगा सकते। पान यदि ठीक तरह लगाया गया हो तो खाने में मीठा लगता है नहीं तो कडुआ। चूना होने से जीभ जल जाती है। बीड़े लगाने की प्रक्रिया, स्वाद आदि प्रायः सभी को ज्ञात है। पान में खाने के लिये कितने सुस्वादु ताम्बूल-विहार ऐसे नये नये मसाले निकले हैं। बनारस चाँदनी चौक के बदलराम जगेसरराम पान लगाने में बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके यहाँ कई रुपयों तक का एक बीड़ा मिलता है।

व्यवहार—पान खाना कितने लोग असभ्यता का चिह्न बताते हैं और कितने सभ्यता का। यदि बड़े आदमी के सामने खाय तो असभ्य बने और किसीके आने जाने पर पान इलायची दे तो सभ्य बने। इसने इसके व्यवहार में सभ्यता, असभ्यता का खयाल कर लेना चाहिये। सिगरेट, चुरुट, तमाकू के प्रभाव से पान की कुछ महिमा घटी है पर चलती ज्यों की त्यों है। पान खाने में कुछ भी असावधानी हो तो कपड़े खराब हो जाते हैं और खाने वाले का फूहड़पन प्रकट होता है। एक कहावत है "कुमति चन्दन सुमति पान" अर्थात् ललाट में किसी प्रकार का चन्दन लगा हो, सुन्दर मालूम होगा पर पान ज्यों त्यों खाकर ओंठ रंग लेने से अच्छा नहीं मालूम होता।

लाभ—वैद्यक में पान के स्वर्ग दुर्लभ १३ गुण लिखे हैं। पान का रस कई दवाओं का अनुपान और कई रोगों का औषध है। ताम्बूल हिन्दुओं के अनेक पूजा-पाठ में आता है। पान खाने से मुख साफ, ... सुन्दर होता है। राजा को पान खाना

र्थियों के लिये पान खाना मना है। क्योंकि यह व्यसन है और इसके खाने से जीभ कुछ मोटी हो जाती है।

प्रश्न—गुन्च, चमेली, कुम्हड़ा, करैली और सेम पर एक एक लेख लिखो।

चतुर्थ पाठ—पौधा (Plants)

चाय का पौधा (The Tea-Plant)

परिचय—चाय पहले हम लोगों के देश में व्यवहृत नहीं होती थी। यूरोप निवासी चाय का व्यवहार बड़े आदर से करते हैं। चाय उनका एक प्रकार का आवश्यक भोज्य पदार्थ हो गयी है। देखा देखी इस देश के लोग भी इसका व्यवहार करने लग गये हैं।

उपज—चाय की जन्म-भूमि चीन है। अब इसकी खेती आसाम, जापान, लङ्का, जावा और ब्रेजिल में भी होती है। यह एक प्रकार का छोटा छोटा पौधा है। इसके पत्तों ही से चाय बनती है। चाय रोपने के लिये पथरीली भूमि चाहिये। चैत बैसाख में चाय की बीया बोया जाता है। जब छोटे २ पौधे हो जाते हैं तब खेत में अलग २ उन्हें रोपते हैं। अगर छोड़ दिया जाय तो २५-३० फीट तक वह बढ़ सकता है, पर चार पाँच फीट होते ही पौधा छाँट दिया जाता है। छाँटने से पौधों में से और डंठियाँ निकल आती हैं। पहली डठी के पत्ते अच्छे और मूल्यवान् होते हैं। जब एक पत्ती के स्थान पर दूसरी पत्ती निकलती है तो पहली तोड़ ली जाती है। पौधे तीन वर्ष से लेकर छ वर्ष तक सजीव रहते हैं। बाद उखाड़ कर फेंक दिये जाते हैं।

तैयारी—चाय के पत्तों को चुन चुन कर इकट्ठा करते हैं।

इन्हें गर्म पानी में पहले उबाल देते हैं। फिर छाया या में आग पर भूनते हैं। यदि वह जल्द सूख जाती है हरी चाय होती है और विलम्ब से सूखती है तो काली होती है। भूनने के बाद अच्छी तरह घाम में सुखा लेने चाय ठीक हो जाती है।

व्यवहार—पहले किसी बर्तन में खूब गर्म पानी करके उसमें चाय की थोड़ी सी पत्ती छोड़ देते हैं। ढँकने से कुछ देर तक बन्द किये रहने पर चाय का अर्क पानी में आ जाता है और जल लाल हो जाता है। फिर उसे छान कर दूध चीनी या मिश्री मिला कर गरमा गरम पी लेते हैं। चीन के लोग बिना दूध और मीठा के चाय पीते हैं। चाय पीने के पहले कुछ मेवा खा ले तो और अच्छा है।

लाभ—चाय पीने से शरीर की जड़ता दूर होती है और सजीवता आती है। पाचनशक्ति ठीक रहती है और किसी प्रकार की हरारत नहीं मालूम होती। चाय पीकर अधिक रात तक जागने से भी कुछ अधिक आलस्य या कष्ट नहीं ज्ञात होता। परिमाण से अधिक पीने पर हानि होती है। बूढ़े, जवान सब पीकर लाभ उठा सकते हैं। जाड़े में लोग इसे अधिक व्यवहार में लाते हैं।

प्रश्न—गेहूँ, मटर, चावल, चना और चाय पर एक एक लेख लिखो।

पञ्चम पाठ—फूल (Flowers)

गुलाब (Rose)

भूमिका—कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ पर गुलाब न उगता हो। सुन्दरता और सुगन्ध में यह फूल सर्वोपरि समझा जाता है, इसलिये इसे फूलों का राजा कहते हैं।

उत्पत्तिस्थान—गुलाब की जन्मभूमि फारस है। अब यह कालक्रम से सर्वत्र फैल गया है। भारत में नन्दन कानोपम काश्मीर में अनेक प्रकार के गुलाब देख पड़ते हैं। काश्मीरी गुलाब की शोभा और सौरभ अतुलनीय है।

आकार-प्रकार—देश-भेद से इसके नाना भेद होते हैं। प्रधानतः इसके दो भेद हैं—देशी और विलायती। यूरोप में बहुत तरह के गुलाब देख पड़ते हैं और कला-कौशल से अनेक तरह के बना भी दिये जाते हैं। इसके भेद ५०० से लेकर २५०० तक होते हैं। ये भेद केवल रंग ही में नहीं होते, बल्कि रंग ढंग, आकार प्रकार, पत्ती-महँक वगैरह में भी होते हैं। चीन, सीरिया, अमेरिका और अफ्रिका आदि देशों में भिन्न २ प्रकार के पीले और भूरे रंग के गुलाब मिलते हैं। यूरोपवासी गुलाब को बहुत पसन्द करते हैं, इससे वे इसमें रंग-ढंग को भिन्न २ प्रकार के बनाने की अनेक भौतिक क्रिया करने में दिन रात अस्तव्यस्त रहते हैं। हिमालय पहाड़ के कई स्थानों में एक प्रकार का गुलाब आप ही आप उपजता है। उसकी महँक बहुत मीठी होती है। चैता गुलाब बड़ा मशहूर है।

उपज—गुलाब की डण्ठी एक २ बित्ते के बराबर बहुत से कलम काट कर एक स्थान पर लगाते हैं। कलमों में पत्तों के स्थान पर जब पँचगियाँ निकल आती हैं तब उन कमलों को उखाड़ कर अन्यत्र रोपते हैं। फिर वे पँचगियाँ छड़ीदार हो कर निकलती हैं। गुलाब की एक पत्ती में छोटी २ कई पत्तियाँ रहती हैं। पहले ये कुछ लाल फिर हरी हो जाती हैं। डढ़ियों में काँटे होते हैं। इनसे इसकी खूब रक्षा होती है। छड़ियों के अन्त में कोंढ़ियाँ लगती हैं। इनको पाँच २ हरी पत्तियाँ घेरे

है। फिर पतली २ डंडियों में फूल खिलते हैं। फूल के में केसर रहता है।

वर्णन—अपने से उपजने वाला गुलाब बहुत देशों में पाया जाता है परन्तु हिन्दुस्तान में पहाड़ों के सिवा और कहीं नहीं मिलता। भारत में जितने गुलाब पाये जाते हैं सब लगाये हुए हैं। इनमें हलका गुलाबी रंग होता है। इसकी कलियाँ बहुत सुन्दर होती हैं। फूलने पर यद्यपि देखने में थोड़ी मालूम होती हैं तथापि इनकी सुगन्ध बड़ी तेज और मीठी होती है। एक दो रोज़ के बाद इसकी पखड़ियाँ जब शिथिल हो जाती हैं तो झर पड़ती हैं। ऐसे गुलाबों से इत्र बहुत निकलता है। इसीका नाम देशी वा फसली गुलाब प्रसिद्ध है। विलायती गुलाब देखने में बड़ा और सुन्दर होता है पर निर्गन्ध। किसी का बहुत ही गाढ़ा लाल रंग होता है। ऐसे गुलाब भी बड़ी बड़ी फुलवाड़ियों में दर्शकों को दिखलाई पड़ जाते हैं।

उपयोग—भारतवासी गुलाब को साधारणतः सुगन्धि के लिये लगाते हैं। विशेषतः पूजा-पाठ में इसका वे उपयोग करते हैं। यही इसका मुख्य प्रयोजन है। वाटिका की शोभा बढ़ाना इसका गौण प्रयोजन समझा जाता है। कहीं कहीं अर्क उतारने और इत्र बनाने के लिये भी लोग इसकी खेती करते हैं। गाज़ीपुर में इसकी खेती होती है और बहुत से गुलाब-बाग देखने में आते हैं। वहाँ इत्र और गुलाब के बड़े २ कारखाने हैं। गाज़ीपुर का इत्र और गुलाब बहुत प्रसिद्ध है। इससे बनाये गुलाब जल, गुलकन्द, गुलरोगन और और दवाओं की शोभा बढ़ाने के काम में आता है।

गुण—गुलाब का अर्क जी बहलाव करता है। यह आँख में

गुलाब की पखड़ियाँ रखकर पानी भर देते हैं और उसका मुँह बन्द करके आग पर चढ़ा देते हैं। ऊपर का ढकना इस प्रकार होना चाहिये जिसमें पानी रह सके और वह फेर बदल करने से हमेश ठंढा बना रहे। आँच देने से फूलों में जो रस रहता है वह भाफ बन जाता है और ऊपर की सर्दी पाकर पानी के भाफ के साथ जल में परिणत होकर एक नली द्वारा दूसरे बर्तन मे जा गिरता है। इस प्रकार जो अर्क निकलता है वह गुलाब या गुलाबजल कहाता है। इसी प्रकार सब चीजों का अर्क उतारा जा सकता है।

इत्र—यदि इस गुलाब को रात भर छोड़ दें तो उसके ऊपर गुलाब का तेल जमा हो जाता है। इसीको इत्र कहते हैं। बहुत अर्क में से बहुत कम इत्र निकलता है। यह बहुत मँहगा बिकता है। अब शायद ही कोई इस प्रकार इत्र तैयार करता हो। आज कल बाजार में जो इत्र मिलता है वह नकली है।

लाभ—इत्र और गुलाब बहुत ही अच्छी चीज है। इत्र से मस्तिष्क ताजा होता है। दुर्गन्ध जनित विकार दूर हो जाते हैं। आदर सत्कार में इत्र का बहुत उपयोग होता है। गुलाब से सब प्रकार की चीजें सुगन्धित बनाई जाती हैं। बारात और महफिल वगैरह में छींटा जाता है। जल भी इसमें सुवासित कर पीते हैं। इत्र और गुलाब का खाने पीने, पहनने ओढ़ने में सर्वत्र उपयोग होता है।

प्रश्न—कमल, बेला, नेवार, केवड़ा और जुही पर एक एक लेख लिखो।

षष्ठ पाठ—घास (Grass)

ऊख या ईख—(Sugarcane)

परिचय—ऊख घास जाति का पौधा है। घासों में यह बड़ा मोटा और मज़बूत होता है। संस्कृत में इक्षु कहते हैं।

उपज की जगह—इसकी खेती बहुत पहले भूमध्यसागर द्वीपों पर होती थी और यह वहीं से यूरोप में जाता था। अब इसकी अधिकतर खेती चीन, ब्रेज़िल, अमेरिका, पेरु, इजिप्ट और भारत में होती है। ऊख देश भेद से भिन्न होते ही हैं पर भारत में भी मनगो, कड़कवा, मजा, आदि इसके कई भेद होते हैं।

ऊख की खेती—फागुन चैत में इसकी खेती शुरू होती है। २ ऊख की गुल्लियाँ बित्ते भर भर की काटते हैं। उनको राख और पानी फेंट कर खेत के एक कोने में गाड़ देते हैं। दो तीन रोज़ के बाद प्रत्येक गिरह की आँखें जब कुछ बढ़ जाती हैं तब इसको बोने के उपयुक्त समझते हैं। खेत खूब अच्छी तरह से जोत कर तैयार रहता है। उसमें एक आदमी हल ओलता आगे चलता है। उसके पीछे लगभग दो हाथ के अन्तर पर दूसरा आदमी वही गुल्ली गिराते जाता है और पीछे से सब आदमी उसे गाड़ते आते हैं। इस प्रकार बोने के बाद ऊख में बड़ी मेहनत होती है। जब तक लगभग दो हाथ तक ऊख बढ़ नहीं जाता तब तक कई बार पटाना और चोकसी रखना पड़ता है। खेत की रखवाली में गृहस्थों को कितनी [illegible] में [illegible] देख पड़ता है कि [illegible] के [illegible] जाती है। पानी और चौकसी के सम्बन्ध

में गृहस्थ एक ऐसी कहावत कहते हैं "तीन पानी तेरह कोड तब देखे ऊखी के पोर।" जब ऊख के लिये सुसमय होता है और वह कीड़े आदि से बच जाता है तब गृहस्थों के अनवरत परिश्रम और यत्न से ऊख बढ़ कर तैयार होता है। ज्यों २ वह बढ़ता आता है त्यों २ नीचे की पत्तियाँ सूखती जाती हैं। कार्तिक के छठ या देवठन (एकादशी) से नये ऊख को चूसना लोग आरम्भ करते हैं। अगहन से उसको पेरना शुरू करते हैं और दो तीन महीनों में पेर पार कर छुट्टी करते हैं। इस प्रकार ऊख की खेती साल भर में खतम होती है। ऊख की खेती से बहुत नफ़ा होता है। तीन चार सौ रुपये बिगहा भी सध जाता है। एक कहावत है "हाथी ऐसा व्यापार न ऊख की सी खेती" मतलब यह कि इससे बढ़ कर किसीमें अधिक लाभ नहीं।

गुड, चीनी आदि बनाना- जब ऊख का रस पाँच छ घड़ा तैयार हो जाता है तब उसको लोहे के कड़ाह में औंटते हैं। गाढ़ा हो जाने पर वह रस गुड हो जाता है। फिर यथा समय उसको उतार कर और ढाल कर गुड की चकी बना लेते हैं। यही सब प्रकार के मधुर पदार्थ बनाने और खाने के काम में आता है। जब भेली (गुड की गोली) बनाना होता है तो रस छानते, दूध वगैरह देकर उसकी मैल निकालते और मिर्च सोंप वगैरह देकर जलपान के योग्य बना लेते हैं। जब चीनी आदि बनाना होता है तो बहुत गाढा होने के पहले ढीले रस को एक गढ़े में ढारते जाते हैं। इस प्रकार राब तैयार होता है। राब से छोआ निकाल कर कुछ साफ कर देते हैं तो वह भूरा और शकर कहलाने लगता है। राब को फिर औंटकर और दूध वगैरह देकर उसकी मैल साफ

है। फिर सेवार वगैरह से उसे खूब साफ करते हैं चीनी बन जाती है। अब तक इसके कई कारखाने यहाँ पर यहाँ ही आजकल शुद्ध चीनी मिलती है। आजकल चीनी कल से ही तैयार होती है। कलें यहाँ पर। बाहर से भी कल द्वारा चीनी बन कर आती है। ऐसी —को मोरिस कहते हैं। चीनी ही की विशेष प्रक्रिया मिश्री बनती है। मिश्री ही से ओला बनता है, जो मिश्री से भी उत्तम होता है। इसमें ज़रा सी भी मलिनता नहीं रहती।

लाभ—गुड़ और चीनी के बिना कोई चीज मीठी नहीं हो। जहाँ गुड़ नहीं होता वहाँ मधु से भी मीठा पदार्थ होता है, पर वैसा नहीं। खजूर का भी गुड़ होता है पर अच्छा स्वाद उसका नहीं होता। यूरोपीय पण्डित आम, चुकन्दर, दूध, आदि अन्यान्य पदार्थों से भी चीनी काढ़ते हैं, पर वह इतना थोड़ा है कि उससे कुछ होने जाने का नहीं। जहाँ तक मधुर पदार्थ भिन्न २ प्रकार के हैं सब गुड़ चीनी की ही बदौलत बनते हैं।

प्रश्न—ईख, अखरोट, कत्था, केला और नागर पर एक एक लेख लिखो।



द्वितीय अध्याय—विवरणात्मक प्रबन्ध।

NARRATIVE ESSAYS

प्रथम परिच्छेद—ऐतिहासिक प्रबन्ध।

(Historical Essays.)

प्रथम पाठ—पौराणिक घटना (Mythological Event)

महाभारत की संक्षिप्त कथा।

आधुनिक दिल्ली के निकट कुरु-राज्य वर्तमान था। कुरुवंश में धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो भाई उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, इससे राज्यसिंहासन उन्हें प्राप्त नहीं हुआ और छोटे होने पर भी पाण्डु राजा हुए। धृतराष्ट्र की स्त्री का नाम था गान्धारी। उनके दुर्योधन, दु:शासन आदि सौ लड़के थे। पाण्डु की दो स्त्रियाँ थीं कुन्ती और माद्री। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के और नकुल तथा सहदेव माद्री के गर्भ से पैदा हुए थे। धृतराष्ट्र के सौ लड़के कौरव और पाण्डु के पाँचों लड़के पांडव कहलाते हैं।

पाण्डु अल्पायु हो गये। उस समय पाण्डव छोटे थे। सब लोग धृतराष्ट्र की अधीनता में रहने लगे। उन्होंने अपने सौ लड़कों तथा पाण्डवों को अस्त्रशिक्षा देने के लिये गुरु द्रोणाचार्य को समर्पण किया। वीर ब्राह्मण द्रोण सब को यथावत् अस्त्र-शिक्षा देने लगे। थोड़े ही काल में अर्जुन अस्त्र विद्या में बढ़कर गुरु के अत्यन्त प्रेमी हो गये। भीम के शरीर में असाधारण बल था। दैहिक बल में उनका कोई सामना न कर सकता था। इन दोनों की इस प्रकार बढ़ती देख दुर्योधन

के हृदय में ईर्षानल प्रज्वलित हुआ । वे शान्त-शील [illegible] की अपनी दुष्ट बुद्धि से अनिष्ट चेष्टा करने में हुए ।

दुर्योधन ने उनके सत्यानाश करने के कई उपाय किये, पर भाग्य से बचते गये । यहाँ तक कुन्ती समेत पाँचों को लाह के घर में बन्द कर के आग लगा दी । उस भी पाण्डवों का प्राण-रक्षण हुआ । इधर लोगों को विश्वास हो गया कि पाँचो पाण्डव मर गये; उधर वे पाँचों भाई [illegible] में छिप कर रहने लगे । इसी समय द्रौपदी का [illegible] हुआ और अर्जुन ने लक्ष्य वेध कर द्रौपदी को [illegible] अन्त में इसका भेद खुल गया और पाण्डव पहचाने । द्रौपदी पाण्डव से ब्याही गयी । बाद धृतराष्ट्र ने उन्हें आधा राज्य बाँट दिया । हस्तिनापुर में राजा युधि-[illegible] ने राजसूय यज्ञ किया । उनकी कीर्ति चारों ओर फैली । फिर भी दुर्योधन के हृदय में आग धधकी ।

शकुनी के सलाह से राजा युधिष्ठिर जुआ खेलने के लिये बुलाये गये । इच्छा न रहने पर भी उन्होंने जुआ खेला । शकुनी अपने दाँव-पेंच से सब बाजी मारता गया । युधिष्ठिर जुए में सर्वस्व खो बैठे । यहाँ तक की द्रौपदी को भी हार गये । भरी सभा में उसका अपमान देख कर पाण्डव जल भुन गये । अन्त में १२ वर्ष तक सस्त्रीक वनवास करना पड़ा । पाण्डव वनवास काल बिता कर लौटे । उन्होंने अपना प्राप्य राज्यांश माँगा, पर दुर्योधन सूई की नोक बराबर भी जमीन देने को राजी नहीं हुआ । युद्ध अनिवार्य हुआ । भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े राजों ने कौरव और पाण्डवों का पक्ष लेकर युद्ध में [illegible] । श्रीकृष्ण ने सारथ्य का पद लिया । युद्ध

क्षेत्र में बड़ा भारी युद्ध हुआ। अठारह अक्षौहिणी सेना कटी। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ बेटे मारे गये। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अभिमन्यु आदि वीर भी इस युद्धानल में स्वाहा हुए।

युधिष्ठिर विजयी हुए। भाई भाई के पारस्परिक विद्वेष से भारत गारत हो गया। चारों ओर हाहाकार मचा। सर्वत्र श्मशान का दृश्य दिखलाई पड़ने लगा। विधवाओं के आर्तनाद से आकाश गूँज उठा। बचे हुए वीर बड़े अधीर हुए। मर्मस्पर्शी इस कारुणिक दृश्य को देख कर धर्मप्राण धर्मपुत्र युधिष्ठिर का कोमल हृदय आकुल हो उठा। युधिष्ठिर आदि पाँचो भाईयों ने द्रौपदी-सहित अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राज्य देकर हिमालय में महाप्रस्थान किया। भारत के सब से बड़े ग्रन्थ महाभारत में यही कथा विस्तृत रूप से वर्णित है।

प्रश्न—रामायण, ध्रुव, प्रह्लाद और नलदमयन्ती की कथा तथा शकुन्तला चरित्र लिखो।

द्वितीय पाठ—आधुनिक घटना।
Historical Event
महारानी विक्टोरिया का राज्य शासन।
(The Reign of Queen Victoria)

राज्याधिकार—इंगलैंड के तीसरे जार्ज के कई लड़कों में से विलियम चतुर्थ और उनके बड़े भाईयों को कोई सन्तान न थी। जब उनका परलोक हुआ तब महारानी विक्टोरिया ही राज्याधिकारिणी हुई। ये तीसरे जार्ज के चौथे पुत्र और विलियम चतुर्थ के छोटे भाई एडवर्ड ड्यूक आफ केन्ट की एकलौती लड़की थीं। सन् १८१९ ई० की २४ वीं मई को विक्टोरिया का जन्म हुआ था। महारानी के जन्म

...के एक वर्ष बाद इनके पिता की भी मृत्यु हो गयी। १८३७ ई० की २१ वीं जून को महारानी विक्टोरिया इंगलैंड के राज्य सिंहासन पर बैठीं। इस समय इनकी अवस्था लगभग १८ वर्ष की थी।

मंत्रिगण—जब महारानी विक्टोरिया राज्य-सिंहासन पर बैठीं तब वाईकौन्ट मेल्बोर्न प्रधान मन्त्री थे। चार वर्ष तक महारानी ने इस विज्ञ पुरुष के सुविचार और सुपरामर्श से राज्य का प्रबन्ध किया। इनके उपरान्त रावर्टपील, रसेल, डर्बी, एबर्डीन, पामर्स्टन, डिज्रेली, ग्लेडस्टन, सालिसबेरी और रोजबेरी आदि महापुरुषों ने अपने २ नियत समय में प्रधान मन्त्री के पद को सुशोभित करते हुए शासन में महारानी की सहायता की।

प्रधान घटनायें—जिस समय महारानी सिंहासनारूढ़ हुईं उसी साल इलेक्ट्रिक टेलिग्राफ का आविष्कार हुआ। संयुक्त राज्य अर्थात् इंगलैंड, स्काटलैंड और आयर्लैंड में पत्रों पर एक आने का टिकट लगाने का नियम स्थापित किया गया। कनाडा देश को स्वराज्य दिया गया। १८४० ई० में महारानी का विवाह सैक्सिकोबर्ग के युवराज अल्बर्ट के साथ हुआ। १८४८ ई० में १५० वार्षिक आय वालों पर इनकम टैक्स जारी हुआ। गल्ला वगैरह जो दूसरे देशों से आता था उस पर का कर बन्द कर दिया गया और स्वतन्त्र व्यापार की बड़ी स्थापना की गई। भारत में सिपाही विद्रोह बड़े भयानक-रूप से हुआ, पर शीघ्र ही यह शान्त कर दिया गया। भारत कम्पनी के हाथ से गवर्नमेंट के हाथ में आया—१८७७ में विक्टोरिया भारत की महारानी हुईं।

इनके समय में अंगरेज़ी राज्य की बड़ी भी वृद्धि हुई।

समस्त आष्ट्रेलिया, भारत, अफ्रिका, न्यूजीलेंड का टापू, साइप्रस, हाङ्गकाङ्ग आदि अंग्रेजी-शासन के अधीन हुए। क्राइमियम युद्ध, चीनयुद्ध, वुअरयुद्ध, अमेरिका की लडाई आदि कई एक युद्ध हुए जिनमें अंग्रेजी सेना ने बडी प्रसिद्धि पाई और प्राय हरेक लड़ाई में इङ्गलैंड ही की विजय हुई।

देश के सुधार, उन्नति और भलाई के लिये अनेक कानून बनाये गये। सार्वजनिक स्वास्थ्य का नियम हुआ, जिससे देश में हैजा आदि भयङ्कर रोगों का प्रभाव कम हो गया। शिक्षा के नियम बने जिन से शिक्षा सर्व इङ्गलैंडवासियों के लिये वाध्य कर दी गई और देशीय प्राथमिक शिक्षा मुफ्त में दी जाने लगी।

इस समय ग्रेट ब्रिटेन की जन सख्या दूनी, धन प्राय तिगुना और व्यापार छ गुना बढ गया था। उपनिवेशों की भी ऐसी ही तरक्की हुई। कलाकौशल, व्यापार और विज्ञान की भी बहुत अधीक उन्नति हुई। बिजली के द्वारा नये नये आविष्कार हुए।

पचास वर्ष का शासन समाप्त होने पर १८८७ ई० में बडी धूम-धाम से जुबिली का उत्सव मनाया गया। महारानी की सारी प्रजा ने दिल खोल कर अपना आह्लाद और अनुराग प्रकट किया। उसके दश वर्ष वाद १८९० ई० में हीराजुबिली का उत्सव हुआ। इसमें पहले की अपेक्षा चौगुनी धूमधाम से उत्सव मनाया गया। भारतवासियों ने इस मौके पर अपनी सर्वप्रसिद्ध राजभक्ति दिखलाई। २२ जनवरी १९०१ को सम्राज्ञी विक्टोरिया ने परलोकवास किया।

उपसंहार—महारानी विक्टोरिया बडी उदार प्रकृति की थीं। ये वडी ही योग्य, विज्ञ तथा राज्य शासन में प्रवीण थीं। इन्होंने अपने समय में राजा और प्रजा में पूर्ण विश्वास और

करके राष्ट्र को बहुत सबल और दृढ़ बना दिया। गुण थे। इनका सौहार्द, बुद्धिमत्ता, प्रजा जीवन में पवित्रता और कामकाज में नि की मात्रा बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी। इनके शान्तिमय काल में जनता ने अपूर्व शान्ति-सुख लाभ किया। मुसलमान, ईसाई आदि अपनी समस्त प्रजा को समदृष्टि से देखती थीं और वे भी उनकी ओर सानन्द से देखते थे। इतिहास में सम्राज्ञी विक्टोरिया का वह स्थान है जो इनके पूर्व किसीको उपलब्ध नहीं था।

और अकबर का राज्य, सिकन्दर का भारत आक्रमण, हल्दीघाट और १८५७ की क्रान्ति पर एक एक लेख लिखो।

तृतीय परिच्छेद—जीवनचरितात्मक प्रबन्ध।

BIOGRAPHICAL ESSAYS

प्रथम पाठ—प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी।

(Lives of Great men)

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

भूमिका—"विद्यासागर" इस शब्द से केवल बंगाल ही नहीं किन्तु अन्यान्य प्रान्त में भी सभी पं० ईश्वरचन्द्र का नाम लेते हैं। विद्यासागर भारतवर्ष में जैसे प्रसिद्ध विद्वान्, कर्मवीर, परोपकारी, देशहितैषी, दयालु और सुधारक समझे जाते हैं वैसे ही अन्य देशों में भी प्रसिद्ध हैं। विद्यासागर का नाम विश्वविख्यात कहा जाय तो कुछ भी अनुचित नहीं होगा।

जन्मकाल—प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म ता० २६ सितम्बर सन् १८२० ई० में मेदिनीपुर जिले के वीरसिंह ग्राम में हुआ था। आप के पिता पण्डित ठाकुरदास एक दरिद्र ब्राह्मण थे। कलकत्ते में सिर्फ ८) रु० पर नौकरी करते थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि ईश्वरचन्द्र किसी प्रकार पढ़ लिख जाय।

विद्याध्ययन—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जब ५ वर्ष के थे तब गाँव की पाठशाला में पढ़ने लगे। इसी समय से बालक विद्यासागर अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय देने लगे। कुछ साल के बाद वे कलकत्ता पढ़ने के लिये आये। आने के समय इन्होंने माइल स्टोन के अङ्कों को देख कर अंग्रेजी संख्या ठीक कर ली और कलकत्ते में पहुँच कर एक बिल का जोड़ ठीक कर दिया। आठ वर्ष के बालक का यह चमत्कार देख कर सब विस्मित हुए। नव वर्ष की उम्र में कलकत्ता संस्कृत कालेज में इनका नाम लिखा गया। क्रमश ईश्वरचन्द्र ने अत्यन्त मनोयोग, असाधारण अध्यवसाय, अतिशय आग्रह और आनन्द से व्याकरण, साहित्य, अलंकार, स्मृति, न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि विविध शास्त्रों को केवल १२ वर्ष में पढ़ डाला। पढ़ने के समय अपनी कक्षा में सर्वोच्च स्थान अधिकार कर ये सभी उच्च पुरस्कार और वृत्ति पाते रहे। सभी अध्यापक उनका परिश्रम और प्रतिभा, सदाचार और सद्व्यवहार देख कर मुग्ध हो गये। २० वर्ष की अवस्था में जब सर्व-शास्त्र पारदर्शी होकर कालेज से अलग होने लगे तब वहाँ के सब अध्यापकों ने 'विद्यासागर' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया।

कार्यकाल—कालेज छोड़ते ही विद्यासागर को फोर्ट

विलियम कालेज में ५०) में प्रधान पण्डित का पद मिला। क्रमश इनका पाण्डित्य प्रकट होने लगा और उन्नति भी साथ साथ होती गई। बाद यथावसर संस्कृत कालेज के सहकारी सम्पादक, सहकारी अध्यापक और अन्त में उसके अध्यक्ष (Principal) हुए। विद्यासागर ही बंगालियों में सर्व प्रथम प्रिन्सिपल थे। इसी समय कितनी ही संस्कृत पुस्तकों का संस्करण, सम्पादन और अनुवाद तथा कितने नूतन संस्कृत ग्रन्थ विद्यासागर ने लिखे। फिर ये असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर हुए। अब इन्हें ५००) रुपये मासिक मिलने लगा। इसी समय इन्होंने स्कूल सम्बन्धी कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं और अन्यान्य शिक्षा सम्बन्धी सुधार किये। तीन वर्ष इन्स्पेक्टरी करके इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी। अवशिष्ट जीवन इन्होंने देश और समाज के हितकर कार्यों में बिताया।

गुणावली—विद्यासागर ही ऐसे अध्यवसायी व्यक्ति थे जिन्होंने इतनी दीन हीन अवस्था में विद्योपार्जन किया। जब ये कलकत्ते आये थे तब दोनों साँझ चौका बर्तन करना, रसोई बनाना, घर-बाज़ार करना, पिता और भाई की सेवा करना आदि सब काम इन्हींको करना पड़ता था; तथापि अपने पढ़ने का समय ये खूब निकाल लिया करते थे। आधी रात से उठ कर सबेरे तक ये पढ़ा करते थे। रसोई बनाने के समय और रास्ता चलने के समय भी ये अपना पाठ याद करना नहीं भूलते थे। इनमें माता पिता की भक्ति कूट कूट कर भरी थी। नौकरी लगते ही इन्होंने पिता को नौकरी से अलग कर घर पर रहने को भेज दिया। एक बार इनकी माँ ने इन्हें देखने के लिये अभिलाषा की और ये झटपट दामोदर नदी पार कर घर आ पहुँचे। आपकी दयालुता तो बहुत बढ़ी चढ़ी थी।

दरिद्रों का दुःख छुड़ाना, अनाथों को आश्रय देना और सत्कर्म करने वालों को उत्साह देना इनका प्रधान काम था। इनका अत्यन्त कोमल हृदय स्वदेश-वासियों का कष्ट सहन नहीं कर सकता था। इनके दान की सीमा नहीं थी। ये स्वदेश और स्वजाति का प्यार करते थे। अपनी अशेष हानि उठाकर स्वदेश और स्वजाति के लिये ये अनेकानेक कार्य कर गये हैं। परोपकार, करुणा और वात्सल्य की ये मूर्ति ही थे। इनमें जैसी स्वाधीन-चित्तता और आत्मनिर्भरता थी वैसी अब तक किसी में न देखी गई। ये अपने विचार से तिल मात्र भी डिगते न थे। इन्होंने ५००) की नोकरी छोड़ दी पर अपना विचार नहीं बदला। कोई कैसा ही काम हो, जो अपने से हो सकता था, उसमें ये दूसरे की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं करते थे। विद्यासागर के समान उदार-प्रकृति और स्वाधीन मनुष्य दुर्लभ हैं। उनका वेश ऐसा साधारण था कि सब लोग उन्हें पहचान भी नहीं सकते थे। महापुरुषों में जितने गुण होने चाहिये वे सब इनमें वर्तमान थे। इसी गुणावली से बंगाल के छोटे लाट तक के ये आदरणीय थे।

सुधार—विद्यासागर सुधार के भी बड़े पक्षपाती थे। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह के बड़े ही कट्टर शत्रु थे। इसके लिये इन्होंने बड़ा यत्न किया। इनके जीवन का उद्देश्य विधवा-विवाह का प्रचार भी था। इन्होंने १८५६ में इसका कानून भी बनवा डाला।

साहित्यसेवा—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे आधुनिक हिन्दी लेखन-प्रणाली के जन्मदाता थे वैसे ही आधुनिक बङ्ग-साहित्य के जन्मदाता विद्यासागर थे। उनके पहले गद्य की कोई सुललित प्रणाली नहीं थी। इन्होंने ही गद्य-साहित्य को नवीन

ाकार और गाम्भीर्य देकर उसका गौरव बढ़ाया। उनकी
ाच्छ, सुमिष्ट और गम्भीर लेखन प्रणाली से सभी मुग्ध थे।
ीतार वनवास' इसके उदाहरण के लिये पर्याप्त है। शकुन्तला,
्थामाला आदि और भी इनकी बहुत सी पुस्तकें प्रसिद्ध
। संस्कृत की पुस्तकों में इनकी व्याकरण कौमुदी चारो भाग
ौर उपक्रमणिका बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्हीं की देखादेखी
ये ढंग-ढंग से संस्कृत सीखने के लिये कई पुस्तकें प्रचलित
ुई हैं।

देशसेवा—इन्होंने अपने मकान पर उच्च श्रेणी का एक
ैतनिक विद्यालय और चिकित्सालय खोल रक्खा था।
ंगाल में होमियोपैथिक चिकित्सा के प्रवर्तक ये ही थे। ऋण
ग्रस्त होकर फ्रांस में अपने दान से 'मेघनाद वध' काव्य
र्ता माइकेल मधुसूदन दत्त को मृत्यु-मुख से मुक्त किया था।
लकत्ते में इनका स्थापित फर्स्ट ग्रेड कालेज इनकी अलग
ीर्ति का उल्लेख कर रहा है। ऐसे ही आपकी देशसेवा के
नेक कार्य हैं।

जो विद्यासागर दयासागर हो दीनों के दुःख दूर कर र
हे थे ७० वर्ष की उम्र में १८९१ ई० में ऐहलौकिक लीला समाप्त
कर परलोक को सिधारे।

सुकरात का जीवन-चरित्र।

इतिहासों से प्रगट है कि यूनान देश प्राचीन काल में हर
तरह की शिक्षा, शिल्प, विज्ञान आदि के लिये अति प्रसिद्ध था,
यहाँ तक कि उसे विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय
तो कुछ अत्युक्ति न होगा। यहाँ के बड़े बड़े विद्वान् वैज्ञानिकों
में एक सुकरात भी था। यह ईसाई सन के ४७१ वर्ष पहिले

आसीनिया नगर में पैदा हुआ था, और "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस कहावत के अनुसार छोटी ही उमर में अपने बाप के सौदागरी पेशे का काम झटपट सीख सिखाय भली भाँति प्रखर हो गया। तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों मे काटने लगा, जिनके सत्सग से कुछ दिनों के उपरान्त अपनी विमल बुद्धि के कारण यह सम्पूर्ण विद्या, विज्ञान और शिल्प शास्त्र में भली भाँति कुशल होकर यूनान के बडे बडे विद्वान और दार्शनिकों से भी वाद विवाद में भिड जाता था। उनका पक्ष खण्डन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था, यहाँ तक कि कुछ दिनों में सम्पूर्ण यूनान भर में इसके लोकोत्तर चमत्कार बुद्धि की धूम मच गई। एकबार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार लूट, जो उस समय का यूनानी सिक्का था, निज के खर्च के लिये दे गया था, पर इसने उन सब रुपयों को बतौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया था। उसने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिये, पर सुकरात ने इस बात का कुछ भी ख्याल न किया और न उससे रुपये कभी माँगे। मेसिडोनिया के राजा अर्किलीस ने बहुत कुछ चाहा कि सुकरात एक बार उससे किसी बात के लिये कुछ कहे पर इसने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न दिया। इस बुद्धिमान हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रज जो इस पर आ पडते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों पर उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था, उसके मन की सबसे बडी अभिलाषा—जिसके लिए यह अत्यन्त लोलीन रहा करता था—यह थी कि जिस तरह हो सके हम अपनी जन्मभूमि को कुछ

फायदा पहुँचा सकें और सब लोग कुमार्ग से बच कर सच्चे और सीधे राह पर चलें, एक दूसरे की बुराई कभी न चेतें यद्यपि इस सज्जन पुरुष ने कोई स्कूल या वाज करने की जगह नहीं बनवाई, पर जहाँ अफसर लोगों की भीड़भाड़ रहती उनके बीच यह घण्टों तक सदुपदेश दिया करता था और रात दिन मनसा वाचा कर्मणा अपने देश के लोगों के हित में तत्पर रहा करता। हकीम अफलातून सुकरात का बहुत बड़ा शागिर्द था। मरती बार सुकरात ने तीन बात के लिये अपनी प्रसन्नता प्रगट की और हाथ जोड़ कर कहा, "हे जगदीश्वर, मैं तुझे कोटि कोटि धन्यवाद देता हूँ कि तूने मुझे बातों के मर्म समझने की बुद्धि दी। यूनान ऐसे देश में जन्म दिया और अफलातून ऐसा शिष्य मुझे मिला।" एक दिन अटिका का राजा अलसिबिडीस बड़े घमण्ड में भरा हुआ यह डींग हाँक रहा था कि मेरे पास बड़ा धन है और मैं बड़े भारी राज्य का स्वामी हूँ। जब सुकरात ने घमण्ड की बात सुनी तो उसने कहा कि "हे अलसिबिडीस, तनिक इधर आ और भूगोल के नक्शे की ओर ध्यान कर और बता तेरा राज्य अटिका कहाँ पर है ?" तब उसने नक्शे को देखा, घमण्ड के नशे में जो चूर चूर था सब उतर गया और उसकी आँख खुल गई, सिर नीचा कर के कहा कि मेरा मुल्क यूनान जो सम्पूर्ण योरप का एक छोटा सा देश है, उसका भी एक अत्यन्त छोटा सा प्रदेश है। उसकी यह बात सुन सुकरात ने कहा "तो ऐ प्यारे! फिर क्यों इतनी धूम की डींग रहा है! घमण्ड बहुत बुरा होता है। सर्वशक्तिमान जगदीश्वर के करतब से इस भूमण्डल पर एक से एक बढ़ बढ़ कर पड़े हैं, उनके सामने तू किस गिनती में है।" थोड़े दिन बाद यूनान

के बहुत से अत्याचारी निष्ठुर मनुष्यों ने ईर्षा से उनहत्तरवें वर्ष में सुकरात पर यह दोष लगाया कि यह बुड्ढा असीना नगर के नवयुवा लोगों को बुरे चालचलन की ओर रुजू करता है। उनके बाप दादाओं के पुराने बर्त्ताव और मत से हटा कर उन्हें नास्तिक बनाया चाहता है, और उनके देवी देवताओं की निन्दा करता है। इन दोषों के कारण वह अदालत के सपुर्द हुआ। अदालत ने इसे विष पीकर मर जाने की सजा तजवीज की। उस निर्दोषी पर प्राण दण्ड सुन जब कि सब उसके बन्धुभाई और मित्र विलाप कर और पछता रहे थे, सुकरात अत्यन्त धैर्य के साथ विष का प्याला उठाकर घूँट गया और अपने मरने तक सदुपदेश देता रहा। जब विष इसके सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया यहाँ तक कि बोल भी न सका, था तब इसने आँख बन्द कर ली और सिधार गया।

भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र।

जमसेदजी नसरवानजी ताता।

भूमिका—हिन्दुस्तान के दानियों में ताता का नाम बहुत प्रसिद्ध है। बम्बई की कोई ऐसी संस्था नहीं जिसमें आपने दान न दिया हो। आप अपने धुन के पक्के, विचार के पूरे और अध्यवसाय की मूर्ति थे। आपने अपने धन का ऐसा सदुपयोग किया जैसा किसीने नहीं किया। दीन-दुखियों के दुख दूर करने वाले इस देश में इन दिनों इने गिने हैं। उनमें भी जमसेदजी के समान सच्चे दानी बहुत कम हैं।

बाल्यकाल—आपका जन्म १८३६ ई० में हुआ था। तेरह वर्ष की उम्र में पढ़ना लिखना शुरू किया। कुछ दिनों तक आपने एलफिन्स्टन कालेज में भी पढा। लड़कपन से,

...म तिजारत में लगता था, इससे शीघ्र ही आपने ... में अपने पिता का साथ दिया । यद्यपि आपका ... साधारण रूप से हुआ था तथापि आपकी शक्तियाँ इतनी प्रबल थीं कि जिनसे आप व्यापार ... सुयोग्य पुरुष बन गये ।

व्यापार—१८५९ में आप चीन गये और वहाँ ताता ... खोली । आपने उसके ब्रांच जापान, फ्रान्स और अमे-... भी स्थापित किये । १८६५ में आपने इङ्गलैंड में इंडि-... खोलने का भी उद्योग किया था । कुछ दिनों के बाद ... फैक्टरी खोलने का आपका विचार हुआ । बम्बई ... 'एलेक्जेण्डर' मिल उसी विचार का परिणाम ... मध्यभारत में आपने कपड़े के मिल और लोहे की फैक्टरी खोली । अब आपकी नागपुर वाली 'इम्प्रेस मिल' बड़ी ... रह है । आपके सुयोग्य पुत्रों ने लोहे की फैक्टरी की ... तरक्की की । आपने इस देश में कपास की खेती का प्रचार ... उसमें बड़ी तरक्की की और अन्यान्य ऐसे ही बड़े २ व्यापार चलाये । आपके रोजगारों से केवल आप ही को नहीं देश को भी बड़ा लाभ होता था ।

दान—आपने धन कमाकर केवल ऐशो ही में नहीं उड़ा दिया किन्तु अपने हाथ देशहितकर कार्यों में दान दिया । आपने इस देश के होनहार लड़कों को विलायत भेजने की ... के लिये ५ लाख रुपये दिये । कारीगरी की तरक्की के लिये आपने दुर्भिक्ष फण्ड को दस हजार रुपये दिये । आपने साइंस, ... और विज्ञान, शिल्पकारी आदि पढ़ाने के निमित्त ... यूनिवर्सिटी खोलने के लिये १० लाख रुपये का दान दिया । [illegible]

ताता का नाम वम्बई में घर २ प्रसिद्ध है। आप भारत के सच्चे सपूतों में एक थे।

ऐसे देशहितकारी महावीर ताता का १६०४ ई० में बम्बई के नौहास गाँव में शरीरान्त हुआ।

श्रीयुत बाबू हरिनाथ दे० एम० ए०।

अत्यन्त शोक के साथ लिखना पडता है कि आज दिन भारतवर्ष के विद्वन्नभोमण्डल का एक भ्राजमान नक्षत्र अकाल में गिर पडा। इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स इत्यादि विद्यापीठ के देशों में जाकर भी भारतवर्ष का मुख उज्वल करने वाला उस का वह सुपुत्र अब न रहा। भारतवर्ष ने अपना एक असूल्य रत्न खो दिया। अब इस संसार में भारतवर्ष का एक उत्कट बहुभाषाविज्ञ विद्वान् न रहा। गत बुधवार ता० ३०-८-११ को श्रीयुत बाबू हरिनाथ दे इस असार संसार को छोडकर महा प्रस्थान कर गये।

इनका जन्म १८७७ ई० के अगस्त महीने में हुआ था। इनके पिता राय बहादुर बाबू भूतनाथ दे एम० ए०, बी० एल० रायपुर (मध्य प्रदेश) के माननीय और प्रतिष्ठित वकीलों में से थे।

बाबू हरिनाथ दे प्रारम्भिक शिक्षा एक ग्राम्य पाठशाला में पूर्ण कर और माइनर परीक्षा में ५) रुपये की छात्र-वृत्ति पाकर हाई स्कूल में पढने लगे। उनकी प्रदीप्त और प्रखर बुद्धि का विकाश बाल्यावस्था ही से मालूम होने लगा था। १८६२ में इन्ट्रेन्स परीक्षा उन्होंने प्रथम वर्ग में पास की। दो वर्ष बाद सेन्ट जेवियर्स कालेज से एफ० ए० परीक्षा प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण होकर डफ साहब की भाषा-सम्बन्धी छात्रवृत्ति को उन्होंने प्राप्त किया और लैटिन और अङ्गरेजी में

के साथ प्रेसिडेन्सी कालेज से १८९६ ई० में
पढ़ होकर ५० रुपये की छात्रवृत्ति पायी।
इनका सर्व्वोच्च स्थान रहा। उसी साल मैट्रिक
दूसरे वर्ष ग्रीक में एम० ए० पास कर सर्व्वोपरि
को ग्रहण किया। इसके साथ] २ दोनों परीक्षाओं में
स्वर्ण पदक भी मिला। सन् १८९८ में इनको राजकीय
प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ। अतएव पढ़ने को
गये। तत्पश्चात् उन्होंने क्राइस्ट कालेज (कैम्ब्रिज)
भाषा सम्बन्धी उच्च और निम्न ट्राइपोल नामी
परीक्षाओं में प्रथम स्थान पाया। उसी साल उनको
ग्रीक और लैटिन भाषाओं में पद्य-रचना के उपलक्ष में स्कीट-
(Skeat-memorial) पारितोषिक भी मिला। इन
फ्रान्स के सोरबन (Sorban) और जर्मन के मरबर्ग
arburg) विश्वविद्यालयों में कुछ दिनों तक शिक्षा ग्रहण
कर स्वदेश को लौट आये। १९०१ ई० में उन्होंने पाली भाषा
में एम० ए० की परीक्षा दी और सर्व्वोच्च स्थान पर सुचित
हो एक स्वर्ण-पदक भी प्राप्त किया। इसके दो वर्ष बाद उनको
संस्कृत भाषा में भी एम० ए० पास कर प्रथम स्थान ग्रहण
करने के कारण एक स्वर्ण-पदक मिला। इसके अतिरिक्त वे
संस्कृत, अरबी और उड़िया में भी "हाई प्रोफिशियन्सी"
(High Proficiency) नामक परीक्षा सफलता-पूर्वक
उत्तीर्ण हुए। इन्हें पूर्वोक्त दोनों भाषाओं के लिये दो २ हजार
और उड़िया के लिये एक हजार पारितोषिक मिला। कुछ
काल के उपरान्त संस्कृत और अरबी में भी "डिग्री [illegible]
ऑनर्स" परीक्षा में सफलीभूत हुए। उन्होंने सब मिला के [illegible]
पाँच पाँच हजार रुपया पारितोषिक प्राप्त किया।

रमणियों में उदाहरणीय और उनके लिये अनुकरणीय थी। इसके पातिव्रत्य के बल से देवताओं ने भी पराजय पाया था।

परिचय—दमयन्ती विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या थी। यह अपने पिता को बड़ी प्यारी और दुलारी थी। एक बार यह अपनी फुलवाड़ी में टहल रही थी कि एक हंस इसके पास आया और निषध देश के राजा वीरसेन के बड़े लड़के महाराज नल के गुण रूप की बड़ी २ प्रशंसा करने लगा। उसने यह भी कहा कि मैं तुम्हारे रूप और गुण की प्रशंसा नल को सुना आया हूँ। वे तुम्हें अपनी पत्नी बनाने के लिये इच्छुक हैं। यदि तू इस संसार में देवताओं से भी बढ़ कर किसी राजा को अपने पति के योग्य समझती है तो वह नल ही है। मेरी बात मान कर तू नल से विवाह कर ले। दमयन्ती भी नल की सुन्दरता आदि का वर्णन सुन कर उन्हें पति बनाने के लिये उत्सुक हुई।

नल का दौत्य—विदर्भराज भीम ने दमयन्ती के स्वयम्वर की तैयारी की। राजा नल भी निमन्त्रण पा स्वयम्वर में चले। रास्ते में इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर नल से मिले। उन्होंने अपने में से किसी एक के साथ विवाह करने के लिये दमयन्ती के पास उन्हें दूत बन कर जाने को बाध्य किया। नल अपनी प्रतिज्ञानुसार छिपे २ दूत बन कर दमयन्ती के पास गये। वहाँ उन्होंने उन देवताओं की खूब प्रशंसा की और दमयन्ती को बार २ किसी एक के साथ विवाह करने का आग्रह किया। उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि मैं नल को छोड़ कर किसीके साथ विवाह न करूँगी। मैंने उन्हें अपना पति चुना लिया है। वे न भी विवाह करेंगे तो भी मैं दूसरे

करेंगी। नल ने लौट कर देवताओं से सब हाल
।

स्वयम्वर में सब राजा एकत्र हुए। नल भी आये और वे सारे देवता भी नल का रूप धर आये। दमयन्ती ने राजमण्डल से मण्डित सभा-में प्रवेश किया। पहले तो वह पाँच २ नलों को देख चकपकायी, पर पीछे समझ ली। उसने शुद्ध मन से ध्यान कर उन्हींके गले में जयमाला पहनायी। देवता उस भावना पर प्रसन्न हो आशीर्वाद दे विदा सब राजा भी यथास्थान गये। राजा नल का विवाह हुआ। दमयन्ती अपने पति के साथ ससुराल
।

—दमयन्ती के दिन सुख से बीतने लगे। उसने [illegible] अपने रूप ही से नल को मोहित किया था पर यहाँ उसने अपने गुण और सेवा-शुश्रूषा से भी उन्हें मोह कर लिया। कुछ काल के अनन्तर उनके एक पुत्र एक कन्या उत्पन्न हुई। उनके इन्द्रसेन और इन्द्रसेना गये।

वनवास—देवता के अपमान से, क्रोधी कलि के प्रभाव से, [illegible] अपने छोटे भाई पुष्कर को हिताहितज्ञानशून्य हो कर खेलने को ललकारा। कपटी पुष्कर ने जुए में नल को जीत लिया। वे अपना सारा राज-पाट हार गये। [illegible] उन्हें राज्य से निकलवा दिया। दमयन्ती पति के पीछे चली। लड़का और लड़की दोनों पहले ही ननिहाल [illegible] हुए थे। पापी पुष्कर ने [illegible] फिरवा कर नल को नगर

में रखने की मनाही कर दी। बेचारे नल वन में गये। जहाँ वे थक कर बैठ जाते, दमयन्ती उनका पैर दबाती और भूखे प्यासे होने पर फूल मूल ला देती। दमयन्ती को वे बहुत समझाते कि तुम अपने पिता के घर चली जाओ, पर वह नहीं मानती थी। उसका दु:ख नल से देखा नहीं जाता था। जितना वे समझाते उतना वह दुखी होती। बार २ समझाने पर भी पतिव्रता दमयन्ती ऐसी अवस्था में पति को छोड़ अन्यत्र जाने को राजी न हुई।

पति-पत्नी के कष्ट—एक बार राजा ने पक्षियों को पकड़ने के लिये अपना कपड़ा फेंका। वे कपड़ा लेकर उड़ गये। नंगे राजा को दमयन्ती ने अपना आधा कपड़ा पहनाया। जब दमयन्ती सो गई तो राजा नल उसे सोती हुई छोड़ अयोध्या में ऋतुपर्ण राजा के यहाँ मलिन वेश से जा सारथी का काम करने लगे। इधर दमयन्ती जब उठी तो नल को न पा कर बड़ी विकल हुई। बहुत रोई, बिलखाई और बार बार मूर्च्छित हो भूमि पर गिरी। अन्त में लाचार हो अनेक दु:खों और संकटों को झेलती हुई, रोती-कलपती किसी सूरत से अपने पिता के घर पहुँची।

उपसंहार—पिता ने चारों ओर नल को ढूँढने के लिये दूत पठाये पर कहीं कुछ पता न पाया। अन्त में अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ उनका कुछ अनुसन्धान मिला। उनके बुलाने के लिये एक उपाय निकाला गया। पुन: स्वयम्बर की झूठमूठ खबर एक रोज पहले राजा ऋतुपर्ण को दी गयी। वे नल की अश्वविद्या के बल से यथासमय विदर्भ पहुँच गये। उन्होंने नल से अश्वविद्या सीखी और बदले में उन्हें द्यूत विद्या सिखलायी। जुआ खेलने में निपुण होते ही उनके

कलि निकल भागा और उनका पहला रूप
।

नल को पा कर परम प्रसन्न हुई। नल ने अपनी
जीत कर द्यूत-विद्या के बल से अपना सब राज-
से जीत लिया। फिर दोनों सुख से रहने लगे।
दमयन्ती के पातिव्रत्य के प्रभाव से ही हुआ।

अहिल्याबाई।

का कोई ऐसा पढ़ा लिखा व्यक्ति
ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा जो अहिल्याबाई का
हो। अहिल्याबाई जैसी पतिव्रता थी वैसी
थी और जैसी कर्त्तव्यपरायणा वैसी धर्म
थीं। अहिल्याबाई के जैसे विचार उच्च थे वैसे
कार्य भी थे। वे बड़ी विदुषी, बुद्धिमती, सुशीला,
और परोपकार-कुशला थीं। अहिल्याबाई के चरित्र,
आचार और व्यवहार तथा कार्य सभी अनु
है।

बाल्यकाल—मालवा देश में एक पाथरडी नामक गाँव
अहिल्याबाई के पिता आनन्दराव रहते थे। आप
के थे। आपने सन्तान के लिये बहुत ईश्वराराधन
था। इसके फल-स्वरूप १७३५ ई० में अहिल्याबाई का
हुआ। इसका बालपन ही से पढ़ने लिखने तथा पूजा-
में मन लगता था।

विवाह—अहिल्याबाई का शुभ विवाह मल्हारराव होल
पुत्र खण्डेराव से हुआ। आप अपने श्वसुराल में
और भक्ति से सास ससुर की सेवा और मन

तृतीय परिच्छेद—अनैतिहासिक घटना।

INCIDENTAL ESSAYS

प्रथम पाठ-परिभ्रमण (Travels)

सम्राट् की शुभयात्रा।

लण्डन परित्याग— अब से पहले स्थिर हुआ था कि भारत सम्राट् ६ वीं नवम्बर बृहस्पतिवार को भारत की ओर यात्रा करेंगे। अन्त में ६ वीं नवम्बर भारत-सम्राट् की जन्मतिथि निकली और सम्राज्ञी मेरी के अनुरोध से भारत यात्रा की यह तारीख बदल दी गई। शुक्रवार को विलायती जहाजी अशुभ दिन समझते हैं, इस दिन समुद्रीय यात्रा आरम्भ नहीं करते, इसलिये इस दिन की यात्रा स्थगित रखी गई। अन्त में ११ वीं नवम्बर शनिवार यात्रा का दिन ठहरा। इससे एक दिन पहले बकिङ्घम प्रासाद में सम्राट् की प्रिवीकाउन्सिल बैठी। काउन्सिल ने एक कमिटी बनाई, जो सम्राट् की अनु-पस्थिति में सम्राट् का कार्य्य करेगी। आधा घण्टे में सभा-कार्य्य समाप्त कर सम्राट् प्रधान मन्त्री आस्कुइथ से बात-चीत करने के लिये एकान्त में चले गये। दूसरे दिन समहि-षीक भारत सम्राट् ने लण्डन से भारत के लिये प्रस्थान किया। गत ११ वीं नवम्बर का विलायत का तार है-"भारत सम्राट् की भारती-यात्रा के उपलक्ष्य में आज लण्डन नगर में शाही धूमधाम खूब दिखाई दी। सम्राट्, सम्राज्ञी, युवराज और राजकुमारी मेरी यह सब एक लेंडो गाड़ी में बैठ बकिङ्घम प्रासाद से विक्टोरिया रेल-स्टेशन में पहुँचे। गाड़ी के आगे और पीछे ख़ास गार्ड रिसाला था। राह में दर्शकों की भीड़

सम्राट् को देख दर्शक-मण्डली गगन-भेदी स्वर से ...रही थी। विक्टोरिया स्टेशन में कोई तीन सौ ...पुरुष सम्राट् को विदा करने के लिये एकत्र थे। ... के प्राय सभी स्त्री-पुरुष, देश देश के राज- ... के प्रधान मन्त्री, सस्त्रीक आस्कुइथ साहब, ... के सदस्य, कण्टरबरी के प्रधान धर्म-याजक, ... उपनिवेशों के प्रतिनिधि और इण्डिया आफिस ... थे। प्लेटफारम के सामने बेण्ड बाजे के साथ ... सैन्य-पंक्ति खड़ी थी। सम्राट् के प्लेटफारम ... ही बेण्डबाजा जातीय गीत गाने लगा। स्पेशल ... से लगी खड़ी थी। सम्राट् ने इसमें बैठ ... तक विभिन्न लोगों से बातचीत की। अन्त में ... से विदा हुए। ट्रेन सीटी दे प्लेटफारम से ... बाजा—'भगवान राजा की रक्षा करें' गीत गाने

...ह में अगवानी—इसी ११ वीं नवम्बर को यथा ... की स्पेशल ट्रेन साउथम्पटन के पोर्टस्मथ बन्दर में ... के रेल स्टेशन में जल और स्थल की फौजें ... खड़ी थीं। जैसे ही सम्राट् ट्रेन से उतरे, वैसे ही ... स्वागतसूचक राग अलापने लगा। दूसरी ओर ... तथा आईल आफ वाइटशियर के प्रमुख बड़े ... तथा जल सैन्य के अफसरों ने सम्राट् की ... स्टेशन से निकल आसन्नहित जहाज 'मदीना' ... सवार हुए। सम्राट् के आने के उपलक्ष में बन्दर ... जहाज झण्डा तथा पताकाओं से सुसज्जित ... जैसे ही सम्राट् ने 'मदीना' जहाज में पैर रक्खा

वैसे ही इङ्गलैण्ड के गौरवरूप जीर्ण शीर्ण 'विक्टरी' जहाज से शाही ध्वजा उतरी और 'मदीना' जहाज पर चढ गई। सलामी की तोपें फैर हुईं।

विदा—सम्राट् 'मदीना' जहाज में पहुँचते ही उसके भोजनागार में यथास्थान विदा भोजन चुना गया। सम्राट् माता अलकजेन्ड्रा, युवराज राजकुमारी मॉड, राजकुमारी विक्टोरिया प्रभृति राजपरिवार के जो स्त्री पुरुष सम्राट् को विदा करने के लिये उनके साथ यहाँ तक आये थे, उनके साथ सम्राट् भोजन करने बैठे। भोजनोपरान्त समहिषीक सम्राट् ने इन लोगों से विदा ली, यह लोग किनारे पहुँचे, 'मदीना' जहाज ने भारत यात्रा का लगर उठाया। जैसे ही 'मदीना' अपनी जगह से हिला, वैसे ही वन्दर में खडे बहुसंख्य जहाजों से सलामियाँ दगने लगी। धीरे धीरे 'मदीना' बन्दर से निकलने और खुले समुद्र की ओर अग्रसर होने लगा। उस समय घनमेघ से आच्छादित आकाश से मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। प्रचण्ड वायु वह रही थी। किन्तु वृष्टि और तूफान की कोई परवाह न कर सहस्र सहस्र दर्शक सागर तट पर खडे हो अपने राजा की विदाई देख रहे थे। राजपरिवार के जो लोग 'मदीना' से उतर किनारे पहुँचे थे, वह सम्राट् को लक्ष्य कर प्रेमनिदर्शक रुमाल वारवार हिला रहे थे। ऐसे समय एक घटना हुई। एक नाव खींचने वाला स्टीमर अपने लगर से जुदा हो और लंगरों में पड 'मदीना' जहाज से टकराने चला। यदि कहीं टक्कर होती तो 'मदीना' क्षतिग्रस्त होता किन्तु 'मदीना' के कप्तान ने उसे घुमा कर बहुत कुछ बचा लिया। इसके उपरान्त यह निर्विघ्न बन्दर से निकल खुले समुद्र में

जङ्गी-जहाज 'मदीना' के साथ हुए। 'मदीना' को देखती रही । [illegible] [illegible] हो ऊपर के आकाश और नीचे के [illegible] के लाजवर्दी परदे में छिप गया। सामने इंगलैण्ड तक रक्षक जहाजी बेड़ा 'मदीना' । इंगलिश चैनेल में दूर तक यह बेड़ा [illegible]-अस्त में वह भी लौट गया। 'मदीना' अपने के बीच सागर-वक्ष विदीर्ण करता भारत की द्रुत गति से चला ।

हिन्दी बंगवासी ।

२ रेल का सफ़र (A journey by Rail)

मैं काशी स्नान का बड़ा भारी माहात्म्य है—का पक्का विश्वास है । यह विचार हमारे [illegible] के मस्तिष्क में भी चक्कर मार रहा था। [illegible] [illegible] ऊधम मचाने और बार बार [illegible] मैं भी भीड़भड़क्के में पेट [illegible] के भय से [illegible] जो मनसूबा बाँधे हुए था, उससे विचलित हुआ। [illegible] ग्रहण का अब केवल एक रोज बाकी रह गया। [illegible] [illegible] से दस बजे की ट्रेन से [illegible] में ग्रहण के समय पहुँचना असम्भव था। रेलवे [illegible] का समय बहुत कम रह गया। [illegible] का बहुत सामान छूट गया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्टेशन पर पहुँचे। [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

मेरे मित्र यह दशा देख दौड़े २ इन्टर क्लास का टिकट ले आये। मैंने इन्टर का टिकट देखकर कहा कि क्यों मुफ्त पैसे खर्च किये। आगे चल कर सब क्लास बराबर हो जावेंगे क्योंकि ग्रहण का मेला है। लोग कहने से न मानेंगे और आप भी उन्हें रोक न सकेंगे। अस्तु, यों बात-चीत होती ही थी कि घन घन करके घंटी बजी। गाड़ी आ चली। सब लोग सजग हो गये। देखते २ गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। हम लोग उसमें यथास्थान बैठ गये।

लगभग १५ मिनट के बाद गाड़ी खुली। हम लोग उत्तर ओर हाईकोर्ट, सेक्रेट्रियेट और अफसरों तथा राजकर्मचारियों के विशाल भवनों को देखते हुए चले। कुछ देर में दानापुर पहुँचे। यह ई० आई० आर० का एक प्रधान स्टेशन है। वहाँ कुछ देर गाड़ी ठहरी। एँजिन बदली गयी। इतनी देर में हम लोग प्लेटफार्म पर टहलते रहे। सीटी देने पर फिर चढ़े। बाद नेवरा स्टेशन मिला। यहीं इमामब्रदर्स रहते हैं, जिनकी प्रसिद्धि सर्वत्र है। इनमें एक बड़े लाट के लो मेम्बर रह चुके हैं। और भी यहाँ के कई मुसलमान सुप्रसिद्ध जज और बैरिष्टर हैं। आगे दो तीन स्टेशनों के बाद कोइल वर का पुल मिला जिसके जोड़ का अब तक पुल यहाँ नह सुना है। नीचे आदमी जा आ रहे थे और उनके ऊपर ह लोगों की गाड़ी दनदनाती चली जा रही थी। जिस बग से गाड़ी जा रही थी उस ओर नीचे बालू पर छोटे छोटे लड़ बड़ी तेजी से ऊपर हाथ उठा कर पैसा माँगते हुए दौड़ र थे। उनका दौड़ना, पैसा माँगना, फिर बालू में पैसा ढूँढ़न एक मनोरंजक दृश्य था। दो स्टेशन के बाद आरा पहुँचे। य से, आरा-सहसराम लाइट रेलवे के नाम से, एक छोटी ला

[illegible]सराम तक गई है । आरे से डुमराँव राजधानी के स्टेशन होते हुए बक्सर पहुँचे । यहीं पर राम ने ताड़िका नाम की राक्षसी को मारकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी । यहाँ का चरित्र वन और किला सुदर्शनीय हैं ।

अब तक हमारी मित्रमण्डली में गप शप और कभी कभी नाना तरह की मनोरंजक कहानियाँ हो रही थीं । कभी कभी खिड़की के बाहर सिर निकाल दोनों ओर के मनःप्राण-हारी शस्य-पूर्ण खेतों की हरियाली की ही बहार देख रहे थे कभी चरवाहों तथा अन्यान्य पथिकों के साथ कौतुक किया करते थे । अब यहाँ से एक दूसरा ही रङ्ग पकड़ने लगा और मनोरञ्जन का एक नया ही सामान मिला ।

स्टेशन जब पहुँचे तो झुण्ड के झुण्ड आदमी गाड़ी की ओर झुक पड़े । जहाँ जिसको जगह मिली चढ़ गये । ज्यों ही किवाड़ खुला कि लोग भहरा गये । यहाँ तो किसी तरह ठेला-ठेली करते चढ़े पर उसके बाद जो मगहर पहुँचे तो वहाँ इससे भी अधिक भीड़ दीख पड़ी । गाड़ी प्लेटफार्म पर लगते ही स्टेशन का फाटक खुला और हजारों लोग एक साथ गाड़ी की ओर टूट पड़े । जिन लोगों को कहीं जगह न मिली उन्होंने ज्योंही किवाड़ खोला त्योंही उनमें लटकते लटकते कुछ लोग [illegible] बैठे हुए यात्रियों के [illegible] ऊपर [illegible] बैठने लगे । जिनको जगह न थी वे [illegible] ही [illegible] । किसी प्रकार [illegible] के बाहर [illegible] । कहीं [illegible] न रही । इस प्रकार होने पर भी कुछ लोग [illegible] स्टेशन के [illegible] कर [illegible] । [illegible] और [illegible] यात्रियों की [illegible]

१६जनवरी १६१७ साल की है। जहाँ विस्फोरक चीजें शोधी जाती है, वहाँ से किसी चीज के भडकने की डरावनी आवाज हुई। कारखाने के कितने ही कारीगर भाग निकले। समस्त विस्फोरक पदार्थों के सहित सारा कारखाना नष्ट हो गया। कोई ६६ मील तक विस्फोरक पदार्थों के भडकने की आवाज सुनाई दी थी। कारखाने के आसपास के मकानों की तीन कतारें एकबारगी ही नष्ट हो गईं तथा उनकी अन्यान्य सम्पत्तियाँ बहुत कुछ चौपट हो गई हैं। कारखाने के प्रधान रसायनज्ञ और कितने ही कारीगर काल के गाल में चले गये। कहते हैं कि जितने आदमियों के मरने की आशङ्का की गई थी, आनन्द की बात है कि उतने नहीं मरे। ३०।४० लाशें बाहर निकाली गई हैं और कोई एक सौ आदमी बेतरह जखमी हैं। कहते हैं, कि ऐसा विस्फोरण यहाँ कभी नहीं हुआ था। इस भडकन से दुःखित और प्रपीडित लोगों के लिये चन्दा हुआ है और वह सर्वसाधारण में बाँटा जा रहा है। गोला गोली विभाग के मन्त्री ने भी सहायता देने का प्रबन्ध किया हैं। दयालु सम्राट् पञ्चम जार्ज ने बडे आग्रह से इस दुर्घटना की दो बार पूछताछ की है।

घटनास्थल की अवस्था बडी ही शोचनीय है। जिसमें आग और अधिक न बढ़े, इसके लिये कई मकान तोड़ डाले गये। जलते हुए मकानों से जिस समय महिलाएँ और बाल बच्चे निकाले जा रहे थे, उस समय का दृश्य हृदयविदारक और वर्णनातीत था। कितने ही अर्द्धदग्ध, कितने ही हताश और कितने ही निर्वाक होने पर भी जीवित थे। विस्फोरक चीजें जितना जोर दिखा रही थीं,-उनका प्रमाण सिर्फ इसी बात से मिल सकता है कि तीन-चार टन का एक बायलर चार सौ गज दूर

पड़ा था। एक ट्रेन का बायलर एक मोची की दूकान पर आ गिरा था। इस दूकान के सब आदमी तुरन्त मर गये। घटनास्थल देखने से जान पड़ता है, मानों किसी भूकम्प ने इस स्थान को उलट पुलट दिया हो। घटनास्थल के निकटस्थ मकानों का उतना नुकसान नहीं हुआ है जितना दूर के मकानों का हुआ है। लण्डन के बीच के अनेक मकानों के शीशे टूट फूट गये हैं।

गत २० जनवरी को अस्पताल में २१ जख्मियों ने प्राण-त्याग किया। फलतः पचास साठ आदमी अब तक मरे कहे जाते हैं। ११२ आदमी बेतरह जख्मी बताये जाते हैं। इसके सिवा २६५ आदमी थोड़े जख्मी हुए थे। वे आराम हो गये हैं।

एक प्रत्यक्षदर्शी ने कहा है कि, आग लगने के समय कारखाने में बहुत थोड़े आदमी थे। और सड़कों के किनारे एक भी मकान नहीं। टूटे फूटे मकानों के नीचे से जख्मियों का निकलना बड़ा मुश्किल हो गया था। सब जगह पुलिस, फौज और वालण्टियर नियुक्त किये गये हैं।

यह दुर्घटना क्योंकर हुई, इसका पता लगाना मुश्किल है, पर दियासलाई जलाने के अपराध में कई कारीगर पकड़ गये हैं।

—पाटलिपुत्र (२३-१-१९१७)

३-रेलवे-दुर्घटना। (Railway Accident)

संसार में जितनी वस्तुएं हैं कोई भी सर्वथा निर्गुण या निर्दोष नहीं है। रेलगाड़ी में भी गुण-दोष दोनों भरे हुए हैं। इसके द्वारा द्रव्य तथा समय का बचाव, सुभीते से तीर्थादि दर्शन, दुर्भिक्ष में भी देशान्तर से अन्न-प्राप्ति, व्यापारोन्नति आदि इसके जैसे गुण हैं वैसे इससे अनेक हानियां भी हैं।

जब कभी स्टेशनमास्टर या ड्राइवर की भूल से उक्त गाड़ियाँ आपस में लड़ जाती हैं या लाईन से उतर जाती हैं तो बहुत लोग घायल होते और मरते हैं। यद्यपि इसके तीसरे दर्जे के यात्रियों को समय समय पर बहुतेरे कष्ट झेलने पड़ते हैं, पर गाड़ियों के लड़ने से जो भयानक कष्ट लोगों को होता है उसका वर्णन थोड़े में नहीं किया जा सकता।

सन् १९०३ ई० के आषाढ़ में B N W. R के सोनपुर और धनवारबक स्टेशनों के बीच में दस बजे रात को ऐसी दुर्घटना घटित हुई थी। मैं गोल्डिनगंज से एक कुटुम्ब की बरात करके लौटा आ रहा था। वह ट्रेन वहाँ से आठ बजे रात को खुली थी। उस दिन कई एक दस्त हो जाने से मैं पहले ही से सुस्त था। गाड़ी में कुछ भीड़ न रहने के कारण मैं अपने बेंच पर लेट गया। उसमें एक दिहाती सिपाही—"जेठ बइसखवा के तलफो भुँभुरिया रे छयेलवा" इत्यादि गा रहा था। कर्कश होने पर भी कानों में उसकी मधुरता टपक रही थी और मुझे झपकी सी आ रही थी। इतने में अचानक सीटियाँ सुनाई देने लगीं। गाड़ी अभी सोनपुर नहीं पहुँची थी। यात्री सीटियों का कारण तजवीज करने और झाँकने लगे। एक मालगाड़ी पूरब से भी आती देखी गई। अब तो सबके देवता कूच कर गये। सबके हृदय में हड़कम्प समा गया। काटो तो खून नहीं। सब लोग जीवन से हाथ धो बैठे। मालगाड़ी तो रुक गई पर यह पसिंजर ट्रेन नहीं रुकी। उसका ड्राइवर उतर भागा पर इसका नहीं गाड़ियाँ लड़ने लगीं। मुझे नींद आ गई थी। पहला धक्का बड़े जोर से लगते ही मैं मूर्छित हो गया। बाद की सुध नहीं कि कैसे २ क्या २ हुआ।

गाड़ियों की तीन टुकड़ें हुईं। आगे वाली [illegible]
मुसाफिर चूर-चूर, बीच वाली गाड़ियाँ [illegible]
घायल और पीछे वाली गाड़ियाँ साबुत बच गयीं। पीछे
के मुसाफिर तो निकल भागे। बीच के पीछे [illegible] में भागे,
कराहने तथा चलने और साथियों को उठा[illegible]।

कुछ देर में मेरी मूर्छा हटी। मुझे पहले नहीं मालूम था कि मैं घायल हूँ। धीरे धीरे सिर फूला हुआ, उस पर सूज, हुई, पहली पसलियों में असह्य वेदना [illegible] क्षत-विक्षत देख विस्मय हुआ कि मैं घायल हुआ [illegible] गाड़ी कट गयी है। देखूँ तो भीतर की [illegible] नहीं। ऊपर पड़ी हुई टूटी गाड़ियों की श्रेणी उस धुँध-भरी दृष्टि से वैद्यनाथ जी की पहाड़ियाँ जान पड़ती। फिर मैं उन्हीं भग्न टुकड़ों को टटोलता हुआ ऊपर और नीचे उतरा। [illegible] भीतर गाड़ी ही में पड़ा। स्टेशन का कहीं पता नहीं चला। [illegible] नसों में वेदनाएँ बढ़ गयी। मैं एक किनारे [illegible] पर पड़ गया। फिर सभी घायल वहाँ जमा होने लगे। 'मुझको न बचाओ' 'हाय रे' 'बाप रे' की धुन मच गयी। [illegible] भाग्यवाली लोग घायलों को बाहर निकालने लगे। किसी [illegible] की कमर टूटी थी किसीकी टाँग। किसीका सिर फूटा था और किसीकी चोट ही भारी थी। मेरा सिर फूटा था। मैं [illegible] पड़ी थी। सर्वत्र क्षत-विक्षत थे। [illegible] पड़ी हुई थी, और कितने [illegible] हो रहे थे।

कुछ देर के बाद जौनपुर से डाक्टर, पुलिस, सिपाही, आ पहुँचे। जिसने [illegible] किया हुआ

और कितने चिकित्सित हुए। ३५ आदमी मुजफ्फरपुर अस्पताल भेजने को मालगाडी में लादे गये। उन्हींमें मैं भी था। लादने वाले कुली और सिपाहियों की निर्दयता मत पूछिये। वे ही प्रत्यक्ष यमदूत कहे जा सकते हैं। उन लोलुपों की उस समय बन पड़ी।* वे लगे गठरियाँ और गहने बटोरने और ठेल ठेल के मरीजों को माल गाडी में कसने।

मैं उस साल बांकीपुर के बि० एन० का० स्कूल और पटना सीटी स्कूल में भी हेड पण्डित था। इस नाते से मुजफ्फरपुर—जिला स्कूल के राइटर आदि से बहुत सहायता मिली। उन्होंने मेरे घर पर तार भी भेज दिया। बाबू केशवलाल सरिश्तेदार ने भी बहुत ही कृपा की थी। पर अस्पताल के नौकर, कम्पाउंडर और मेहतर बिना कुछ पूजा पाये तो सीधा बोलने वाले ही नहीं, बल्कि यमदूत से दुःखदायक हो रहे थे। पीछे मेरे भाई गये। एक सप्ताह रह कर खटोली पर मुझे लाद एजेंट से भाडा माफ करा घर लाये।

सारांश यह कि रेल गाडी आराम भी देती और कभी खतरनाक भी है। स्टेशनों तथा अस्पतालों में यदि कुछ लोग स्वयसेवक हुआ करते तो दीन जनों को बहुत कुछ सहायता मिलती और देश का भला होता। पर यह, जब तक नहीं है तब तक जहां कहां यमयातना सहना निर्धनों को बदा है। परमेश्वर दीन यात्रियों की रक्षा करें।

काव्यतीर्थ पं० शिवप्रसाद पाण्डेय।

* 'प्रश्न—तूफान, गर्मी की छुट्टी, दिल्ली दरबार, युद्ध और दरबार पर एक एक लेख लिखो।

तृतीय पाठ—कथा, कहानी आदि ।

(Tales, fables etc.)

कथा (Tale)

१—राजा दिलीप की गो-सेवा ।

भोर होते ही रानी ने गऊ का पूजन किया राजा चराने के लिये वन को ले गया थोड़ी दूर तक रानी भी पीछे २ गई जैसे गुरु ने कहा था वैसे ही दिलीप दिन भर नन्दिनी चराता रहा साँझ हुए आश्रम में लाया आगे बढ़ बहू ने गऊ का माथा पूजा इस भाँति सेवा करते २ राजा रानी को २१ दिन बीत गये बाईसवें दिन गऊ चरती २ एक पहाड़ की गुफा के द्वार पर चली गई राजा की आँख कुछ लग चली थी कि नन्दिनी नाहर ने पकड़ी उसका डकराना सुन कर दिलीप की दृष्टि उधर गई देखता क्या है कि गऊ के ऊपर नाहर बैठा है उस दुष्ट के मारने को राजा ने निषंग (तरकस) से बाण निकालना चाहा सो न निकला हाथ चिपट कर रह गया तब सिंह हंस कर बोला हे राजा शिवजी की कृपा से तुम्हारा हथियार मेरे ऊपर न चलेगा तुम लाज छोड़ कर अपने घर जाओ मैं जंगल का नाहर नहीं हूं महादेव का सेवक हूं कुम्भोदर मेरा नाम है यह जो देवदारु का पेड़ सामने दिखाई देता है पार्वती जी के हाथ का सींचा है और उनको प्यारा लगता है एक दिन बन के हाथी ने खुजला कर इसकी छाल रगड़ डाली तब गौरी को इतना ही शोक हुआ जितना देव दानवों की लड़ाई में कार्तिक के घायल होने से हुआ था उसी दिन से

वन के हाथियों को डराने के लिये मुझे शिवजी ने यहाँ सिंह बना कर बिठा दिया है और यह आज्ञा दी है कि जो पशु आप से आप तेरे पास आ जाय उसे खा लेना भक्षन ढूँढने कहीं मत जाना सो आज परमेश्वर की भेजी यह गाय मेरे पास आ गई है मैं इसे खाऊँगा तुम क्यों रोकते हो। राजा ने उत्तर दिया कि यह गुरु की गाय है इसका छोटा बछड़ा घर बधा है इसे मैं अपने जीते जी विनाश कराकर गुरु के सामने किस मुँह से जाऊँगा हे सिंह मेरे ऊपर कृपा करके तू इसे छोड दे मुझे खा ले सिंह ने कहा राजा तू मूर्ख है छोटी बात पर प्राण देता है तू जीता रहेगा तो प्रजा की रक्षा करेगा यह गाय क्या कर लेगी और जब तेरे बस की बात नहीं है तो तुझे कुछ अपजस भी न लगेगा फिर राजा के हठ करने पर नाहर ने कहा अच्छा जो यही तेरे मन में है तो बैठ मैं तुझे खा लूं गाय को छोड दूँ राजा सिर झुका कर बैठ गया और मन में कहता था कि नाहर अब मेरे ऊपर आता है परन्तु ऐसा न हुआ आकाश से फूल बरसने लगे सिर उठा कर देखे तो नाहर नहीं है अकेली गाय खडी है गाय ने कहा हे राजा तेरी भक्ति देखने को मैने यह माया रची थी मै तुझसे प्रसन्न हुई तू पत्ते में लेकर मेरा दूध पी ले इस से तेरे सन्तान होगी आश्रम में जाकर राजा ने यह वृत्तान्त गुरु से कहा और उनकी आज्ञा पाकर यज्ञ से बचा हुआ नन्दिनी का दूध पिया फिर गुरु को गुरु माता को और गऊ को दण्डवत करके रानी सहित अपने घर गया। रानी को गर्भ रहा। दसवें महीने रानी ने पुत्र जना। उसका नाम राजा ने रघु रक्खा।

—राजा लक्ष्मणसिंह

गल्प या उपाख्यान (A Story)

२—चाकी पैचाक।

"हाय रे नसीब ! इस बुढ़ापे में यह विपत पर विपत। जोड़ जोड़ मरी दो वर्ष का बच्चा मेरी जान को आफत छोड़ गयी। ऊपर से यह तीन साला अकाल ! बाप रे बाप ! ऐसी आफत ज़िन्दगी में सहने की कौन बात कभी कान से सुनी भी नहीं थी। कहाँ बाप दादा का जमाना था रुपये मन चावल खाते थे तो महीने भर खानदान खाता था। एक कमाने वाला रहने से घर भर पलता था आज यह दिन आया कि हम अकेले अपना पेट भी नहीं भर सकते। पसार साल के अकाल में तो नदी बनी थी। जहाँ मन में हाय हाय थी वहाँ खुदा के फजल से हम दोनों जून दाल भात चखते थे लेकिन परमात्मा तो दाना दिन में एक बार भी भर पेट नहीं मिलता था। बच्चे को नमक चटाकर खिलाने गये। लेकिन इस [illegible] नहीं सहा जाता। बच्चा तक बैठ जाता। भला अपना पेट तो हमीं [illegible] भर पानी पीकर भर लेता हूँ लेकिन इस बच्चे को भी भगवान ने न जाने किस करम कमाई से [illegible] घर में उपास करने के लिये पैदा किया है।"

[illegible] अब्दु मियाँ अपने [illegible] में [illegible] के [illegible] [illegible] था कि दो [illegible] का बच्चा [illegible] "[illegible]" [illegible] उठा। तब उन्होंने कहा—"बाबा चुप।" कहते [illegible] अब्दु मियाँ की छाती फटने लगी। [illegible] आँसू आया था। [illegible] में एक [illegible] पर [illegible] मियाँ [illegible] भी [illegible] आँसू आया था। [illegible] को [illegible] [illegible] ही में [illegible] [illegible] लगा।

इस साल यह तीसरा अकाल है लेकिन झब्बू का यह दो बीघा खेत बिलकुल खलार (गहरे) में है। उतरते कुआर में जो पानी थोडा सा बरस गया था वह अभी तक नहीं सूखा है। आस पास के सभी खेतों के धान मुआर हो जाने पर भी झब्बू का खेत लहलहा रहा है।

कमर भर के ऊँचे खडे धान जब हवा के झोंको से लहराते और बल खाते हुए झुक झुक कर फिर उठते हैं तब सुन्दरता मानों उस हरे खेत को झुक कर सलामी उतारती रहती है। सब शोभा महुए के नीचे बैठा झब्बू अपनी आँखों देख देखकर खुश हो रहा है। कहता है—"अबकी खुदा का फजल है। यही एक महीना बच गया तो साल भर खाने को बहुत हो जायगा और बच्चे को भी पाल ले चलेंगे।

इसी तरह कातिक बीत गया। अगहन चढ़ते ही झब्बू के हरे भरे धान पर सुनहली चढ़ गयी। उसकी सुन्दर लहलहायी शोभा में झब्बू बैठा बेटे के साथ उमक चुमक कर मौज से दिन काटता था। साग पात से पेट भरता और बच्चे को कभी परचर, कभी खेखसा, कभी चेंचर खिलाता था। इस तरह सुख की नींद तभी टूटती थी जब ठुनक ठुनक पराह तोतली बोली से "बाबा! बाबा! भूक! काइब" कहता था।

लेकिन मन में झब्बू कहता था सावन भादों कुआर तीन महीने का बरखा, घाम सहकर हड्ड तोड मेहनत करके यह हरा भरा खेत देखने को मिला है। साल में यही सतरह दिन बैठे बीता है। नहीं तो जो अपने ऊपर बीता है वह हमारे ही जी जानता है लेकिन कुछ परवा नहीं। वही परवरदिगार खलक को रोजी देता है। जिसने यह सब सङ्कट सहाये हैं उसीने यह सामने साल भर के खाने को पहुँचाया है।

पास ही झब्बू एक छोटी सी किन्तु साफ़ और ऊँची जगह में नमाज पढ़ा करता था । जब नमाज पढ़ चुकता तब दोनों हाथ आकाश की ओर उठा कर कहता था—"हे अल्लाह ताला ! तू ही सबका मालिक है । यह सब तेरी बदौलत है ।" उसकी दशा देख कर कितने दया करते थे । कितने कहते थे—'बड़ा भला आदमी है । नेक नीयत रहने से भगवान् सब को एक दिन ऐसे ही देता है । कोई उसका खेत देख कर भरमुँह माटी ले उड़ता किसीकी आँख में जलते हुए का बालू पड़ता था । कितने सिहाते और कहते थे—"इसका नसीब तो कटहर के कलम से लिखा है दादा । जहाँ गाँव के खेतों में लोग मुआर (मरे हुए धान गौओं के लिये) छीलते हैं वहाँ पर यह दोनों बीघे काटने की तैयारी कर रहा है ।

देखते ही देखते झब्बू मियाँ का धान पक गया । वरददार नयी बहू की तरह धान की लम्बी लम्बी बाल घूँघट काढ़ कर धरती सावने लगीं । इस तरह धान से लदा हुआ खेत देख कर झब्बू मन में गद्गद हो गया । वही मनसूबा करने लगा कि इस साल बनवा पराह की इसी खेत से धान का मोल और बछली का दूध भरपेट दोनों जन पिला ले जायेंगे । फिर तो आने इस साल में कुल के समान हो जायगा । लोग कहते ही हैं कि पैदा नये स्याना सो दु ग नये पराना ।

झब्बू इसी तरह मन में खुशी धरती पर पड़ा हुआ शरीर की गुदगुदी का सुख भोगने की कल्पना कर रहा था कि खेत जी की मुस्काहट लिये हुए हाकिमों का पियादा आ पहुँचा । गाँव के मालिक बनारस के रहने वाले बड़े आदमी थे । समझे थे जानवरों की तरह रहने वे दिया करते हैं । उनके मुताबिक खेत जी भी एक तरह से मालिक थे । जब

पियादे ने पुकारा तब झन्नू की मानों आँखें खुलीं। उसको यह याद आया कि परसों मालगुजारी देने का दिन था। अब तो बड़ी आफत हुई।

काँपता हुआ झन्नू सिपाही के साथ छावनी पर गया। बेटे को खेत की मेंढ़ पर सोता छोड़ दिया था। वहाँ जाकर देखा तो शेख जी भचभचे का नैचा मुँह में दिये हुका सुड़सुड़ा रहे हैं। सामने जाकर धनुही के रूप में होकर झन्नू ने सलाम किया। लेकिन वहाँ सलामालैकुम किसको पड़ी है। छूटते ही शेख जी ने कहा—'क्यों रे झनुआ! परसों पीर का दिन था न। मालगुजारी इसी तरह टाल कर चाहता है कि जमा हजम कर लें और सोलहो आने खा जायें। हमारे रहते यह शरारत'।

हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ा कर दाँत काढ़कर झन्नू बोला "ना मालिक—"

बात काटकर शेख जी मानों ऊपर चढ़ बैठे। हुका छोड़ कर और पास आ गये और बोले "मालिक वालिक गये तेल हंडे में ला रुपया निकाल।"

अब तो झन्नू के दलबली चढ़ गयी। काँपता जीभ से बोला—"पैसा मोरे पास कहाँ है। महिनत से उपास करके दिन काटते काटते पीठ पेट एक हो गया है। रुपया रहता तो यह दशा काहे को होती।"

यही कह कर उसने पसली की हड्डी और पीठ दिखाई। लेकिन शेख जी का मिजाज ऊपर ही है देख कर बोला "सरकार दस दिन आप और थाम्ह दें। खुदा के फजल से अबकी जमा बाकी नहीं पड़ेगी सब चुका देंगे।

ना ना, ना ! अब मुहलत एक मिनट भर की नहीं है, ऐसा रुपया निकाल नहीं हम अभी वसूल करते हैं।

यही कह कर शेख साहब उठ गये। दो आदमियों ने पकड़ कर झब्बू को बाँध लिया। और उसको भी उनके पीछे पीछे घसीटते ले चले।

आज झब्बू को यह साल सत्तू भी नहीं मिला। लेकिन उसको यह नयी बात नहीं थी। इस कारण इसका तो कुछ दुःख नहीं हुआ किन्तु पेट का गुजारा कैसा होगा। क्या खायगा इसीकी चिन्ता में वह छटपटाने लगा।

शेख जी की पल्टन धान काटने का हुक्म हथियार लिये हुए झब्बू के खेत पर चढ़ गई। उन्होंने आप मेड़ पर खड़े होकर हुक्म दिया—काट लो धान ! इसीको बेच कर माल-गुजारी वसूल कर लेंगे।"

झब्बू भी मुरदे जैसी हालत में वहीं खड़ा था। अब रहा नहीं गया। बालक की तरह चिल्लाने लगा। परन्तु भी रोता हुआ उठा और बाबा बाबा कह कर खाना माँगने लगा।

बाप बेटे की दशा पर सबको दया आई। लेकिन शेख जी वैसे ही लोगों की तरह पत्थर मन से खड़े रहे। धान कटने लगा। झब्बू और परन्तु का रोना भी खेत, खलिहान और बाग धरती पार कर के हवा में गायब होने लगा।

इस तरह शेख जी ने झब्बू का धान काट कर मालगुजारी की बाकी वसूल कर झांसी और आस पास के वहाँ के गाँवों में भी जमा वसूल करने का इन्तजाम, प्रबन्ध, और मुकम्मिल मालगुजारी की जिम्मेदारी पाई।

बाबू मोहनलालजी (बनारसी)

३–आख्यायिका (Story)

नेपोलियन और चित्रकार।

एक बार एक चित्रकार किसी बड़े आदमी की चिट्ठी लेकर फ्रांस के राजा नेपोलियन के पास गया। नेपोलियन ने उस चित्रकार के मैले कुचैले कपड़े देख कर उसका बहुत ही कम आदर किया और उसे दूर बैठने को आसन दिया। परन्तु जब उसके साथ उसने बात चीत की तब उसे विदित हुआ कि वह बड़ा ही गुणी पुरुष है, और चित्र खींचने की विद्या में उसकी बराबरी दूसरा नहीं कर सकता। अतएव जब वह चित्रकार चलने लगा तब नेपोलियन ने स्वयं उठ कर उससे हाथ मिलाया और द्वार तक उसे पहुँचाने गया। इस प्रकार का सत्कार देख कर चित्रकार को बड़ा आश्चर्य हुआ, और उसने डरते २ राजा से पूछा कि "जब मैं आया तब तो आपने मुझे सम्मुख बैठने तक न दिया और जाते समय मुझे यहाँ तक आप पहुँचाने आये, इसका क्या कारण है?" नेपोलियन ने उत्तर दिया कि "आते समय जो आदर किया जाता है वह मनुष्यों के कपड़े लत्ते देख कर किया जाता है, परन्तु जाते समय जो आदर होता है वह उसके गुणों का विचार करके होता है।"

प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी।

उपकथा (Anecdote)

भोज और पण्डित।

एक बार दो पण्डितों ने मिल कर आधा श्लोक बनाया और पूरा करने के लिये उन लोगों ने बड़ा यत्न किया, पर न दो पद बने न श्लोक पूरा हुआ। अन्त में दोनों कालिदास के पास पहुँचे और अपना अभिप्राय प्रकट किया। कालिदास ने

हा आप अपने दोनों पदों को पढ़ें तो मैं उनको पूरा कर दूँगा। दोनों ने एक एक पद यों कहा —

भोजनं देहि राजेन्द्र घृतसूपसमन्वितम् ॥

(महाराज दाल और घी के साथ मुझे भोजन दीजिये)

कालिदास ने उस श्लोकार्ध को यों पूरा किया —

माहिषञ्च शरच्चन्द्र चन्द्रिका धवलं दधि ॥

(और, शरद समय के चन्द्रमा की चाँदनी सा स्वच्छ भैंस का दही)

वाह ! कैसा चमत्कार है ! इसने तो उस आधे श्लोक को भी अपनी चमत्कारी से चमत्कृत कर दिया। सुन कर दोनों पण्डित भी चमत्कृत हुए और रुपये मिलने की बड़ी खुशी से लम्बे पांव राजसभा में पहुँचे। उन दोनों ने बारी बारी से एक २ पद कह कर राजा को श्लोक सुनाया। राजा भोज अन्तिम दोनों पद सुन कर मुग्ध हो गये। राजा क्या सभी सहृदय इस श्लोकार्ध से मुग्ध हो जायँगे।

सुन कर राजा ने कहा, पण्डित जी ! अन्त के जो दो पद हैं उन्हीं पदों के बनाने वाले को पारितोषिक मिलेगा। अब कहिये आप दोनों में किसने अन्तिम पदों को बनाया है। दोनों विद्वान आपस में देखादेखी करने के बाद कालिदास की ओर देखने लगे। राजा तो जानते ही थे कि ये पद कालिदास के अतिरिक्त और किसी के नहीं हैं पर बाहर से पूछ बैठे कि क्या कालिदास ने इन्हें बना दिया है ?

अब दोनों के चेहरा फूल कर गये। समझा कि पारितोषिक हाथ से गया। किन्तु उन ने कहा कालिदास के साथ महाराज हमारे बनाये हुए हैं। वह सुमन तो गुलदस्ते में भी क्या महाराज इनके यहाँ हमारे बनाये हुए हैं। अब दोनों ने ... विमर्श ही कर डाला कि कालिदास नहीं। आप में एक न

इसे पूरा किया है। तो भी भोज ने उन्हें पारितोषिक देकर विदा किया। दोनों प्रसन्न हो घर आये।

प्रश्न—कोई ग्राम्य कथा, कोई गल्प, कोई किस्सा कहानी, कोई जीव घटना और कोई आख्यायिका लिखो।

चतुर्थ परिच्छेद—आविष्कार और शिल्पकला आदि।

(INVENTION ART AND MANUFACTURE)

१ वाष्पयन्त्र का आविष्कार

(The invention of the steam Engine)

भूमिका—एक विद्वान् का कहना है कि ' कल-काँटों का उत्तरोत्तर आविष्कार, व्यवहार और प्रचार ही सभ्यता की निशानी है। " यह बात सर्वांश में सत्य है। क्योंकि जिस जाति में कल पुर्जों के द्वारा मानुषिक श्रम में लाघव कर अधिकाधिक काम लिया जाता है उस जाति में सब साधन सुलभ होकर अत्यन्त श्रेय साधन करते हैं। देखने में भी आता है कि जहाँ कल की कला खूब विकसित हुई है वह देश सभ्य समझा जाता है। आजकल जितने यन्त्र आविष्कृत हुए हैं वे सभी वाष्प-बल से चलते हैं। इसी कारण वे सब वाष्पयन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इतिहास—वाष्प के सम्बन्ध में सब से पहले मार्किस आफ श्रर्वेस्टर को कौतूहल हुआ। वे एक उत्तप्त-जल-पूर्ण पात्र से निकलते हुए अद्भुत-शक्ति-शाली वाष्प की ओर दत्त-दृष्टि हुए और वाष्प-शक्ति के सम्बन्ध में छानवीन करने लगे। बाद स्टेमेन्सन साहेब ने वाष्प-शक्ति के सम्बन्ध में नूतन आविष्कार किया और एक वाष्प-यन्त्र बनाया। पर सर जेम्सवाट् ने इस वाष्प-यन्त्र का प्रकृत उद्भावन किया और उसकी उन्नति की।

सर जेम्सवाट् लड़कपन से ही अल्हड़ थे। उनकी शिक्षा कम हुई पर वे थे बड़े तीक्ष्ण बुद्धि। माता ने उन्हें थोड़ी बहुत कुछ शिक्षा दी। एक दिन वे घर में बैठे थे। डेगची आग पर चढ़ी हुई थी। उसमें कुछ उबाला जाता था। डेगची का ढकन भीतर के बाष्प से ऊपर उठ उठ कर ढक ढक कर रहा था। उसकी ओर वाट की दृष्टि गयी। उन्होंने खूब उसे गौर से देखा। उन्होंने चमचा, कटोरा वगैरह ले ले कर डेगची पर रक्खा और उतारा और घंटों उस पर सोच विचार किया। यहीं इन्होंने बाष्प यन्त्र निर्माण करने और उसकी शक्ति को प्रयोग में लाने का एक प्रकार से पूरा २ उद्भावन कर लिया।

इन दिनों बड़े २ विचारवालों के मस्तिष्क में एञ्जिन बनाने का विचार चक्कर मार रहा था। एक दिन न्यूकमन साहब के बाष्प एञ्जिन का नमूना इन्होंने देखा। इस नमूने ने वाट की आँखें खोल दीं और उन्होंने अपने पूर्वानुभूत बाष्प शक्ति का उद्भावन कर एक अच्छी स्टीम एञ्जिन बना डाली। बाद बरमिंघम आकर बालटन साहब के एक कारखाने में शामिल हो गये और बड़ी एञ्जिन बनायी। यह एञ्जिन बड़ी उपयोगिनी सिद्ध हुई और सभी व्यापारी इसीको काम में लाने लगे। वाट ने लगातार वर्षों के विचार और मनन करके एञ्जिन-सम्बन्धी सार २ के सुधार कर उसे सर्वोपयोगी बना डाला।

कहना नहीं होगा कि वाष्पीय यन्त्र से कितने यन्त्रों को आया प्रकट नहीं है। आधुनिक जितने यन्त्र हैं, सब बाष्प शक्ति के बल से चलते हैं। पृथ्वी पर रेलगाड़ी और जल में जहाज लाखों मन के भार अनवरत स्थानान्तर इधर उधर पहुँचा रहे हैं और अहर्निश रात दिन में से काम देते हैं। इनके बल से हजारों आदमी के काम थोड़े ही आदमी किया

कर करते हैं। वर्ष भर का काम एक दिन में हो जाता है। मनुष्यों की सब प्रकार की सुख-सुविधायें हो गयी हैं। अनेक प्रकार के असम्भव कार्य वाष्प-यन्त्र से सम्पन्न होकर मनुष्य समाज का उपकार कर रहे हैं। कपडा बुनना, तेल पेरना, पुस्तक छापना, लोहा ढालना, सूत कातना, न जाने ऐसे कितने मानवोपकारी सामान वाष्पयन्त्र से नित २ नये रूप में बनते और बिकते हैं। इन सब बातों को देखकर यही कहना पड़ता है कि वर्तमान समय में सकलविषयोपयोगी इस वाष्पयंत्र ने जडजगत् में अद्भुत परिवर्तन कर प्रकृति का एक बडा भारी रहस्योद्घाटन कर दिया है। धन्य री मानवी बुद्धि!

कागज बनाने की रीति—(The Manufacture of Paper)

भूमिका—मनुष्य पहले लिखने पढने के काम में पत्तों ही का व्यवहार करते थे, इससे कागज को अब भी दल, पत्र आदि कहा करते हैं। पत्तों में ताल पत्र ही का अधिक व्यवहार था। क्रमश पत्तों के अतिरिक्त पेडों के छाल को भी लोग लिखने के काम में लाने लगे। इनमें भूर्जपत्र ही विशेष प्रसिद्ध है। अब भी इसे उत्तम समझ कर इसपर लोग यन्त्र लिखा करते हैं। इनके अलावे ताम्रपत्र और प्रस्तरखण्ड पर भी लिखने का काम होता था।

इतिहास—संस्कृत ग्रन्थों में कागज का उल्लेख है, पर इस देश में वह कब से प्रचलित हुआ, ठीक २ कहा नहीं जा सकता। ईसा की पहली शताब्दी में चीन में पहले कागज की तैयारी हुई। वहीं से इस देश में इसका प्रचार हुआ। तभी से कागज के सम्बन्ध में क्रमश कुछ २ उन्नति होती रही। १०वीं शताब्दी में टारटरी, अरेबिया, ईजिप्ट, स्पेन आदि देशों में क्रमश कागज बनाने की प्रक्रिया ज्ञात हुई। यूरोप में सब से

[illegible] बढ़िया कागज रोम के बादशाह द्वितीय फ्रेडरिक के [illegible] में बना और फिर यूरोप भर में उसकी कला फैल गई। [illegible]१५ में इस कला का इंग्लैंड में प्रचार हुआ। अंग्रेजों ने [illegible] कला फ्रांस वालों से सीखी।

बनावट — इस देश में कागज पहले साधारण रूप से प्रस्तुत [illegible]ता था। अरबलिया और काशीयाल कागज उस समय में [ब]हुत प्रसिद्ध थे और इनकी कदर भी बहुत थी। पर यूरोप में [इ]स काल से बढ़िया, चिकना, हल्का, मोटा, पतला आदि रूप में अनेक तरह के कागज बनते हैं। भारत में भी कई जगह कागज बनता है और इसकी मिलें स्थापित हो गई हैं। सिराम-पुर टीटागढ़, बंगाल और लखनऊ आदि की मिलें प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों में काम लायक कागज बहुत बन जाता है।

बनाने के प्रकार —[illegible]ुआ, सन, घास, पात, बगड़ा लता [illegible] कल की सहायता से [illegible] पहले खूब साफ करते हैं और [illegible] चूर्ण [illegible] बना [illegible] है। फिर [illegible] धूप [illegible] पर [illegible] चूर्ण [illegible] और उसमें से [illegible] पानी [illegible] उस चूर्ण को [illegible] बनाते हैं [illegible] में डाल देते हैं। उसके [illegible] २ [illegible] जिसमें [illegible] निकल [illegible] खूब [illegible] से [illegible] हैं। फिर [illegible] जाता है और [illegible] २ सुखा [illegible] है। [illegible] सुखाते हैं। इस प्रकार कागज [illegible] बाद [illegible] जाता है [illegible] देते हैं। यदि [illegible] कागज बनाना [illegible] देते हैं और [illegible] होता है जो [illegible] में [illegible] हो जाता है। कागज बनाने [illegible] होता है [illegible] में [illegible] २ [illegible] का भी उपयोग होता है [illegible] होता है।

अब तो कागज एक प्रकार के काठ के टुकड़े से भी बनता है। उसके बनाने में कुछ कठिनता नहीं है। सभी काम मेशीनों ही से होते हैं। बना हुआ मॉड सा पदार्थ नल से एक ओर मेशीन में डाला जाता है और दूसरी ओर कागज निकला करता है। मेशीन के भीतर बेलन ही कागज के पदार्थों को दबाते, बढ़ाते, बेलते, रगड़ते, घोंटते हैं और कागज के बहुत लम्बे २ थान तैयार कर देते हैं।

कागज के प्रकार—कागज आकार-प्रकार से अनेक रंग ढंग के होते हैं। हलका से हलका, भारी से भारी, चिकना से चिकना और रुखड़े से रुखड़ा कागज बनता है। मोटा से मोटा होने पर भी हलका और चिकना से चिकना और पुष्ट होने पर भी पतला कागज तैयार किया जाता है। दुरंगा भी कागज होता है। खास २ काम के लिये खास २ कागज भी बनता है।

उपसंहार—यदि कागज की सृष्टि न हुई होती तो न सभ्यता की इतनी वृद्धि होती और न विद्या, बुद्धि तथा ज्ञान विज्ञान का साधन ही सुलभ होता।

मुद्रणकला (The Art of Printing)

भूमिका—मुद्रण-यन्त्र का आविष्कार आजकल के प्रचलित सभी शिल्प यन्त्रों से बढ़कर है। इस सामयिक आविष्कार ने मनुष्य-समाज का जो हित-साधन किया है वह अवर्णनीय है। मुद्रण-यन्त्र का हमारे देश में खूब प्रचार है। कोई ऐसा शहर नहीं जहाँ अनेकानेक मुद्रायन्त्र स्थापित न हों। मुद्रायन्त्र के समान महोपकारी और कोई शिल्प-यन्त्र नहीं है।

इतिहास—सबसे पहले एसीरिया और बेबीलोन में ईंट वगैरह से छापने का कुछ काम होता था। फिर काठ के ब्लाक से छापने का काम होने लगा। बहुत पीछे धातु के

...प ढले । काठ पर टाइप खोदने का काम ईसा के ५६ ... पहले चीन में जारी हुआ । यहाँ नवीं शताब्दी के अन्त ... काठ पर अक्षर खोद कर छापने का काम मज़े में होना ...ा । १४०० ईसवी के अन्त में यूरोप में मुद्रण कार्य आरम्भ हुआ । १४३६ से १४३८ ई० के बीच यूरोप में कैस्टर और गटिनबर्ग नामक दो व्यक्तियों ने भिन्न २ मुद्राङ्कन प्रणाली निकाली । वे एक २ काष्ठ-फलक पर बहुत से शब्द एक ही साथ खोद कर एक २ पेज छापते थे । बाद यूरोप ही में इस कला की यथार्थ उन्नति हुई ।

उन्नति—जर्मनी में १५०० ई० में इसकी उन्नति की पहले पहल चेष्टा हुई । शेफर नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति ने धातु के अक्षर ढाले और शिल्पनिपुण ह्वीनहोप ने लौहयन्त्र निर्म्माण किया । इन दोनों कामों से इसकी उन्नति हुई और पुस्तक तथा समाचारपत्रादि के विशेष प्रचार से ज्ञान का मार्ग बहुत कुछ परिष्कृत हो गया ।

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में इंगलैंड में वाष्पीय मुद्रायन्त्र प्रस्तुत हुआ और एक घंटे में २००० पृष्ठ छपने लगे । क्रमशः वाष्पीय मुद्रायन्त्र में भी उन्नति होने लगी । अब वा बिजली के यन्त्र से भी काम कहीं चल रहा है । वर्त्तमान समय में [illegible] ऐसी उन्नति हो गई है कि एक घंटे में [illegible] २५००० प्रतियाँ छपती हैं । इस [illegible] सम्बन्ध में इतना बड़ा [illegible] साथ २ [illegible] हो रहा है । छापने के साथ ही [illegible] और [illegible] कर [illegible] का काम [illegible]

जाता है, यह लोगों की देखी सुनी बात है। इसका वर्णन करना आवश्यक है।

प्राचीन कठिनाई—जब तक मुद्रणकला न थी तब तक ज्ञान प्रचार सीमाबद्ध था। उस समय हाथ ही से जो कुछ होता था, लिखा जाता था। सौ वर्ष में भी एक किसी उत्तम ग्रन्थ का प्रचार जन-समाज में कठिनता से भी न होने पाता था। उस समय किसी २ ग्रन्थ की लिखाई का निछावर दो २ हजार तक बड़े २ राजा महाराजा देते थे। उस समय लेखक थे, जिनका नाम ही हम अब सुनते हैं। वे लेखन ही का काम करते थे और उनकी जीविका का यही एक मात्र उपाय था। अब तक उनके लिखे मोती से अक्षर हमारी आँखों को तृप्त करते हैं।

लाभ—मुद्रण कला के प्रचार से विद्या, बुद्धि के प्रसार में बड़ा साहाय्य मिला है। कोई नई पुस्तक निकली कि एक मास के भीतर ही भूमण्डल भर में छप कर प्रचलित हो गयी। किसी नूतन विषय का आविष्कार या नूतन तत्व का उद्भावन हुआ कि सबके सामने, विचारार्थ छप कर प्रस्तुत हो गया। अनेकानेक संवाद पत्र जन साधारण में प्रतिदिन सब प्रकार के संवाद पहुँचा कर लोगों को सब विषयों से अभिज्ञ बनाते हैं। इस कला की बदौलत कितने ही देश जाग्रत् हुए। मनुष्यों की सुख स्वच्छन्दता का मूल कारण यही है। भूमण्डल में ज्ञान और शिक्षा विस्तार का भी यही मूल उपाय है। सचमुच इससे जगत् का जो कल्याण हुआ है वह अवर्णनीय है।

प्रश्न—वैद्युतिक तार, रेशम की तैयारी, वस्त्र निर्माण कला फोटोग्राफी, फोनोग्राफ और बायस्कोप पर एक २ लेख लिखो।

तीय अध्याय—विषयात्मक प्रबन्ध।

REFLECTIVE ESSAYS.

प्रथम परिच्छेद—गुण-विषयक प्रबन्ध।

ESSAYS ON ABSTRACT SUBJECTS.—

प्रथम पाठ—मानसिक गुण (Mental Virtues)

स्मृति-शक्ति (The Power of Memory)

हम देखते हैं कि पाठशालाओं में बहुत से विद्यार्थी साथ ही पढ़ते हैं। गुरुजी बराबर सभी को समान शिक्षा देते हैं परन्तु फल में बहुत भेद दीख पड़ता है। एक विद्यार्थी जी तोड़ कर परिश्रम करता है और एक सामान्य परिश्रम करता है। परन्तु अधिक परिश्रम करनेवाले विद्यार्थी उस सामान्य परिश्रम करनेवाले विद्यार्थी की बराबरी नहीं कर सकता है। इसका कारण क्या है? बहुत से लोग इस भेद को देख कर कहते हैं कि पूर्व जन्मों के कर्मों से विद्या प्राप्त होती है। चित्त के सन्तोष करने के लिये यह बात उपयुक्त हो सकती है, परन्तु असल बात यह नहीं है।

अध्ययन का फलाफल विशेष कर मन और मस्तिष्क की शक्तियों पर अवलम्बित है। इनमें मनोयोगशक्ति, तथा स्मृति-शक्ति आदि प्रधान हैं। इन्हीं शक्तियों के न्यूनाधिक होने के कारण फल में भी भेद होता है। इस कारण लोगों की यह धारणा, कि पूर्व जन्म के उत्तम कर्मों के फल से ही विद्या आती है—बहुत सच्ची नहीं है। क्योंकि यह विद्याभ्यास

लोगों को उपाय करने से रोकता है। पूर्व जन्म के कर्मों को उत्तम बनाना तो हमारी शक्ति के बाहर की बात है। अतएव विद्यार्थी जिनमें प्रज्ञा या स्मृति-शक्ति कम है वे निराश होकर बैठ जाते हैं और सदा के लिये पढ़ना छोड़ बैठते हैं तथा पूर्व जन्म के कर्मों के लिये भीखते हैं।

भारतीय बच्चों का यह विश्वास कि—स्मृति शक्ति परमात्मा की देन है, मैं बड़ा अभागी हूँ कि मुझमें वह शक्ति नहीं है—इस प्रकार उनका दुःख करना बड़े दुःख की बात है। जिस प्रकार शरीर की अन्य शक्तियाँ बढ़ाई जाती हैं, जिस प्रकार निर्बल मनुष्य दवा खाकर बलवान् हो जाता है, उसी प्रकार स्मृति शक्ति भी बढ़ाई जा सकती है। स्मृति शक्ति भी शरीर सम्बन्धी एक गुण है। जिस प्रकार कोई दुर्बल मनुष्य दवा खाता है जिससे उसका दुर्बल शरीर मोटा हो जाता है और साथ ही साथ वह मनुष्य बलवान् भी हो जाता है इसी प्रकार औषध प्रयोग के द्वारा मस्तिष्क के आकार में भी परिवर्तन किया जा सकता है, जिससे स्मृति शक्ति बढ़ सकती है। जिस प्रकार माता पिता की दुर्बलता और सबलता का प्रभाव बालकों पर पड़ता है उसी प्रकार उनकी स्मृति शक्ति का भी। इसी कारण किसी लड़के की स्मृति-शक्ति अच्छी और किसीकी अच्छी नहीं होती। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसकी स्मरण-शक्ति अच्छी नहीं है उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी हो ही नहीं सकती। यह ठीक है कि स्मृति-शक्ति के बढ़ाने के लिये कठिन प्रयत्न की आवश्यकता है, परन्तु वह बढ़ाई ही नहीं जा सकती, यह बात नहीं है। स्मृति-शक्ति के बढ़ाने के लिये बाल्यावस्था से ही प्रयत्न करना चाहिये, और जो लोग बाल्यावस्था में इस

शक्ति की उपेक्षा करते हैं, उनकी स्मरण-शक्ति धीरे धीरे घट जाती है।

शरीर की स्नायुओं में यथावत् संचालन होते रहने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है। यही आधुनिक शरीर-शास्त्रवेत्ताओं का कहना है। स्नायुओं का ठीक ठीक परिचालन न होने से मस्तिष्क का जितना ही भाग निर्बल अतएव अकर्मण्य हो जाता है। वह निर्बल भाग किसी भी काम के लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। इसका परिणाम बड़ा बुरा होता है। वे स्नायु भी धीरे २ निर्बल हो कर नष्ट हो जाते हैं। मानसिक दुर्बलता आ जाती है, शरीर अकर्मण्य हो जाता है; अकाल ही में भयङ्कर बुढ़ापे का दर्शन हो जाता है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि शरीर के स्नायु यथावत् परिचालित होते रहें। उनके परिचालित होने ही से शारीरिक क्षमता बनी रह सकती है। तथा वह सबल और सचेत मनुष्य सभी कामों को ठीक ठीक कर सकता है।

मर डब्लयु० एच० येमी एक बड़े भारी पण्डित हैं। इन्होंने स्मृति-शक्ति के बढ़ाने के उपाय बताये हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं। आशा है, पढ़ने वाले विद्यार्थी अवश्य ही इन से लाभ उठावेंगे।

मान लो कि तुमको एक श्लोक याद करना है। तुम इस श्लोक को बराबर कहते जाओ, जब तक वह याद न हो जाय तब तक कहते जाओ। इतने में कि वह श्लोक थोड़ी देर में याद हो जायगा। इसके बाद जब तुमको दूसरा श्लोक याद करने का आवश्यकता होगी उस समय पहला श्लोक ८ बार कहने में जितनी कठिनता हुई होगी, उससे कम कठिनता इस बार होगी। इसी प्रकार स्मरण-शक्ति बढ़ कर बलवान

लोगों को उपाय करने से रोकता है। पूर्व जन्म के कर्मों को उत्तम बनाना तो हमारी शक्ति के बाहर की बात है। अतएव विद्यार्थी जिनमें प्रज्ञा या स्मृति-शक्ति कम है वे निराश होकर बैठ जाते हैं और सदा के लिये पढना छोड बैठते हैं तथा पूर्व जन्म के कर्मों के लिये झीखते हैं।

भारतीय बच्चों का यह विश्वास कि—स्मृति शक्ति परमात्मा की देन है, मैं बडा अभागी हूँ कि मुझमें वह शक्ति नहीं है—इस प्रकार उनका दु.ख करना बडे दु ख की बात है। जिस प्रकार शरीर की अन्य शक्तियाँ बढाई जाती हैं, जिस प्रकार निर्बल मनुष्य दवा खाकर बलवान् हो जाता है, उसी प्रकार स्मृति शक्ति भी बढाई जा सकती है। स्मृति शक्ति भी शरीर सम्बन्धी एक गुण है। जिस प्रकार कोई दुर्बल मनुष्य दवा खाता है जिससे उसका दुर्बल शरीर मोटा हो जाता है और साथ ही साथ वह मनुष्य बलवान् भी हो जाता है इसी प्रकार ओषध प्रयोग के द्वारा मस्तिष्क के आकार में भी परिवर्तन किया जा सकता है, जिससे स्मृति-शक्ति बढ सकती है। जिस प्रकार माता पिता की दुर्बलता और सबलता का प्रभाव बालकों पर पडता है उसी प्रकार उनकी स्मृति-शक्ति का भी। इसी कारण किसी लडके की स्मृति शक्ति अच्छी और किसीकी अच्छी नहीं होती। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसकी स्मरण-शक्ति अच्छी नहीं है उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी हो ही नहीं सकती। यह ठीक है कि स्मृति शक्ति के बढाने के लिये कठिन प्रयत्न की आवश्यकता है, परन्तु वह बढाई ही नहीं जा सकती, यह बात नहीं है। स्मृति-शक्ति के बढ़ाने के लिये बाल्यावस्था से ही प्रयत्न करना चाहिये, और जो लोग बाल्यावस्था में इस

की उपेक्षा करते हैं, उनकी स्मरण-शक्ति धीरे धीरे घट जाती है।

शरीर की धातुओं में यथावत् संचालन होते रहने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है। यही आधुनिक शरीर-शास्त्रवेत्ताओं का कहना है। स्नायुओं का ठीक ठीक परिचालन न होने से मस्तिष्क का जितना ही भाग निर्बल अतएव अकर्मण्य हो जाता है। वह निर्बल भाग किसी भी काम के लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। इसका परिणाम बड़ा बुरा होता है। वे स्नायु भी धीरे २ निर्बल हो कर नष्ट हो जाते हैं। मानसिक दुर्बलता आ जाती है, शरीर अवसन्न हो जाता है, अकाल ही में भयङ्कर बुढ़ापे का दर्शन हो जाता है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि शरीर के स्नायु यथावत् परिचालित होते रहें। उनके परिचालित होने ही से शारीरिक कुशलता बनी रह सकती है। तथा वह सबल और सतेज मनुष्य सभी कामों को ठीक ठीक कर सकता है।

मि० डबल्यु० एच० वेगी एक बड़े भारी पण्डित हैं। इन्होंने स्मृति-शक्ति के बढ़ाने के उपाय बताये हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं। आशा है, पढ़ने वाले विद्यार्थी अवश्य ही इन से लाभ उठावेंगे।

मान लो कि तुमको एक श्लोक याद करना है। तुम उस श्लोक को बराबर पढ़ते जाओ, जब तक वह याद न हो जाय तब तक पढ़ते जाओ। देखोगे कि वह श्लोक थोड़ी देर में याद हो जायगा। इसके बाद जब तुमको और श्लोक याद करने की आवश्यकता होगी तब उतना पहले श्लोक याद करने में जितनी कठिनता हुई होगी, उसके अब बहुत कम होगी। इसी प्रकार स्मरण-शक्ति

श्रम का सुख भोग—सब प्रकार के श्रमजीवी अपनी २ सुख-लिप्सा को त्याग कर यदि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते तो संसार का कोई काम हो नहीं सकता। कृषक कृषिकर्म छोड़ दें, गोपालगण गोपालन को छोड़ दें, शिल्पी अपने शिल्पकर्म को त्याग दें तो न हमें खाने पीने ही को अन्न, दूध, घी, दही ही मिले और न लिखने पढ़ने और पहनने आदि को कागज, कलम, लत्ता, कपड़ा आदि वस्तु हो। ऐसे ही लोहार, बढ़ई, सोनार, चमार, तेली, बनिया, जुलाहा, कोइरी, कुम्हार आदि अपने २ काम छोड़ दें तो एक दिन भी किसीका काम चल नहीं सकता। सभीको परिश्रमी बनने का आत्म सुख-लाभ ही सर्वतोभाव से अभीष्ट है और यही सबको श्रम करने को प्रेरित करता है। प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य अपने २ श्रमसा कार्य में तन्मय हुए हैं और एक की आवश्यकता दू से पूरी होती है। सभी अपने २ परिश्रम का फल भो हैं—किसीको किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता। ही एक श्रेणी के व्यक्ति से समाज परिचालित और रक्षित होता है। समाज की यह सुन्दर व्यवस्था शतमुख प्रशंसनीय है। इस व्यवस्था के अनुसार जो श्रमहीन समाज को अपने श्रम से सहायता नहीं करता हक नहीं है कि वह समाज के अन्य कृत श्रम का फल

शारीरिक और मानसिक परिश्रम—इन दोनों से मानसिक श्रम का महत्व बहुत बड़ा है। अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य पहले ही से चला रिक श्रम में कष्ट अधिक है और मानसिक शरीर से जितना उपार्जन हो सकता है उससे मन से उपार्जन हो सकता है। तथापि

वर्षा आदि की परवाह करके गृहस्थी छोड़ दे तो मान-
अपमानों के भेद मिटाने लगें। बुद्धि बल से अपूर्व
वैसे पास में ढेर हो गये हों पर अन्न न मिले तो रुपये पैसे
का कर कोई भी नहीं सकेगा। इससे शारीरिक श्रमजीवी
समाज द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखे जायँ सो बात नहीं।
मानसिक श्रमजीवियों में भी जिनका मस्तिष्क बुद्धिबल से
विशेष परिचालित होता है उसका मूल्य और बढ़ जाता है।
इसीसे सभी कार्यों में विशेष पढ़े लिखे, बुद्धिमान्, चतुर
को अधिक और उससे साधारण विद्या बुद्धिवालों को कम
वेतन मिलता है। अतएव विद्योपार्जन द्वारा बुद्धि का उत्कर्ष
साधन सभी के लिये सब प्रकार श्रेयस्कर है। साथ ही साथ
मानसिक श्रम करनेवालों को शारीरिक श्रम भी करना
आवश्यक है। ऐसा न होने से बुद्धि क्षीण हो जाती है,
चिन्ता-शक्ति की स्फूर्ति रुक जाती है तथा उसका मस्तिष्क
दुर्बल और शरीर अकर्मण्य हो जाता है। इसी लिये स्कूलों
में अनेक व्यायामों का प्रबन्ध कर दिया गया है जिससे
श्रम अभ्यास से ही हो नहीं तो दब भी अधिकता से
भी शक्ति पराजय कर जाती है।

श्रम का सुख भोग—सब प्रकार के श्रमजीवी अपनी २ सुख-लिप्सा को त्याग कर यदि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते तो संसार का कोई काम हो नहीं सकता। कृषक कृषिकर्म छोड दें, गोपालगण गोपालन को छोड दें शिल्पी अपने शिल्पकर्म को त्याग दें तो न हमें खाने पीने ही को अन्न, दूध, घी, दही ही मिले और न लिखने पढने और पहरने आदि को कागज, कलम, लत्ता, कपडा आदि वस्तु ही। ऐसे ही लोहार, बढ़ई, सोनार, चमार, तेली, बनिया, जुलाहा, कोडरी, कुम्हार आदि अपने २ काम छोड दें तो एक दिन भी किसीका काम चल नहीं सकता। सभीको परिश्रमी बनने का आत्म सुख-लाभ ही सर्वतोभाव से अभीष्ट है और यही सबको श्रम करने को प्रेरित करता है। प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य अपने २ श्रमसाध्य कार्य में तन्मय हुए हैं और एक की आवश्यकता दूसरे से पूरी होती है। सभी अपने २ परिश्रम का फल भोगते हैं—किसीको किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता। ऐसे ही एक श्रेणी के व्यक्ति से समाज परिचालित और परिरक्षित होता है। समाज की यह सुन्दर व्यवस्था शतमुख से प्रशसनीय है। इस व्यवस्था के अनुसार जो श्रमहीन व्यक्ति समाज को अपने श्रम से सहायता नहीं करता उसका कोई हक नहीं है कि वह समाज के अन्य कृत श्रम का फल भोगे।

शारीरिक और मानसिक परिश्रम—इन दोनों परिश्रम में से मानसिक श्रम का महत्व बहुत बडा है। क्योंकि देह की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य पहले ही से चला आता है। शारीरिक श्रम में कष्ट अधिक है और मानसिक श्रम में कम। शरीर से जितना उपार्जन हो सकता है उससे कहीं अधिक मन से उपार्जन हो सकता है। तथापि गृहस्थ यदि उपा,

शीत, वर्षा आदि की परवाह करके गृहस्थी छोड़ दे तो मानसिक श्रमवालों के नेत्र निकलने लगें । बुद्धि बल से रुपये पैसे पास में खूब हो गये हों पर अन्न न मिले तो रुपये पैसे खा कर कोई जी नहीं सकेगा । इससे शारीरिक श्रमजीवी समाज द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखे जायँ सो बात नहीं । मानसिक श्रमजीवियों में भी जिनका मस्तिष्क बुद्धिबल से विशेष परिचालित होता है उसका मूल्य और बढ़ जाता है । इसीसे सभी कार्यों में विशेष पढ़े लिखे, बुद्धिमान, सुचतुर को अधिक और उनसे साधारण विद्या बुद्धिवालों को कम वेतन मिलता है । अतएव विद्योपार्जन द्वारा बुद्धि का उत्कर्ष-साधन सभी के लिये सब प्रकार श्रेयस्कर है । साथ ही साथ मानसिक श्रम करनेवालों को शारीरिक श्रम भी करना आवश्यक है । ऐसा न होने से बुद्धि क्षीण हो जाती है, जिससे शक्ति की स्फूर्ति मन्द पड़ जाती है तथा उनका मस्तिष्क दुर्बल और शरीर अकर्मण्य हो जाता है । इसी लिये स्कूलों में अनेक व्यायामों का सुप्रबन्ध कर दिया गया है जिससे दोनों श्रम समभाव से ही हों, नहीं तो एक की अधिकता से दूसरे की शक्ति एकदम घट जाती है ।

श्रम का अभाव—परमेश्वर की कृपा से परिश्रम से जी चुरानेवाले आलसियों की संख्या कम है तथापि देखा-देखी इनकी वृद्धि हो रही है । आलसी जीवों को समझना चाहिये कि इसमें यह बड़ा भारी दोष है । परिश्रम प्राणियों का प्रकृति-प्रदत्त पुरस्कार है और आलस्य स्वभाव विरुद्ध है और अभ्यास से हो जाता है । इस आलस्य के दो प्रधान कारण हैं । एक बिना परिश्रम इच्छित वस्तु का मिल जाना और दूसरा शिक्षा का अभाव । इन्हीं दोनों से आलस्यदोष का संचार

होता है और अभ्यास से क्रमशः वैसा स्वभाव बँध जाता है। आलस्य-दोष से परिश्रम के फल भले ही उपलब्ध न हों पर स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से शारीरिक श्रम तो कुछ न कुछ करना आवश्यक है। प्रकृति के विरुद्ध पथ पर चलने से अन्त में देह भी अकर्मण्य हो जायगी।

आलस्य-निराकरण—आलस्य-वृद्धि का कारण हिन्दू-धर्म का अयथार्थ रूप से समझना है। हिन्दू अपनी हार्दिक कोमलता के कारण 'दरिद्रान् भर कौन्तेय' आदि वाक्यों को भूल कर पात्रापात्र के विना विचार किये ही द्वारस्थ भिक्षुक को विमुख होकर लौटने नहीं देते। निरक्षर, अपूज्य, कुकर्मी ब्राह्मण साधु-नामधारियों को भी देने में ये सङ्कुचित नहीं होते। इससे आलस्य की वृद्धि दिनोंदिन हो रही है और श्रम जीवियों की संख्या घटती जाती है। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि, वे साधु, ब्राह्मण और गरीबों को आश्रय ही न दें। नहीं, आश्रय अवश्य दें—आतिथ्य धर्म का अवश्य पालन करें पर समय, अवस्था और पात्र का अवश्य ध्यान करें। ऐसा न हो कि उनका दान, सम्मान और आतिथ्य विफल हो और पापवर्द्धक हो जाय। यूरोप में यह बात नहीं है। वे भिक्षा उसी को देते हैं जो किसी प्रकार श्रम नहीं कर सकता। जो भिक्षुक या याचक श्रमसमर्थ होकर भीख माँगता है उसे पुलिस गिरफ्तार करती है और मजिस्ट्रेट उसकी यथोपयुक्त दण्ड व्यवस्था करते हैं। अगर हिन्दू जाति भिक्षादान के साथ २ पात्रापात्र का विचार कर युवक और समर्थ भिक्षुकों को श्रमोपजीवी होने की थोड़ी बहुत शिक्षा दे तो उस दान का महत्व और बढ़ जायगा। सम्भवतः उनके मन में यह जम जाय कि बेपरिश्रम का खाना अनुचित है और श्रम करके खाना उचित है।

परिश्रमी और आलसी—यदि आलसियों से पूछा जाय कि आप परिश्रम क्यों नहीं करते ? परिश्रम करके क्यों नहीं खाते ? इसका उत्तर वे देते हैं कि क्या करें, कोई काम ही तो नहीं है। अवस्था भी अच्छी नहीं है, सुभिक्ष और सुसमय भी नहीं है। कुछ करें तो कैसे। एकाध काम मिलता भी है तो किसीमें मेरी गति ही नहीं और किसीमें कुछ लाभ ही नहीं दीख पड़ता। इस दशा में क्या करें, चुपचाप बैठे हैं। जिस काम को करना आलसी निरर्थक और निष्फल समझते उसीको श्रम-शील व्यक्ति हाथ में लेकर अपने परिश्रम से सफल और सार्थक कर देते हैं। कभी ऐसा खयाल नहीं करना चाहिये कि हमारे मनोऽनुकूल, मर्यादानुरूप और सुविधाजनक कार्य मिलेगा तभी हम अपनी श्रमशीलता का परिचय देंगे और उन्नति की चेष्टा करेंगे। नहीं, कैसा ही समय क्यों न हो अपना श्रम करना उचित है। श्रम ही सभी सुसमय, सुविधा और सुयोग ला देता है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि एक कोई ऐसा अवसर प्रस्तुत हो जाय जो सब सुफल कराने वाला अब समय उपस्थित कर दे। आवश्यकता चाहिये सब कार्य की सुविधा कर देता है और आवश्यकता ही का अवसर ला देता है। जब कभी कार्य की सुविधा, असुविधा, सुफल, असुफल आदि का बिना विचार किये ही परिश्रमी पुरुष अपने कर्त्तव्य कर्म में लिप्त होकर [illegible] आगे बढ़ता जाता है और यथा-समय उसका सुफल [illegible] है तब आलसी [illegible] देखते हैं कि इसका भाग्य बदल गया है, इसके पूर्व समय भी [illegible] अच्छी थी, और [illegible] भी अनुकूल हो गये थे जिससे इसकी ऐसी उन्नति हुई। आलसी भूल कर भी कभी यह नहीं सोचते कि परिश्रमी

का परिश्रम ही सभी कुछ कर देता है। यहाँ तक कि भा
ग्य और पूर्वजन्म को भी अपने अनुकूल कर लेता है।

परिश्रमका फलाफल—परिश्रम से असाध्य कुछ न
है। विद्या, धन, मान, यश आदि श्रमशील के निकट कुछ
दुर्लभ नहीं है। इसके गुण से सैकड़ों दरिद्र बालक धनकु
हो गये हैं और सैकड़ों मूर्ख विद्वान् और यशस्वी हो गये हैं
विद्यासागर एक साँझ दो मुट्ठी फरही फाँक कर पढ़ते थे
अमेरिका के युक्तप्रदेशों के अधिनायक गारफील्ड एक गरी
कृषक-सन्तान और पितृहीन थे। बेंजामिन फ्रैंकलिन निर्ध
बालक होकर भी परिश्रम से अमेरिका के साधारण सभा
सभ्य हुए थे। ऐसे ही और भी अनेकानेक महात्मा हैं
अपने श्रम से असाध्य साधन कर विश्वविख्यात हो गये हैं
समझना चाहिये कि संसार की सभी सामग्री श्रमसम्भूत
है। जो परिश्रम नहीं करते वे लोक, परलोक, कुटुम्ब, परि
वार, समाज और देश के भार बने रहते हैं। उनकी दुर्ग
सदा हुआ करती है। इससे मनुष्य-मात्र को कुछ न कुछ श्र
अवश्य करना चाहिये।

स्वास्थ्यरक्षा (Preservation of Health)

परिचय—शरीर की जो स्वाभाविक नीरोगावस्था
उसीका नाम है स्वास्थ्य। शरीर, मन और आत्मा में किस
प्रकार का विकार न होना और उनसे प्रौढ बना रहन
विशेषतः शारीरिक दुःख और रोगों से हीन रहना
स्वास्थ्य है।

आवश्यकता—एक नीतिकार का वचन है—"धर्मार्थका
मोक्षाणां प्राणा संस्थितिहेतवः।" अर्थात् संसार में मनुष्य

के जो चार कर्म—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, प्रधान हैं उनका होना मनुष्य जीवन पर निर्भर है। जो मनुष्य स्वस्थ नहीं है उसके जीने की आशा बहुत कम रहती है। जो अस्वस्थ रहकर जीते भी रहते हैं उनसे किसी प्रकार का कोई काम हो ही नहीं सकता। वे सर्वथा सर्व कार्यों में असमर्थ होते हैं। यहाँ तक कि उनका शरीर भी बोझ हो जाता है। अतएव मनुष्य मात्र को उचित है कि अपने स्वास्थ्य पर सदा ध्यान दें और उसकी रक्षा में सदा तन, मन, धन लगाया करें।

स्वास्थ्यरक्षा के गुण—स्वास्थ्य सब सुखों का मूल है। अस्वस्थ शरीर से किसी प्रकार का सुख भोग सम्भव नहीं है। जब आदमी का शरीर स्वस्थ रहता है तब मन भी स्वस्थ रहता है। क्योंकि इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहने का अभिप्राय यह कि स्वस्थ व्यक्ति शारीरिक सुख के साथ मानसिक सुख का भी भोग कर सकता है। स्वस्थ व्यक्ति संसार में धर्मार्थकाममोक्ष इन चतुर्वर्ग का साधन सुख से कर सकता है। स्वस्थ व्यक्ति का मुखकमल प्रफुल्ल और प्रसन्न स्फूर्तिमय तथा सुन्दर और मन विमल तथा स्वच्छन्द रहता है। स्वस्थ व्यक्ति ही खान पान, भोग योग और आहार-विहार आदि कर सकता है, उपकार, दया, क्षमा आदि गुणों का प्रकट कर सकता है और अनेकानेक अद्भुत कार्य करके लोगों को चकित कर सकता है। सारांश यह है कि स्वस्थ व्यक्ति ही बाल्यावस्था में विद्याध्ययन, यौवनावस्था में धनोपार्जन और वृद्धावस्था में आराम-आनन्द सुख से कर सकता है।

स्वास्थ्यहीनता के अवगुण—एक नीतिकार की उक्ति है—'रोगी, परदेशी, पराधीन और परगृहवासी—ये चारों मृतक समान हैं'। इन चारों में रोगी की सर्वप्रथम गणना है।

रोगी अर्थात् अस्वस्थ शरीर वाला कभी सुखी नहीं हो सकता रोगी का मन शरीर के साथ ही खराब हो जाता है। न वा पढ़ने लिखने में मन ही लगा सकता है और न शरीर ही से कुछ श्रम कार्य कर सकता है। अस्वस्थ व्यक्ति न किसी प्रकार का विद्यालाभ कर सकता है और न धनोपार्जन ही। फिर न वह कोई नौकरी ही कर सकता है और वणिज व्यापार ही। अस्वस्थ व्यक्ति का अन्तःकरण अप्रसन्न और खिन्न रहता है। किसीका प्रिय वचन भी अप्रिय, हितकर कार्य भी अहितकर और सुख-साधन भी रोग साधनवत् उसे प्रतीत होते हैं। आत्मग्लानि और अनुत्साह उसके सहचर बन जाते हैं। विराग, क्रोध और अप्रसन्नता आदि विकार उसको घेरे रहते हैं। कहना यह कि रोगी व्यक्ति चेतन होकर भी सांसारिक सब साधन और सुख-भोग में असमर्थ होकर अचेतन के समान है—उसकी गणना मृत व्यक्तियों में होती है।

स्वस्थास्वस्थ व्यक्ति की तुलना—स्वस्थ व्यक्ति निर्धन होने पर भी सुखी और अस्वस्थ धनी होने पर भी दुखी है। शरीर स्वस्थ रहने पर पर्णकुटी में भी आराम है और अस्वस्थ होने से सुन्दर और सुसज्जित भवन में भी आराम नहीं। स्वस्थ व्यक्ति एक सन्ध्या शाकान्न खाकर भी जो आनन्द और तृप्ति अनुभव करता है वह अस्वस्थ व्यक्ति को भाँति ॰ के सरस भोजन से भी नहीं हो सकता। स्वस्थ मनुष्य तुच्छ तृणशय्या पर पड़ा २ निद्रादेवी की सुखदायिनी शान्ति का जो उपभोग करता है वह अस्वस्थ मनुष्य को सुकोमल शय्या पर भी प्राप्त नहीं होता। समझना चाहिये कि शरीर का सुखी सब प्रकार सुखी और शरीर का दुखी सब प्रकार दुखी है।

स्वास्थ्यरक्षा के उपाय—एक कवि का वचन है—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" सब साधनों का एक साधन यह है कि शरीर को सर्वदा स्वस्थ रखने की चेष्टा करना। ऊपर की बातों से हमें ज्ञात होता है कि स्वस्थ व्यक्ति ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है। स्वास्थ्य-रक्षा में जब सब प्रकार सुख और अस्वास्थ्य में सब प्रकार अनर्थ हैं तब हमें उचित है कि स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का यत्नपूर्वक पालन करें। प्रधानतः स्वास्थ्य-रक्षा के ये उपाय हैं—(क) व्यायाम (ख) वायुसेवन (ग) खानपान की शुद्धता और संयम (घ) नियमित आहार विहार तथा कार्य (ङ) और विश्राम।

(क) यदि हम केवल मानसिक परिश्रम ही करें तो हमारा शरीर एकदम बेकार हो जायगा। यह देखी सुनी बात है कि कोई चीज को ही कुछ दिनों तक बेकार छोड़ दी जाय तो वह कुछ दिनों में एकदम खराब हो जाती है। वैसे ही शरीर से हम कुछ काम न लें तो वह भी निष्क्रिय, अशक्त और निष्प्रयोजन हो जाता है। इससे खराबी यह होती है कि शरीर में अनेक विकार पैदा हो जाते हैं और आलसी मनुष्य हो जाता है। अतएव यथोचित व्यायाम [illegible] [illegible] है। (व्यायाम का आगे अलग लेख देखो)।

(ख) जो स्थान जनता-पूर्ण है वहाँ की वायु अवश्य दूषित हो जाती है, क्योंकि उसमें मनुष्यों के श्वास-प्रश्वास की निकली वायु मिश्रित हो जाती है। ऐसी वायु मनुष्य के शरीर में पैठ कर रक्त को दूषित कर देती है। अतएव [illegible] के कारण कार्बोनिक [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वायु का सेवन [illegible] के लिये [illegible]-

वश्यक है। शुद्ध वायु के लिये स्थान, परिधान, स्नान, खान पान आदि को भी परिष्कृत रखना आवश्यक है। शुद्ध वायु तथा स्थानविशेष की वायु से बड़े २ रोग जो सब प्रकार असाध्य हो जाते हैं वे भी दूर हो जाते हैं। इसीसे वैद्यक में हवा-पानी बदलने की व्यवस्था है। प्रातःकालीन वायु विशेषत. विकार-शून्य होती है। उसका सेवन और श्रेयस्कर है।

(ग) खान-पान की व्यवस्था पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि शरीर के भीतर पैठ कर दुर्गुण पैदा करने वाले विशेषत ये ही दो पदार्थ है। इन दोनों में किसी प्रकार की अशुद्धि या विकार नहीं आना चाहिये। सड़ी, गली, जूठ, बासी, जली, अधपकी वस्तु नहीं खानी चाहिये। ऐसे ही जितने अभक्ष्य पदार्थ हैं उन्हें त्याग देना उचित है। मादक वस्तुओं का भक्षण भी स्वास्थ्य के लिये हानिकर है। आज कल घी, दूध, चीनी शुद्ध २ मिलना बहुत दुर्लभ है। यदि ये शुद्ध २ न मिलें तो इनके खाने का परहेज करना उचित होगा। बाजार के खाने की चीजें भी बहुत खराब होती हैं उनके भोजन से भी स्वास्थ्य में बाधा पहुँचती है। ऐसे ही दूषित जल का पान करना कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि संक्रामक रोग के कीटाणु इसीमें रहते हैं। नदी आदि का जल शुद्ध होता है। जो जल दूषित हो उसे औंट और छान कर पीने से कोई हर्ज नहीं है। इन दोनों की शुद्धता के साथ संयम की भी आवश्यकता है। बढ़िया भोजन या जल मिलने पर परिमाण से अधिक खा पी लेने से स्वास्थ्य की बड़ी हानि होती है। इनका संयम रखना उचित है। एक अनुभवी विज्ञ पुरुष ने लोगों के इस प्रश्न के उत्तर में कि आप बीमार क्यों नहीं पड़ते? कहा था कि जब तक मुझे खूब भूख नहीं लगती तब

में खाने नहीं दिया और कुछ २ भूख बनी ही रहती है बढ़ जाता है। यह बात सभी को ध्यान रखना चाहिये।

(घ) खाना, पीना, सोना, टहलना, पढ़ना, लिखना, ध्यान आदि जितने प्रकार के कार्य हैं उनमें एक प्रकार का नियम रहना उचित है। वैद्यक में रोग उत्पन्न होने के जितने कारण लिखे हैं उनमें मिथ्याहार-विहार ही प्रधान है। सब काम ठीक समय पर परिमाण के मोताबिक होने ही से आदमी सुख रह सकता है। रात्रि-जागरण तथा अकाल भोजन और ऋतु-विलास से स्वास्थ्य में हानि पहुँचती है।

(ङ) मजबूत से मजबूत कल पुर्जे वाला भी कोई मेशीन हो और उससे भी लगातार यदि काम लिया जाय तो कुछ ही दिनों में वह जैसे खराब हो जायगा वैसे ही यह शरीर भी अत्यधिक निरन्तर काम लेने से बिगड़ जायगा। इसलिये दिन और रात में विश्राम करना भी परम प्रयोजनीय और स्वास्थ्य कर है। विश्राम से शरीर में नवजीवन और नवशक्ति का संचार हो जाता है। विश्राम के लिये मनोरञ्जक पुस्तकें पढ़ना गप्प-शप करना और क्रीड़ा-कौतुक करना चाहिये।

उपसंहार—ऊपर लिखे हुए स्वास्थ्य-रक्षा के ये ही मोट उपाय हैं। इनके सम्बन्ध में बहुत सी बातें अपने मन से भी सोच लेनी चाहिये। इस प्रकार सावधान रहने पर नीरोग शरीर से सब सुख भोगा जा सकता है। कहा है—"आरोग्य परमं सुखम्" "तन्दुरुस्ती हजार नियामत" और "Health is better than wealth."

व्यायाम (Physical Exercises)

उद्देश्य—शरीर से जितने प्रकार के परिश्रम के कार्य किये जाते हैं वे सब व्यायाम हैं। व्यायाम को चाहिये कि सब प्रकार-

लन की जिन २ प्रक्रियाओं से शारीरिक-शक्ति और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है वह व्यायाम हैं ।

आवश्यकता—यदि कोई यन्त्र यों ही पडा रहे तो उसकी अवस्था बिगड जाती है और वह अकर्मण्य हो जाता है । देह-यन्त्र भी तद्रूप ही है । शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से काम न लिया जाय और यथोपयुक्त उनमें रक्त-सञ्चालन न हो तो उससे अनेकानेक हानियाँ होती हैं । अतएव धनी, निर्गुणी, सुखी दुखी, मूर्ख-पण्डित सब किसी व्यायाम की आवश्यकता है, क्योंकि में समान-भाव से समता है ।

लन को जिन २ प्रक्रियाओं से शारीरिक-शक्ति और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है वह व्यायाम है।

आवश्यकता—यदि कोई यन्त्र यों ही पड़ा रहे तो उसकी अवस्था बिगड़ जाती है और वह अकर्मण्य हो जाता है। देह-यन्त्र भी तद्रूप ही है। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से काम न लिया जाय और यथोपयुक्त उनमें रक्त-सञ्चालन न हो तो उससे अनेकानेक हानियाँ होती हैं। अतएव धनी, गरीब, गुणी निर्गुणी, सुखी दुखी, मूर्ख-पण्डित सब किसीको कुछ न कुछ व्यायाम की आवश्यकता है, क्योंकि सभीके शारीरिक धर्म में समान-भाव से समता है।

व्यायाम से लाभ तथा हानि—व्यायाम करने से सभी अंग पुष्ट, पेशी सबल और क्षुधा तथा परिपाकशक्ति वर्धित होती है। व्यायाम से ही यकृत् की क्रिया उत्तम रूप से परिचालित होती है और उससे अन्न के परिपाक, शोणित की वृद्धि तथा मल मूत्र के परित्याग में किसी प्रकार का कोई विकार नहीं होता। इसीसे फुसफुस आदि की क्रियायें भी ठीक तरह से होती हैं। व्यायाम से शारीरिक मल स्वेद-रूप से बहिर्गत होता है जिससे स्वास्थ्यवृद्धि में साहाय्य पहुँचता है। व्यायाम न करने से अंग दुर्बल, पेशी क्षीण और यकृत् तथा फुसफुस की क्रिया अच्छी तरह से नहीं होती। इससे शरीर में मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदरामय आदि रोग पैठ जाते हैं। देहयन्त्र के उपयुक्त रूप से परिचालित न होने से यकृत्, हृत्पिण्ड, फुसफुस, पाकस्थली, मस्तिष्क आदि प्रकृतिस्थ न रह कर अपने २ कार्य में असमर्थ हो जाते हैं। अतएव स्वास्थ्य-सम्पादन के लिये व्यायाम परम प्रयोजनीय है।

...च्छता में बुरे २ ख़याल न करना और ईर्षा, द्रोह, पाखण्ड, छल, असत्य आदि अवगुणों का आश्रय न देना है। व्यावहारिक स्वच्छता में, लत्ते कपड़े साफ़-सुथरा रखना, खाने-पीने में स्वच्छता रखना, सड़ी गली, अनिष्टकर और अखाद्य वस्तुओं से परहेज़ रखना, घर द्वार का झाड़ना बुहारना, गन्दे स्थानों में जाना आना तथा अन्यान्य ऐसी ही सारी व्यावहारिक वस्तुओं को स्वच्छ, निर्विकार और निर्मल रखना आदि हैं। और सामाजिक स्वच्छता में अच्छे लोगों के साथ रहना, जहाँ का समाज, अवस्थान, संसर्ग आदि बुरा हो वहाँ न जाना आना, नीच और असभ्य व्यक्तियों से व्यवहार न रखना आदि हैं। स्वच्छता के लिये ये आवश्यक हैं।

स्वच्छ रहने के उपाय—मनुष्यों को उचित है कि प्रति दिन स्नान करें और अपनी देह को खूब मल मल कर साफ़ करें। इससे रोमकूप में किसी प्रकार का विकार न रहेगा और उनसे पसीना वगैरह निकला करेगा। मलिन जल, पवन [illegible] वगैरह से अपने शरीर को बचाए रक्खें। व्यवहार में आने वाले कपड़ों को साफ़-सुथरा रक्खें, उन्हें झाड़ें, धोवें और सुखावें। खाना खाने और विश्राम के समय [illegible] न हो। मुँह धोने, कुल्ला करने [illegible] और पानी में [illegible] न करें। इन सब कामों [illegible] लाभ [illegible] शारीरिक स्वच्छता हो सकती है। मन में उपजे हुए [illegible] भाव आदि शत्रुओं को दबाने, [illegible] सहना, [illegible] आदि गुणों के धारण करने से [illegible] कुशलता और उदारता [illegible] सिक स्वच्छता होती है। सारी वस्तुओं को साफ़, [illegible] स्थान में कूड़ा करकट न रहने देना, मादक वस्तुओं [illegible] कहीं न रखना, अंग-देश से [illegible] रखना, [illegible]

अमीर जो एकदम अकर्मण्य हो जाते हैं यह व्यायामाभाव ही का प्रभाव है। जोड़ी पर टहलना, हाथ में पतली छड़ी घुमाते हुए कुछ दूर टहलना, व्यायाम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें यथार्थ रक्त-सञ्चालन नहीं होता। यदि शारीरिक और मानसिक सुस्थता तथा मस्तिष्क की कर्मण्यता बनाये रहना हो तो यथेष्ट व्यायाम करना उचित है। व्यायाम जातीय शौर्य-वीर्य का मूल है। क्षत्रिय आदि वीर जातियों में इसकी बड़ी कदर थी और नियमित तिथि को राजा महाराजाओं के सामने इसके भाँति भाँति के खेल होते थे।

स्वच्छता (Cleanliness)

परिचय—स्वच्छता एक प्रकार का गुण है। यदि आदमी बाहर से, भीतर से, संसर्ग से, आचरण से हर प्रकार स्वच्छ रहे तो उसमें इस गुण का यथार्थ समावेश हो सकता है और वही यथार्थ स्वच्छ कहा जा सकता है। यह एक प्रकार का अभ्यास है जिससे आदमी गन्दगी से दूर रहता है। वह गन्दगी केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि कपड़े-लत्ते की, पहरने-ओढ़ने की, खाने-पीने की, बैठने-उठने की, यहाँ तक कि मानसिक गन्दगी से भी अलग रहना स्वच्छता की निशानी है।

स्वच्छता के भेद—स्वच्छता के कई भेद हैं, पर उनमें चार प्रधान हैं—शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक और सामाजिक। शारीरिक स्वच्छता में केशों को परिष्कृत रखना, देह में मैल न बैठने देना, तेल लगाकर स्नान करना, पसीने वगैरह देह में सूखने न देना, नहों को यथा-समय कटवाना और उनमें मैल न बैठने देना, रोम-कूपों को बन्द न होने देना, मुँह नाक साफ रखना आदि कार्य हैं। मानसिक

हानि—जो लोग स्वच्छ नहीं रहते वे अपने जीवन में प्रायः कुरूपता पाते हैं। जो मैले और गन्दे रहते हैं वे कहीं आदर नहीं पाते। ऐसे आदमी जिससे मिलने जाते हैं उनकी भी अपने साथ अप्रतिष्ठा करते हैं। सभ्य देशों में मैले कुचैले रहना बड़ा भारी अपराध समझा जाता है। कैसा ही कोई विद्वान् या गुणी हो पर वह मलिन वेश में है तो वह सब जगह से दुरदुराया जाता है।

उपसंहार—संसार का कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो मलिन रूप में कहीं आकर पूर्ण आदर पावे। मणि जब मलिन वेश खान से निकलता है उस समय उसकी कुछ भी कीमत नहीं होती पर वह जब सान पर घिस कर खूब साफ किया जाता है तब मुकुट में जड़ा जाता है। यही हाल मनुष्य का भी है। गुण मलिन वेश में जो छिपा रहे तो क्या आदर हो सकता है? अतएव सब किसीको मलिन वेश से बचना चाहिये।

प्रश्न—निरालस्यता, आसन, व्यायाम, स्नान और भोजन पर एक २ लेख लिखो।

तृतीय पाठ—नैतिक गुण (Moral Virtues)

(क) धर्म (Righteousness)

हिन्दुओं के राष्ट्रीय जीवन में धर्म की प्रधानता है, पर साधारणतः धर्म शब्द से जिन विषयों का बोध होता है, वे इससे अलग हैं। पूर्ण धार्मिक हिन्दू बहुत कम देखने में आते हैं। इसका कारण यही है कि, बहुतों को धर्म का ज्ञान ही नहीं है। वे स्नान-ध्यान, संध्या, पूजा, गंगास्नान, जप, दान जैसे कामों को ही धर्म समझते हैं। आजकल कितने हिन्दुओं की दृष्टि में ईसाइयों का "रिलीजन" शब्द ही धर्म है। पश्चिमी जातियों के अतिरिक्त हिन्दुओं को "धर्मशास्त्र"

कपड़ों को अपने व्यवहार में न लाना आदि से व्यावहारिक स्वच्छता रहती है। और, अच्छे आदमियों का सङ्ग करना, घूमना, फिरना, टहलना और रहना तथा पढ़े लिखे लोगों के साथ मिलना-जुलना आदि से सामाजिक स्वच्छता रहती है।

स्वच्छता से लाभ—हमारे यहाँ के शास्त्रों में जितनी विधियाँ लिखी गई हैं उनमें पवित्रता और स्वच्छता को प्रधान स्थान दिया गया है। सभी कामों में मकान लीपने, पोतने, झाड़ने, बुहारने, चौका पूरने आदि की बात है। कोई ऐसा काम नहीं जो बिना स्नान किये और बिना पवित्र हुए किया जाता हो। स्वच्छता से शरीर शुद्ध, मन निर्मल और विचार निर्विकार रहते हैं। यह कहना नहीं होगा कि स्वच्छता से स्वास्थ्य का कितना सम्बन्ध है। खाने-पीने, नहाने धोने, पहरने ओढ़ने आदि में थोड़ा भी मालिन्य भाव आवे तो उसका प्रभाव शरीर पर बिना पड़े नहीं रहता। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जो स्वच्छ रहते हैं वे अवश्य स्वस्थ भी रहते हैं। शरीर स्वच्छ रहने से मन भी स्वच्छ रहता है। एक कहावत है "Cleanliness of body and purity of mind are not two but one"

स्वच्छता पवित्रता की निशानी है। नम्रता, भद्रता आदि का यह परिचायक है। देवत्व और निर्मलत्व में कुछ ही अन्तर है। स्वच्छता ही से सभ्यता का पता लगता है। यह गुण-गौरव का प्रकाशक है। अपने को आप प्रतिष्ठित बनाती है। हिन्दू मुसलमान, यहूदी सभी के शास्त्रों में स्वच्छता का बहुत गुण गाया गया है। एडिसन ने लिखा है "Cleanliness only preserves the love that beauty produces"

ऐहिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति धर्म के दो अङ्ग हैं। परन्तु पहले की ओर हमारे आचार्यों का ध्यान नहीं है, इसीसे धर्माचरण सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होता।

लौकिक वा ऐहिक उन्नति में मानवजाति की सब प्रकार की सांसारिक उन्नति परिगणित है। राजकीय, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक प्रभृति सब प्रकार की उन्नति ऐहिक वा लौकिक उन्नति है। जो धर्म के इस अङ्ग की अवहेलना करता है, वह सच्चा धार्मिक नहीं कहा जा सकता। साथ ही इस लोक में ही उसे उसके अधार्मिक होने का फल मिल जाता है।

लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति के साधक कार्य धर्म और बाधक अधर्म हैं। जो लोग लौकिक उन्नति में बाधा देते हैं, वे धर्म के बाधक हैं। इसी प्रकार उसके सहायक धर्म के सहायक हैं। लौकिक उन्नति से विमुख होने वाले धर्म से पराङ्मुख हैं, पर उसके लिये यत्न करने वाले धार्मिक हैं। दुर्भाग्यवश हिन्दुओं ने महर्षि कणाद और श्रीमच्छङ्कराचार्य कथित धर्म का अनादर किया है, इसीलिये आज उनकी दुर्दशा है परन्तु यदि वे फिर उनकी आज्ञा का पालन करने लग जावें, तो सब प्रकार के दुःख दारिद्र्य से उनका पीछा छूट जाय। धर्म और अधर्म की यह व्याख्या लोगों को स्मरण रखनी चाहिये और लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति की ओर बराबर ध्यान रखना चाहिये। ऐसा किया बिना किये सर्वाङ्गीण धर्म का पालन असम्भव है। कलियुग में धर्म का एक चरण इसी लिये रह जाता है कि हम लौकिक धर्म का पालन बिलकुल भूल गये हैं। यदि धर्म के अर्थ ठीक समझे जावें, तो अब धर्म अपने चारों चरणों से फिर खड़ा हो सकता है। आवश्यकता है कि हिन्दू समाज वाले अपने कलियुग को सत्ययुग में बदलें

और "धर्म" पर्यायवाची जान पड़ते हैं। परन्तु हमारे पूजनीय ऋषि महर्षियों तथा धर्मसंस्थापकों ने कभी उल्लिखित बातों में ही धर्म को सीमाबद्ध नहीं माना। उनके मत में लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधक कार्य धर्म है। केवल मुक्तिप्राप्ति की चेष्टा करने वाला ही धार्मिक नहीं है। वह धर्म शरीर के एक अवयव मात्र का अनुयायी है, धर्म का नहीं। महर्षि कणाद ने अपने "वैशेषिक दर्शन में" धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है —

"यतो अभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्मः।" "अर्थात् जिससे ऐहिक उन्नति और पारमार्थिक मोक्ष प्राप्ति हो, वही धर्म है।"

वैदिक सिद्धान्तों का पुन प्रचार करनेवाले श्रीमदादि शङ्कराचार्य्य का कहना है कि—

"जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षादभ्युदये निःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः।"

"अर्थात् जगत् की स्थिति का कारण और प्राणियों का साक्षात् अभ्युदय तथा मोक्ष-प्राप्ति जिससे हो वही धर्म्म है।"

दोनों अवतरणों को मिलाकर पढ़ने से महर्षि कणाद और श्रीमदादिशङ्कराचार्य्य के मतों में धर्म की व्याख्या के विषय में मत-भेद न देख पड़ेगा। दोनों आचार्य लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति के साधक कार्यों को धर्म मानते हैं। परन्तु आजकल हम लोगों में लौकिक उन्नति साधन के कार्य तो धर्म के अन्तर्गत माने ही नहीं जाते। मोक्षप्राप्ति की इच्छा बहुतों को होती है, पर उसके साधन सुलभ नहीं हैं। साधारण हिन्दू सन्ध्या, पूजा, पाठ, जप, दान, होम प्रभृति को ही मोक्ष के साधक कार्य समझे बैठे हैं। ऐसी स्थिति में धार्मिक हिन्दुओं का अभाव हो, तो आश्चर्य ही क्या है?

ऐहिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति धर्म्म के दो अङ्ग हैं। परन्तु पहले की ओर हमारे आर्यों का ध्यान नहीं है, इसीसे धर्म्माचरण सर्वाङ्गपूर्ण नहीं होता।

लौकिक वा ऐहिक उन्नति में मानवजाति की सब प्रकार की सांसारिक उन्नति परिगणित है। राजकीय, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक प्रभृति सब प्रकार की उन्नति ऐहिक वा लौकिक उन्नति है। जो धर्म्म के इस अङ्ग की अवहेलना करता है, वह सच्चा धार्मिक नहीं कहा जा सकता। साथ ही इस लोक में ही उसे उसके अधार्मिक होने का फल मिल जाता है।

लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्षप्राप्ति के साधक कर्म धर्म्म और बाधक अधर्म्म हैं। जो लोग लौकिक उन्नति में बाधा देते हैं, वे धर्म्म के बाधक हैं। इसी प्रकार उसके सहायक धर्म्म के सहायक हैं। लौकिक उन्नति से विमुख होने वाले धर्म्म से पराङ्मुख हैं, पर उसके लिये यत्न करने वाले धार्मिक हैं। साधारणतः हिन्दुओं ने महर्षि कणाद और श्रीमच्छङ्कराचार्य कथित धर्म्म का अनादर किया है, इसीलिये आज उनकी दुरवस्था है परन्तु यदि वे फिर उनकी आज्ञा का पालन करने लग जायें, तो सब प्रकार के दुःख दारिद्र्य से उनका पीछा छूट जाय। धर्म्म और अधर्म्म की यह व्याख्या लोगों को स्मरण रखनी चाहिये और लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति की ओर समान ध्यान रखना चाहिये। ऐसा किया बिना किये सर्वाङ्गीण धर्म्म का आचरण असम्भव है। कलियुग में धर्म्म का [illegible] इसी लिये रह गया है कि हम लोग धर्म्म का [illegible] अर्थ भूल गये हैं। यदि धर्म्म के अर्थ किये जायें, तो [illegible] धर्म्मी के लिये रह सकता है। [illegible] है कि [illegible] कलियुग को सत्ययुग में [illegible]

शत कर सकता है। इससे हम लोग शुभ कर्म करें, तो हमारी धार्मिक उन्नति हो सकती है।

भारतमित्र-सम्पादक—
प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी।

२—क्षमा (Forgiveness)

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति क्षुद्र समझा जाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसीके कुछ अपकार की शङ्का हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसीके मुँह से भ्रम से भी कुछ कर्रा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे किसीने अल्प अपराध भी किया तो उस पर झट टूट पडे, वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिनको क्षमा नहीं उनके लडके वाले बडे दुर्बल होते हैं क्योंकि वे बात २ में घूसे और घुरके जाते हैं और बात २ में मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता, क्योंकि यह आशङ्का सबको रहती है कि बातों में कोई अनुचित न हो जाय, जिसको क्षमा नहीं है उससे कितने ही काम चटपट ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्म भर पछतावा रह जाता है। क्षमारहित पुरुष राजसभाओं में तो कभी टिक ही नहीं सकते। जैसे किसी कटोरे में जल हो तो उसमें जहाँ कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला, यह स्वभाव अधम पुरुषों का है। समुद्र में पहाड आ पडे तो उसका बढ़ना, घटना, फैलना या कुछ नहीं विदित होता, यह स्वभाव क्षमावान् पुरुषों का है। जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूकता चले और गजराज उस पर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगडता, वैसे ही क्षमाशील पुरुष यदि तुच्छों की बक बक पर ध्यान न दें तो उनकी क्या हानि है। यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों फि—

"जाके ढिगि बहु गारी दै है सोई गारी दै है।
गारीवारो आपु कहै है हमरो का घटि जै है॥"

कोई समझते हैं कि "जो हमको गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी" पर यह उल्टी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से उल्टा पड़ता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किस-को कितने गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा झगड़ा चला। झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिये, पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को अच्छी न लगी। वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय थे पर तपस्वी हैं इसलिये राजर्षि कहला सकते हैं परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इन्हीं [illegible] बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से शत्रुता बाँधी। विश्वामित्र बार बार अधिक अधिक तप करके आते थे और वशिष्ठजी [illegible] झगड़ा करते थे पर वशिष्ठजी उन पर क्षमा ही रखते थे। [illegible] पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत [illegible] कर आकर वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमें ब्राह्मण [illegible] नहीं तो युद्ध करो। वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के [illegible] खड़े हो गये। विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र [illegible] लगे परन्तु वशिष्ठ ने अपने तपोबल से सबको [illegible] पर रोका। अब विश्वामित्र [illegible] [illegible] कहा कि आई और [illegible] तब विश्वामित्र ने [illegible] कि हम भी ब्राह्मण [illegible] [illegible] में वशिष्ठ [illegible] और वशिष्ठजी [illegible] अपनी कुटी में [illegible]

णत कर सकता है। इससे हम लोगशुभ कर्म करें, तो हमारी धार्मिक उन्नति हो सकती है।

भारतमित्र-सम्पादक—
प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी।

२—क्षमा (Forgiveness)

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति क्षुद्र समझा जाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसीके कुछ अपकार की शङ्का हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसीके मुँह से भ्रम से भी कुछ कर्रा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे, किसीने अल्प अपराध भी किया तो उस पर झट टूट पडे, वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिनको क्षमा नहीं उनके लडके वाले बडे दुर्बल होते हैं क्योंकि वे बात २ में घूसे और घुरके जाते हैं और बात २ में मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता, क्योंकि यह आशङ्का सबको रहती है कि बातों में कोई अनुचित न हो जाय, जिसको क्षमा नहीं है उससे कितने ही काम चटपट ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्म भर पछतावा रह जाता है। क्षमारहित पुरुष राजसभाओं में तो कभी टिक ही नहीं सकते। जैसे किसी कटोरे में जल हो तो उसमें जहाँ कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला, यह स्वभाव अधम पुरुषों का है। समुद्र में पहाड आ पडे तो उसका बढ़ना, घटना, फैलना या कुछ नहीं विदित होता, यह स्वभाव क्षमावान् पुरुषों का है। जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूकता चले और गजराज उस पर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगडता, वैसे ही क्षमाशील पुरुष यदि तुच्छों की बक बक पर ध्यान न दें तो उनकी क्या हानि है। यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों

कि—

"जाके हिय मह गारी है है सोई गारी दे है।
गारीवारो आपु सोई है हमरी का घटि जै है ॥"

कोई समझते हैं कि "जो हमको गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी" पर यह उलटी ही बात है। दुष्टों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढ़ता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसने किसको गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा झगड़ा चला। झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें अब कोई ब्राह्मण कहा कीजिये, पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को अच्छी न लगी। वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय थे पर तपस्वी हैं इसलिये राजर्षि कहला सकते हैं परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इसी पर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से शत्रुता बाँधी। विश्वामित्र बार बार अधिक अधिक तप करके आते थे और वशिष्ठजी से करते थे पर वशिष्ठजी उन पर क्षमा ही रखते थे। पुराणों में देखा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप आकर वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमें ब्राह्मण कहो नहीं तो युद्ध करो। वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े हो गये। विश्वामित्र उन पर बहुत से अस्त्र शस्त्र चलाने लगे परन्तु वशिष्ठ ने अपने मनोबल से सबको उसी जगह पर रोका। जब विश्वामित्र कोटि उपाय कर हारे तब वशिष्ठजी ने कहा कि भाई और कोई अस्त्र बाकी हो तो चला लो फिर हम भी आक्रमण करेंगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोड़े और वशिष्ठजी ने क्षमा की। कालान्तर में वशिष्ठजी एक समय अपनी कुटी में बैठे और [illegible] ध्यान कर [illegible]

और अँधेरी रात थी। चारों ओर मारे अन्धकार के ऐसा जान पड़ता था कि काजल की आँधी चल रही है अथवा स्याही की वर्षा हो रही है। काले मेघमण्डल से तारों का भी प्रकाश बन्द हो गया था। उस समय विश्वामित्र के चित्त में यह बात आई कि जितने ब्राह्मण हैं वे वशिष्ठ ही पर ढलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ यदि ब्राह्मण कहैं तो हम लोग भी ब्राह्मण कहें और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो हमें ब्राह्मण न कहेगा। तो इस अन्धेरे में वशिष्ठ का सिर काट डालना चाहिये। यह विचार चोर की भाँति तलवार ले वशिष्ठ की कुटी में घुसे। दैवात् वशिष्ठ की समाधि खुली वशिष्ठ ने पूछा कौन है? तो विश्वामित्र ने कहा कि तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते इसलिये मैं तुम्हारा सिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा कि आप ही सोच लीजिए, क्या जो पाप करने आप आये हैं ऐसे ही ब्राह्मणों के कर्म होते हैं? क्या ऐसे ही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं? यह सुनते ही विश्वामित्र लज्जित हो गये और तलवार दूर फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपने अपराध क्षमा कराने लगे। वशिष्ठजी ने कहा हमें कुछ बदला नहीं लेना है कि आप क्षमा माँगें पर देखिये जिस समय आप अहङ्कार से ऊँचे बनने का डंका दे युद्ध का ढोल बाँधते थे तब सब की दृष्टि में आप छोटे जँचते थे और आप अब हाथ जोड़े अपने को तुच्छ समझे बैठे हैं तो हमारी दृष्टि में ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आपके हृदय में अहङ्कार नहीं, क्रोध नहीं, छल नहीं, ईर्ष्या नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं। बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सबसे बड़े हैं। विश्वामित्रजी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठजी का इतना भारी क्षमा-गुण देख सब को आश्चर्य हुआ। इस

…य यहीं चित्त में स्थिर करके रखना चाहिये कि—

॥ दोहा ॥

"छमा सकल गुण सो बडो, छमा पुन्य को मूल।
छमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत बसु जाम।
छमा शील निज गुणन ते, सुखी रहत सब ठाम॥"

साहित्याचार्य, प० अम्बिका दत्त व्यास।

ब्रह्मचर्य (Self Continence)

भूमिका—पहले जिस ब्रह्मचर्य का पालन कर आर्य अपने जीवन को चरितार्थ करते थे—सभी आश्रमों का मूल समझ कर उसके पालन में दत्तचित्त होते थे—यह ब्रह्मचर्य क्या है? इसके पालन के नियम क्या हैं? इसके लाभ कितने हैं? इसके पालन करने वालों की और इसकी महिमा श्रुति-स्मृतियों में कैसी गायी गयी है और प्राचीन ब्रह्मचारी कैसे थे? इनको बिना जाने ब्रह्मचर्य का तत्त्व समझना कठिन है। उसके इनका वर्णन करना आवश्यक है।

लक्षण—कौमुदीकार लिखते हैं 'ब्रह्मवेदस्तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी' अर्थात् वेद पढ़ने के लिये जो व्रत है उसके करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं। योगसूत्र के भाष्यकार व्यासदेव और वृत्तिकार भोजदेव ने लिखा है 'ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः' 'ब्रह्मचर्यमुपस्थनिग्रहः' अर्थात् गुप्त इन्द्रिय की ओर से विमुख रहना ब्रह्मचर्य है। जिस प्रकार से विषयत्याग ही को ब्रह्मचर्य कहते हैं। जैसा कि—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं तदुच्यते॥

अर्थात् [illegible] शारीरिक और [illegible] और [illegible]
[illegible], [illegible]

तीन प्रकार का है। प्राकृत अर्थात् प्रकृति सिद्ध ब्रह्मचर्य स्थावर जङ्गम सभी में पाया जाता है। बाकी दो ब्रह्मचर्य केवल मनुष्य ही में पाये जाते हैं। वीर्य-रक्षा रूप वैज्ञानिक ब्रह्मचर्य है और धर्मशास्त्रोक्त विधि के अनुसार यथासमय उपनीत होकर छत्तीस, अठारह या नौ वर्ष वेदाध्ययन है वैदिक ब्रह्मचर्य है। ये दोनों बृहत्, अतिरात्र, उपकुर्वाण और नैष्ठिक भेद से चार प्रकार के हैं। ४८ वर्ष का बृहत्, कुछ रात्रि का अतिरात्र, गृहस्थाश्रम के पूर्व, उपकुर्वाण और आजन्म का ब्रह्मचर्य नैष्ठिक कहलाता है।

ब्रह्मचारी के नियम—यज्ञोपवीत संस्कार ब्रह्मचर्य का एक प्रकार का चिह्न है। मेखला, अजिन, यज्ञोपवीत और दण्ड जब ब्रह्मचारी धारण कर लेता है तब आचार्य उसे यों उपदेश देता है। "तुम ब्रह्मचारी हो। सन्ध्योपासन करो। दिन में मत सोवो। आचार्य के अधीन होकर वेद पढ़ो" इत्यादि। इस प्रकार ब्रह्मचारी शौच, आचार और कार्य जान कर साँझ सवेरे अग्नि में आहुति दे। भिक्षा-वृत्ति से अपना जीवन चलावे। तपो-वृद्धि के लिये अपने इन्द्रिय समूहों को रोके। मद्य, मांस, गन्धमाल्य, रस और स्त्रियों को दूर करे। प्राणिहिंसा न करे। जूता, छाता न धारण करे। काम, क्रोध, लोभ, नाच, गीत, वाद्य, अङ्गराग, अंजन आदि का परित्याग करे। अपने स्वाध्याय में सदा निरत रहें और उसमें किसी प्रकार की बाधा न पहुँचने दे। इन्हीं अमूल्य नियमों को पालन करने के लिये ब्रह्मचारियों को श्रुति और स्मृतियों में आज्ञा दी गयी है।

माहात्म्य—पहले लोग इस प्रकार ब्रह्मचर्य क्यों धारण करते थे? इस पर यदि विचार किया जाय तो केवल हमें

नहीं ज्ञात होता कि इसके आर्थिक [illegible]
और दुख होती भी देखा कि योगसूत्र में लिखा है [illegible]
[illegible]लाभः' फिर चरक में '[illegible] आहारः [illegible]
ब्रह्मचर्य' अर्थात् मानवीय शरीर-रक्षा हेतु भोजन, [illegible] और
ब्रह्मचर्य तीन स्तम्भ हैं और सुश्रुत में लिखा है '[illegible],
[illegible], प्रीति, देहबल, वीर्यार्थञ्च' अर्थात् ब्रह्मचर्य ही से [illegible]
प्राप्त होते हैं। बल्कि यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य ही
से लोक-परलोक दोनों सुधरते हैं और इसका अनन्त माहात्म्य
स्मृतियों में गाया गया है। ब्रह्मचर्य से कोई ऐसा विषय
है जो उपलब्ध न होता हो।

उपसंहार यदि आदमी चाहे तो आज भी पूर्वोक्त ब्रह्म-
[illegible] को धारण करके उससे होने वाले अनन्त लाभों को उठा
[illegible] है। हाँ, यह हो सकता है कि देश, पात्र, काल और
[illegible] के अनुसार नियमों में कुछ कमी बेशी कर दी जावे।
[illegible] के लिये माता पिता और अभिभावकों को सदा [illegible]
चाहिये कि यदि कुछ दिनों तक लड़का ब्रह्मचर्य
न कर सकेगा तो वह किसी प्रकार अपने भावी [illegible]
को उन्नत और [illegible] नहीं बना सकता। इस बात को
लड़के भी समझें। जिस दीवार की नींव मज़बूत
नहीं होती वह घर अवश्य कुछ काल के बाद ही टूट [illegible]
जायगा और यदि वह मज़बूत हुई तो मकान चिरस्थायी हो
सकता है। वैसा ही यदि मनुष्य सबल और नीरोग रह कर
[illegible] चिरकाल तक कुछ कर दिखाना चाहे तो अपने
[illegible] किसी प्रकार अपने वीर्य को नष्ट न होने दें।
इस प्रकार अपने जीवन की जड़—ब्रह्मचर्य का [illegible]
[illegible] ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। [illegible]

रिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। दिमाग कमजोर पड जाता है। बल का ह्रास हो जाता है और वह अपने शरीर से कोई अच्छा कार्य नहीं कर सकता। इसके ही अभाव से भारत के भावी नवयुवकों के जीवन को सङ्कटापन्न देख आज अनेकानेक ब्रह्मचर्याश्रम और गुरुकुल खुले हैं और उनमें ब्रह्मचर्य धारण की व्यवस्था की गयी है। प्यारे भारत के भावुको! इस अमूल्य रत्न को अपने गाँठ से न गँवावो।

धृति वा धैर्य (Patience)

नामार्थ—धैर्य का अर्थ चचल चित्त को धारण करना अर्थात् अपने वश में रखना है। मिताक्षरा में धैर्य का लक्षण इस प्रकार है। "इष्टवियोगेऽनिष्टप्राप्तौ प्रचलितचित्तस्य यथापूर्वमवस्थान धृति" अर्थात् किसी अभीष्ट पदार्थ के जो सब से प्यारा हो, वियोग होने से और अनिष्ट की प्राप्ति होने से अर्थात् किसी विपत्ति के आ पडने पर चलायमान चित्त को जैसे के तैसे स्थिर रखना धृति है।

धैर्य की व्याख्या—धृति एक प्रकार का नियम है। क्योंकि बिना धैर्य के सांसारिक विषयों में फँसे हुए चित्त को दुखदायक पदार्थों में जाने से रोक रखना महा कठिन है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो शक्ति नियमपूर्वक मनुष्यों को असत्कार्य से हटा कर सत्कार्य में लगावे वही धृति है। क्योंकि प्राय मनुष्य असत्कार्य को बुरा समझते हुए भी उस ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। इसीका नाम अधीरता है। इसकी निवृत्ति करना धीरता वा धैर्य है। अतएव कालिदास ने कहा है कि "विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीरा" अर्थात् विकार के साधन रहने पर भी जिसका चित्त

न हो वही धीर है—धीरता उन्हीं में है। कोई-कोई [illegible] धैर्य, धारणा, ध्यान और धृति भी लिखा है। जब कोई इस कार्य में संयोग करा देता है तब धैर्यवान नाम धीर होता है। इस पदार्थ में निरन्तर ध्यान रखने से धैर्य ध्यान के नाम से भी पुकारा जाता है। धैर्य अपने नियम में सदैव कायम रहने से धारणा कहलाता है। और, सन्तोष के साथ अनेक विघ्नों और बाधाओं को सहता हुआ अपने नियम पर आरूढ़ रहता है इससे धृति का नाम तुष्टि भी है।

अधीरता के अवगुण—जो धीर विघ्नों के भय से कार्य आरम्भ नहीं करते और जो सामान्य व्यक्ति कार्य आरम्भ बीच ही में छोड़ देते हैं इसका कारण उनकी अधीरता है। यदि वे धीर रहते तो अवश्य कार्य करते और कार्य कर कभी नहीं छोड़ते। और, जो सज्जन कार्य आरम्भ बार बार विघ्नों का सामना करके भी आरम्भ किये कार्य को नहीं छोड़ते उसका कारण केवल उनकी धीरता है। यदि यह गुण उनमें नहीं रहता तो वे कभी विघ्न के सामने न टह सकते। बहुत लोग धीरता न रखने के कारण २ कामों में गाढ़ी पूँजी गँवाते देखे गये हैं। यदि वे कुछ तक धीरता से कार्य चलाते रहते तो कभी उन्हें घाटा न पड़ता। अधीर होना बड़ी दुर्बलता है।

धीर प्रशंसा—जो धीर है उनका निश्चय भय विपत्ति के से भी कभी नहीं डिगता। यदि वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं उनके लिये सारी पृथ्वी पर का [illegible] और [illegible] । [illegible]

फँसा सकता और यदि वह धीर चाहे तो सम्पूर्ण जगत् को धीरता से जीत कर वश में कर सकता है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

नीति जानने वाले भले ही निन्दा वा स्तुति करें, लक्ष्मी भले ही आवे चाहे जाय आज मौत हो वा युग के बाद मौत हो पर धीर न्याय-पथ को कभी नहीं छोड़ सकते।

जब आदमी स्त्री, पुत्र, तथा प्रिय बन्धु के वियोग में पड़ जाता है। जब अपने धन धान्य से हीन हो जाता है और जब कठिन आपत्ति आ जाती है उस समय केवल धैर्य ही एक सहारा रहता है। यदि वह छोड़ दे तो आदमी तीन तेरह हो जा सकता है। यदि वह धैर्य धर कर स्थिर रहे तो वह सुस्थ बना रहता है। धीरे २ उसका शोक मिटता जाता है और यथासमय सुख सम्पत्ति को प्राप्त भी करता है।

धृति के भेद—गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने तीन प्रकार के धैर्य कहे हैं—सात्विकी, राजसी और तामसी। जिस धीरता से मन, प्राण और इन्द्रियों के व्यापारों को रोका जाय वह सात्विकी धीरता है। जिससे फल की इच्छा रखते हुए अर्थ, धर्म और काम को धारण किया जाय वह राजसी धृति है और जिस धीरता से दुर्बुद्धि, व्यक्तिभय, शोक, विषाद और मद का कभी त्याग नहीं हो वह तामसी धीरता है। इनमें सात्विकी धीरता ही सब से बढ़ी चढ़ी है। मनुष्यों को उचित है कि इसके लिये सात्विक भोजन, सात्विक विचार और सात्विक व्यवहार करें।

उपसंहार—धृति सब धर्म कर्म की जड़ है । धैर्य के [illegible]ना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता । जो धीर हैं उनके लिये सब कुछ है, अधीर के लिये कुछ नहीं ।

प्रश्न—ईश्वरनिष्ठा, [illegible], सन्तोष, दम और शील पर एक एक [illegible] ।

(ख) कर्त्तव्य (Duty)

कर्त्तव्य (Duty)

भूमिका—जातीयता की उन्नति के लिये, सदाचार के प्रचार के लिये, राज नियम पालन करने के लिये, दूसरों की भलाई करने के लिये तथा ऐसे ही अन्यान्य कार्यों के लिये मनुष्य जो कुछ करने को बाध्य हैं वही कर्त्तव्य है। जैसे माता, पिता, गुरु और राजा की भक्ति करने को हम बाध्य हैं, इस से उनकी भक्ति करना हमारा कर्त्तव्य है। और जिस कार्य से मनुष्य अपनी आत्मा को सन्तुष्ट तथा शान्त कर सके और दूसरे का कल्याण करके उसका प्रीति भाजन बन सके व[illegible] कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य शब्द के अर्थ में समस्त करणीय [illegible] का समावेश होता है। कर्त्तव्य ऐसे महत्व का विषय है। जिसके पालन में अपना जीवन देना भी नीतिसम्मत है।

आवश्यकता—यह बात सर्वसम्मत है कि प्रत्येक म[illegible] के जन्म के साथ ही साथ कर्त्तव्य कार्य भी निर्धारित हो[illegible] हैं। इसलिये मनुष्य को उचित है कि जिस देश में [illegible] समाज में और जिस कुल में जन्म हो उसकी उन्न[illegible] वृद्धि के लिये सदा प्रयत्न करे। मनुष्य किसी सा[illegible] [illegible] पर पद, किसी अवस्था में और किसी [illegible] कर्त्तव्य कार्य सर्वत्र रहते हैं।

जो आदमी अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझता है वही विद्वान् है। वेद, शास्त्र सभी ही कर्त्तव्य का निरूपण करते हैं और उनके पालने की रीति बतलाते हैं। क्योंकि जीवन कर्त्तव्यमय है। कर्त्तव्य से कोई खाली नहीं है। कुछ कर्त्तव्य नीचे लिखे जाते हैं।

कर्तव्य – ईश्वर की भक्ति करना, उसकी इच्छानुसार चलना, माता, पिता और गुरु की आज्ञा पालना, उनमें भक्ति और विश्वास रखना, साधु, महात्मा और बड़ों का सम्मान करना, भाई बहन का प्यार करना तथा यथासमय उन्हें सहायता पहुँचाना, नौकरों के साथ सद्व्यवहार करना, सब से कृतज्ञता, सत्यता, न्याय, शुद्धता, साधुता और सहानुभूति रखना, तथा सब पर दयालु बना रहना, समाज में सद्भाव फैलाना और उसमें शिक्षा और उद्यम बढ़ाना, सर्व साधारण की भलाई के लिये मिलजुल कर काम करना, दूसरों के लिये स्वार्थ-त्याग करना, अनाथालय बनवाना सदाचार फैलाना इत्यादि इत्यादि हमारे कर्त्तव्य हैं।

हम सबों को चाहिये कि दूसरों को यथाशक्ति सहायता दें और उनसे प्रसन्न-चित्त से भाषण करें। अभ्यागत और अतिथियों को कभी विमुख होने न दें। पशुओं से दया पूर्वक व्यवहार करें और काम लें तथा उन्हें सब प्रकार आराम पहुँचावें। हम अपना स्वास्थ्य ठीक रक्खें नहीं तो शारीरिक, मानसिक और नैतिक कुछ काम भी कर नहीं सकते। मानसिक शक्तियों का विकाश करना भी आवश्यक है। हमें चाहिये कि आत्मदमन में हृदय से उचितानुचित विचार कर कुछ करें। ये ही सब कर्त्तव्य हैं। हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि बाल्यावस्था में विद्याभ्यास करें, युवावस्था में,

सब कार्य करने का समय है, अपने दैहिक, सामाजिक और पारिवारिक समस्त कार्यों को सिद्ध करें तथा वृद्धावस्था में सच्चिदानन्द के चिन्तन में जीवन मग्न करें।

कर्तव्यहीनता के दोष—जो मनुष्य अपना कर्तव्य नहीं जानता वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है। जो लोग कर्तव्य-ज्ञान-विमुख हैं वे तो अपने जीवन को पशुवत् खाने-पीने और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते हैं। बल्कि पशु से भी वे गये बीते हैं। क्योंकि पशु तो परिश्रम करके अपना पेट पालते हैं पर वे आलसी बने रहते हैं। इसलिये उनकी तुलना उनसे न कर उन्हें राक्षस कहना चाहिये। ये अपने समाजरूपी वाटिका के सुमन-समान कर्तव्यशील पुरुषों में कलहरूपी काँटा बन कर दूसरों को दुःख पहुँचाने में ही अपना जीवन नष्ट करते हैं। इससे सभीको हमेशा कर्तव्य-ज्ञानी होना चाहिये।

कर्तव्य-ज्ञान से लाभ—कर्तव्य मनुष्य चरित्र का भूषण है। जो व्यक्ति चरित्रवान बनना चाहे तो अपने कर्तव्य का ध्यान रक्खे। जभी मनुष्य अपने कर्तव्य से विच्युत होगा तभी वह अपने चरित्र से भी अलग जा पड़ेगा। कर्तव्य ज्ञान-दर्शन का एक प्रधान अङ्ग है। विलिंगटन, वाशिंगटन, नेल्सन, विद्यासागर आदि कर्तव्य का महत्त्व समझते थे। कर्तव्यज्ञान से जीवन उच्च से उच्च हो सकता है। हमें भी कर्तव्य ही के जीवन पर जीना चाहिये। हमें जीवन को सच्चा वीर जीवन बनाने के लिये अविलम्ब ही निरन्तर 'कर्तव्य' शब्द का चिन्तन करना परम प्रयोजनीय है। समझना चाहिये कि कर्तव्य-बुद्धि (Sense of Duty) ही सर्वोपरि है और यही आवश्यक जीवन के कार्यों को बनाती है।

"Duty alone is true, there is no true action but in its accomplishment"

कर्त्तव्य पालन (Do your duty)

"धन जाय, मान जाय, प्राण जाय, पर अपने कर्त्तव्य-पालन से कभी विमुख न होंगे।" यह जिनकी प्रतिज्ञा है वे ही संसार में महान हैं। कर्त्तव्यशील पुरुष अपने लाभालाभ की ओर दृष्टि न रखकर कर्त्तव्य पालन ही पर अपना प्रधान लक्ष्य रखता है। कोई २ भय से और कोई २ लोभ से अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं, पर यथार्थत वह कर्त्तव्य-पालन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्वार्थवश सब तो कुछ न कुछ करते ही हैं। जो लोग समझते हैं कि यह मेरा करणीय कार्य है और मैं ही इसे करूँगा, और जिन्हें इसके सिवा कोई अन्य चिन्ता नहीं रहती वे ही कर्त्तव्य परायण हैं।

कर्त्तव्य-पालन स्वाभाविक है। इसमें कुछ कृत्रिमता नहीं है। जो कर्त्तव्य-पालन नहीं करते वे प्रकृति के नियम में बाधा पहुँचाते हैं। पिता-माता का काम है सन्तान का पालन पोषण करना और सन्तान का काम है उनकी आज्ञा-पालन ... है शिष्यों को सुपथ में

यह उसका कर्त्तव्य नहीं है। ऐसा करना उसका अधर्म कहा जा सकता है। अतएव मनुष्य अपने २ कर्त्तव्य को कर्त्तव्य-बुद्धि से ही करे न कि कारणवश।

परोपकार स्वार्थत्याग, दया आदि का कार्य कोई क्यों करता है? यह समझता है कि यह मेरा कर्त्तव्य है। शिक्षक वेतनभोगी होकर भी पढ़ाने का काम तन्मयता से करके वेतन का फल दे देता है। पर जो वह निरन्तर अपने शिष्य का शुभानुध्यायी बना रहता है उसका वेतन तो वह पाता नहीं। फिर क्यों वह ऐसा करने लगा? केवल इसीलिये कि पढ़ा देने ही से मेरा कर्त्तव्य-पालन नहीं होता। मेरे कर्त्तव्य अभी और हैं। जब स्वाभाविक कर्त्तव्य परायणता की उज्ज्वल और महत्तर शक्ति अन्तःकरण में संचार करने लगती है तब पता नहीं लगता कि स्वार्थचिन्ता, लोभ और लालच कहाँ मन से दूर जा पड़े हैं। अगर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय हो तो उसमें परम धर्म होता है। जैसा कहा है—

कर्त्तव्यमाचरन्कर्ममकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वै धर्म इति स्मृतः।

एक बार ट्रफलगर के युद्ध में नेलसन ने अपने वीर सिपाहियों से कहा था "England expects every man to do his duty" अर्थात् इंग्लैंड की यही प्रत्याशा है कि सभी अपना २ कर्त्तव्य पूरा करेंगे। यह कहने का उपक्रम दिखाने, या कर्त्तव्य-बुद्धि के जागृत करने का यह परिणाम हुआ कि सभी योद्धाओं के मन में उत्साह और जातीयता की गौरव-रक्षा का भाव जागने लगा और कर्त्तव्य-पालन के बाद में इतना बल दिया कि वे तत्पर होकर लड़े। अब असम्भव कि शत्रु-सेना उनके सामने ठहरे। उनकी

"Duty alone is true, there is no true action but in its accomplishment"

कर्त्तव्य-पालन (Do your duty)

"धन जाय, मान जाय, प्राण जाय, पर अपने कर्त्तव्य-पालन से कभी विमुख न होंगे।" यह जिनकी प्रतिज्ञा है वे ही ससार में महान है। कर्त्तव्यशील पुरुष अपने लाभालाभ की ओर दृष्टि न रखकर कर्त्तव्य पालन ही पर अपना प्रधान लक्ष्य रखता है। कोई २ भय से और कोई २ लोभ से अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं, पर यथार्थत वह कर्त्तव्य-पालन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि स्वार्थवश सब तो कुछ न कुछ करते ही हैं। जो लोग समझते हैं कि यह मेरा करणीय कार्य है और मैं ही इसे करूँगा, और जिन्हें इसके सिवा कोई अन्य चिन्ता नहीं रहती वे ही कर्त्तव्य परायण हैं।

कर्त्तव्य पालन स्वाभाविक है। इसमे कुछ कृत्रिमता नहीं है। जो कर्त्तव्य-पालन नहीं करते वे प्रकृति के नियम में बाधा पहुँचाते हैं। पिता-माता का काम है सन्तान का पालन-पोषण करना और सन्तान का काम है उनको आज्ञा पालन करना। गुरु का काम है शिष्यों को सुपथ में प्रवृत्त करना, उन्हें सत् शिक्षा देना और उनकी मङ्गल-कामना करना और शिष्य का काम है गुरुभक्ति पूर्वक सेवा-शुश्रूषा करना तथा प्रणत हो उनका आदेशानुवर्ती होना। ऐसे ही पति-पत्नी, स्वामी सेवक तथा राजा-प्रजा, धनी, गरीब, विद्वान् आदि सभी के यथोचित कर्त्तव्य हैं। यदि माता-पिता अपने कर्त्तव्य के विरुद्ध सन्तान को विष दे, सन्तान उन्हें गाली दे और लाठी मारे, शिष्य गुरु की उपेक्षा करे, गुरु शिष्य को कुमार्गी बनावे तो उनका यह कार्य प्रकृति विरुद्ध कहा जा सकता है।

यह उनका कर्त्तव्य नहीं है। ऐसा करना उनका अधर्म कहा जा सकता है। अतएव मनुष्य अपने २ कर्त्तव्य को कर्त्तव्य-बुद्धि से ही करे न कि कारणवश।

परोपकार, स्वार्थत्याग, दया आदि का कार्य कोई क्यों करता है? यह समझता है कि यह मेरा कर्त्तव्य है। शिक्षक वेतनभोगी होकर भी पढ़ाने का काम तन्मयता से करके वेतन का फल दे देता है। पर जो वह निरन्तर अपने शिष्य का शुभानुध्यायी बना रहता है उसका वेतन तो वह पाता नहीं। फिर क्यों वह ऐसा करने लगा? केवल इसीसे कि पढ़ा देने ही से मेरा कर्त्तव्य-पालन नहीं होता। मेरे कर्त्तव्य अभी और हैं। जब स्वाभाविक कर्त्तव्य परायणता की उच्च और महत्तर शक्ति उसमें संचार करने लगती है तब पता नहीं लगता कि स्वार्थचिन्ता, लोभ और वासना कहाँ मन में दब जा पड़े हैं। अगर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करें तो उसमें परम धर्म होता है। जैसा कहा है—

> कर्त्तव्यमाचरन्कर्म्ममकर्त्तव्यमनाचरन् ।
> तिष्ठति प्रकृताचारे स वै धर्म इति स्मृतः ॥

एक बार ट्राफलगर के युद्ध में नेल्सन ने रणन धीर सिपाहियों से कहा था "England expects every man to do his duty" अर्थात् इंग्लैण्ड की यही प्रत्याशा है कि सभी अपना २ कर्त्तव्य पूरा करेंगे। यह कहने का उद्देश्य दिखाने, या कर्त्तव्य-बुद्धि के स्मरण कराने का यह परिणाम हुआ कि सभी योद्धाओं के मन में स्वदेश और स्वजाति का गौरव भरा सहर्ष आत्म त्याग और कर्त्तव्य पालन में उसने वाक्य ने इतना बल दिया कि वे उन्मत्त होकर लड़े। फिर क्या अज्ञात कि शत्रु सेना उनके सामने ठहरे। फलतः

जन्मभूमि के मुखोज्ज्वल करने वाले उत्तेजित अंग्रेजों के दुर्द्धर्ष युद्ध के सामने फरासीसी और स्पेनियल सेना ने वश्यता स्वीकार की। कर्त्तव्य पालन के सामने सभी साधनों ने हार मानी।

जो लोग कर्त्तव्यनिष्ठ हैं वे अपने कर्त्तव्य-पालन से किसी समय किसी अवस्था में मुख नहीं मोड़ते। इंग्लैंड के भूतपूर्व विचारपति चीफ जस्टिस ग्यैस्काइन ने इगलेंड के राजा चतुर्थ हेनरी के बड़े बेटे को अनुचित कार्य करने पर कारागार का दण्ड दिया था। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कर्त्तव्य-व्याघात की शङ्का से कलकत्ता सस्कृत कालेज के अध्यक्ष का भी पद त्याग दिया था। एक विधवा के अभियोग पर सुलतान गयासुद्दीन को विचार के लिए काजी ने कचहरी में बुलाया था। ऐसे ही कर्त्तव्य पालन के अनेक उदाहरण इतिहासों और जीवन-चरित्रों में भरे पड़े हैं।

परमेश्वर ने ससार में जिसको जो काम सौंप रक्खा है उसमें उसका जो जो कर्त्तव्य है उसका मनुष्यत्व के साथ यथोचित सम्पादन करना उचित है। कोई व्यक्ति उच्च पदाधिकारी हो या सामान्य पदाधिकारी, कर्त्तव्य पालन ही से सच्चरित्र हो सकता है। क्या देश में और क्या विदेश में जो बड़े कहला गये हैं और हम जिन्हें पूज्य-दृष्टि से देखते हैं उनके माननीय होने का कारण केवल कर्त्तव्य-पालन ही है। मनुष्य कर्त्तव्य पालन से लोक परलोक दोनों में सुखी होते हैं। इससे बढ़ कर दुनिया में कोई वस्तु नहीं है। एक बार ड्यूक आफ वेलिंगटन ने कहा था "There is little or nothing in this life worth living for, but we can all of straight-forward and do our duty"

ईश्वर-भक्ति (Devotion towards God)

ईश्वर शब्द की व्याख्या—जो सब से बड़ा है, जो सब का बनाने वाला है, जो सब के कर्मों का साक्षी है, जो सब की रक्षा करता है, जो सब का शासन करता है, जिसे किसी बात की कमी नहीं है, जिसके ऐश्वर्य का ठिकाना नहीं, जिस की आज्ञा में रह कर संसार के सभी सजीव और निर्जीव पदार्थ अपने २ नियत कार्य को निरन्तर करते रहते हैं, जिस की केवल इच्छा मात्र से ही सृष्टि के सब काम नियत रूप से होते रहते हैं और जिसका प्रकाश और भय जगत के भीतर और बाहर, सब जगह समान भाव से परिपूर्ण रहता है उसी-को सब लोग ईश्वर कहते हैं। यद्यपि उसको कान, नाक, आँख, जीभ, पैर, हाथ आदि इन्द्रियों में से कोई इन्द्रिय नहीं है तथापि वह अपनी इच्छानुसार भली भाँति सुनता है, सूँघता है, देखता है, बोलता है, चलता है और कार्य करता है। उसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। क्योंकि उसके ऐश्वर्य, कार्य और रूप तथा गुण के विषय में निगमागम बहुत कुछ वर्णन कर भी अन्त में नेति २ कह देते हैं।

ईश्वर का अस्तित्व—सभी किसी न किसी रूप में उसका होना अवश्य मानते हैं। कोई उसे साकार कह कर उसको अनित्य मानता है और कोई उसे निराकार कह कर उसकी सत्ता स्वीकार करता है। पर ईश्वर किसी के मन में हो न हो, यह बात नहीं है। यहाँ तक कि नास्तिक जो उस विषय में बहुत विपक्ष होता है तब लोगों के कहने से वह भी ईश्वर का स्वीकार कर लेता है। जो कुछ हो, पर 'ईश्वर है' कहना इससे अधिक और स्पष्ट नहीं। क्योंकि वे मानव

समय पर अपना प्रभाव ऐसा दिखलाते हैं जिससे लोगों को उनके होने में विश्वास करना ही पड़ता है।

इच्छाधीन विग्रह—वे "इच्छारूप" हैं। वे जब जैसा रूप चाहते हैं तब तैसा रूप, बना लेते हैं। कभी नृसिंह तो कभी वराह और कभी कृष्ण तो कभी राम। यही सिद्धान्त मान कर बहुत से आचार्यों ने "साकार ईश्वर" की उपासना चलायी और उन्होंने उन्हीं साकार ब्रह्म या ईश्वर की उपासना कर परम गति भी पाई। बहुत से आचार्य तो समस्त ब्रह्माण्ड ही को "ईश्वर" समझते हैं क्योंकि वे उसे सर्वव्याप्त समझते हैं।

आस्तिक और नास्तिक—जो ईश्वर का होना मानते हैं वे आस्तिक कहलाते हैं और जो ईश्वर का होना नहीं मानते वे नास्तिक कहलाते हैं। जो आस्तिक होता है वह सदा ईश्वर से डरता है, इसलिये वह पाप नहीं करता। उसे यह डर होता है कि "यदि मैं पाप करूँगा तो ईश्वर मुझे दण्ड देगा।" जो नास्तिक है उन्हें किसीका डर नहीं इसलिये वह सदा पाप ही किया करता है। आस्तिक जब किसी महा विपत्ति में फँस कर दुःखी होता है तब ईश्वर का अवलम्ब लेकर धीर बनता है जिससे उसके दुःख हलके हो जाते हैं और वह उस दुःख को ईश्वर का स्मरण करता हुआ सुखपूर्वक पार कर जाता है। किन्तु जब नास्तिक किसी महा दुःख में पड़ जाता है तब वह निरवलम्ब हो कर बड़ी कठिनता से दुःख को भोगा करता है।

ईश्वर की उपासना—ईश्वर को निराकार मान कर उसकी उपासना करने में बड़ी कठिनता होती है। क्योंकि

पहले तो साधारण बुद्धि वाले निराकार को भली भाँति जान ही नहीं सकते । अगर वे किसी प्रकार जानेंगे भी तो चित्त स्थिर कर उनकी पूजा उनसे हो नहीं सकती । दूसरी बात यह कि जब तक साकारोपासना से मन में निरन्तर नारायण का मनन नहीं होगा तब तक निराकार का अन्तरङ्ग में ध्यान ही नहीं जम सकता । इसलिये सर्वसाधारण की सुगमता के विचार से साकार ब्रह्म या ईश्वर की रचना हुई । साकार परमेश्वर का ध्यान, उपासना, सेवा और स्मरण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति बड़ी सुगमता से हो सकती है । ईश्वर की सेवा ही भक्ति है । क्योंकि उसका अर्थ यही है । अनेक प्रकार से ईश्वर की सृष्टि को सहायता पहुँचाना भी एक प्रकार ईश्वर की भक्ति है । मैंने बहुत से मनुष्यों को देखा है जो ईश्वर की प्रतिमा को ही साक्षात् ईश्वर मानते हैं और मन्दिर को भी ईश्वर का वासस्थान समझते हैं । ऐसे ही लोग महा पापी हो कर भी मन्दिर में आ कर (जितनी देर वहाँ रहते हैं उतनी देर तक) किसी प्रकार का पाप नहीं करते और हजारों रुपये देने पर भी झूठ नहीं बोलते । इसलिये वे थोड़ा देर के लिये तो अवश्य ही पाप से बच जाते हैं ।

भक्ति के सुफल—जो सच्चे हृदय से ईश्वर का भजन करता है, उस पर ईश्वर प्रसन्न हो कर उसका मनोरथ अवश्य पूर्ण करता है । जिस प्रकार गौ बछड़े का प्यासा [illegible] की, भूखा रह की और [illegible] की प्रीति करता है उसी प्रकार ईश्वर भी अपने भक्तों की प्रीति करता है । जब मनुष्य भक्ति करेगा तब ईश्वर उसकी प्रीति सदा रक्खा करेगा । भक्तों ही के पास ईश्वर सदा निवास करता है । इस बात को साकार ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है । प्रश्न

भक्त नारद से कहा है—नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।" जो मनुष्य ईश्वर को सदा अपने पास रखना चाहे, वह सच्चे हृदय से ईश्वर की भक्ति करे। उसके लोक परलोक दोनों सुधरेंगे—उसके पास कभी कोई विपत्ति नहीं आ सकती। वह सदा सुखी रहेगा।

उपसंहार—एक विचारवान् कवि ने लिखा है—

"दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय॥"

इसलिये जो सदा सुखी होना चाहे वह सदा ईश्वर का स्मरण करे, भजन करे, सेवा करे, उपासना करे, उसके चलाये नियमों का पालन करे, उस पर विश्वास करे और सच्चे हृदय से उसकी दासता स्वीकार करे। फिर उसे कोई चिन्ता नहीं व्यापेगी और न कोई दुःख ही पास फटकने पावेगा।

प्रोफेसर प० अक्षयवट मिश्र।

राज-भक्ति—(Loyalty)

जो प्रजा का पालन करता है और अपने न्याययुक्त आचरणों से प्रजा को प्रसन्न रखता है वह राजा कहलाता है। जो सदा प्रजा की भलाई की चिन्ता करता रहता है, जो प्रजा को अपने प्राणों से भी अधिक रक्षणीय समझता है, जो कभी कभी कारणवश भी पक्षपात नहीं करता, जो पुत्र को भी अपराधी होने पर उचित दण्ड देता है, जो शत्रु के भी सच्चे गुणों पर मोहित हो कर उसका आदर करता है और जो सदा न्याय ही को अपना प्रधान कर्तव्य समझता है वही राजा 'राजा' है। ईश्वर ने राजा को प्रजा की ही रक्षा के लिये बनाया है। प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का प्रधान

कर्तव्य है। महाकवि कालिदास ने इसी बात को यों कहा है "राजा प्रकृतिरञ्जनात्"। यह राज्य ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि बन कर उसकी रक्षा करता है। प्रजा राजा की अपनी सम्पत्ति नहीं है वरन वह धरोहर या थाती है। उसका निरीक्षक मात्र राजा है। वह उसका शासन और पालन ईश्वर की सत्ता से ही करता है। "राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है"। धर्मशास्त्र भी कहता है कि 'अष्टाना लोकपालाना वपुर्धार्यते नृप'। जैसे प्रजारञ्जन राजा का कर्तव्य है वैसे ही प्रजा का भी प्रधान कर्तव्य यह है कि वह सच्चे हृदय से राजा की—राज कर्मचारी की—आज्ञा का पालन करे, उनके चलाये हुए नियमों पर चले विपत्ति में उनकी पूरी सहायता करे और राजकार्य में उसको उचित परामर्श दे। इसीका नाम राजभक्ति है और है भी यही सच्ची राजभक्ति। जैसे पिता पुत्र, स्वामी-सेवक और गुरु शिष्य का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है वैसे ही राजा प्रजा का भी सम्बन्ध घनिष्ठ है। ईश्वर ने प्रजा के लिये राजा का निर्माण किया और राजा के लिये प्रजा का। जब तक दोनों का यह सम्बन्ध उचित रूप से परिपालित होकर स्थिर बना रहेगा तब तक दोनों सुखी रहेंगे और जगत् को स्वर्ग बनाकर अनूप सुख प्राप्त करेंगे। नहीं तो यह सुन्दर जगत् नरक-निवास हो जायगा। दोनों के परस्पर प्रेम से सारा संसार शान्तिमय होकर समग्र उन्नति करेगा। जिस प्रकार ईश्वर भक्ति मनुष्य मात्र के लिये परम कर्तव्य है उसी प्रकार राजभक्ति भी। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि "मैं ही मनुष्य मात्र का राजा होता हूँ।"

दूसरे युग आवे और आगों में यदि यह प्रश्न हो तो कोई

आश्चर्य नहीं किन्तु राजभक्ति में भारतवर्षीय जनों की बराबरी करने वाला दूसरा देश इस भूमण्डल पर न हुआ, न है और न होगा। भारतवर्षीयों को अपनी राजभक्ति का सच्चा अभिमान है। वे इस शुभ कार्य में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। दूसरे देश के लोग राजा को अपना भाई समझते हैं किन्तु भारतवर्षीय हिन्दूजाति राजा को अपना पिता और ईश्वर समझती है। इसके हजारों उदाहरण हैं। श्रीमहाराज रामचन्द्रजी के न्याय शासन से प्रजा इतनी प्रसन्न हुई कि उनको उसने ईश्वर का अवतार समझ लिया और पूर्ण राजभक्तों ने तो उनको साक्षात् ईश्वर ही समझ लिया। इतना ही नहीं, उनके नाम पर सैकड़ों सम्प्रदाय तथा मत भी प्रचलित हो गये। आज तक भी "राम राज्य" का डंका बज रहा है। तात्पर्य यह कि भारतवर्षीय जैसे सच्चे हैं वैसे ही उनकी राजभक्ति भी सच्ची है। वे राजा को सच्चे हृदय से ईश्वर समझते हैं, भक्ति करते हैं और समय पड़ने पर राजा और राज्य की रक्षा और सेवा के लिये अपना अमूल्य प्राण भी दे देते हैं। राजा के बिना राज्य का कोई काम नहीं चल सकता, क्योंकि सभी कार्य में एक अध्यक्ष की आवश्यकता है। देखने में भी आता है कि कोई कार्य हो उसमें कोई यदि मुखिया नहीं रहता या ऐसा कोई व्यक्ति निश्चित नहीं रहता जिसके आदेशानुसार सभी कार्य करें तो कुछ नहीं हो सकता और सभी सिलसिला बिगड़ जा सकता है। ऐसे ही एक बड़े भारी साम्राज्य में, जिसमें अनेक जाति, धर्म सम्प्रदाय और समाज के भिन्न भिन्न व्यक्ति रहते हैं, अगर राजा न रहे तो बड़ी विश्रृङ्खलता हो जा सकती है और अनेक उपद्रव उठ खड़े हो सकते हैं। इस लिये राजा का होना बहुत आवश्यक है। ऐसे परम प्रयोजनीय राजा

की भक्ति अवश्य करना चाहिये। कभी उसका निरादर करना उचित नहीं। यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि हमारा राजा ऐसा है, वैसा है, बालक है, वृद्ध है इत्यादि। राजा कोई हो, कैसा ही हो, किसी जाति या किसी सम्प्रदाय का हो उसकी भक्ति करना ही हमारा कर्त्तव्य है। इसी आशय को लेकर मनु आदि महर्षियों ने अपने धर्म-ग्रन्थों में लिखा है—

"बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥"

प्रोफेसर प० अक्षयवट मिश्र।

माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य (Duty towards Parents)

भूमिका—इस संसार में जन्म लेकर ऐसा कौन नीच है जो जन्म देने वाले और बाल्यकाल में नाना कष्टों को आप भोग कर सन्तानों को सब प्रकार सुखी बनाने वाले अपने माता पिता के प्रति अपने नियत कर्त्तव्य का न पालन करे और उनकी भक्ति श्रद्धा और पूजापूर्वक आज्ञा न माने।

माता पिता का स्नेह—यदि माता सन्तानोत्पत्ति के समय से ही उसका लालन पालन नहीं करती तो प्राण उसकी रक्षा कर सकता था? लड़कों की समय समय की सेवा सम्हाल यदि माता उसके निवारण की चेष्टा न करती तो न जाने सन्तानों की क्या २ दुर्दशा होती। जब कभी लड़का बीमार पड़ जाता है तो माता का खाना पीना सब कुछ भूल जाता और रात दिन उसके रोग दूर करने के लिये नाना भाँति के उपाय करती, देवता-देवी मनाती और उसके दुःख दूर होने की प्रार्थना करती। यदि जाड़े के दिन में लड़का खाट पर पेशाब कर देता तो वह भींगे हुए बिछौने को अपनी ओर कर लेती और

सूखा उसकी ओर कर देती। माँ का यह सन्तानवात्सल्य अवर्णनीय है। यदि पिता माता को सन्तान-रक्षा में साहाय न दे तो उसका यथोचित पालन नहीं हो सकता। पिता अपने दुख-सुख की परवाह न कर सन्तान को शिक्षित, विनीत और सच्चरित्र होने की सर्वदा चेष्टा किया करता है। वह पुत्र का शिक्षाभार अपने ऊपर लेता है, उसको सत्पथ में चलाता है और उसका भविष्य उज्ज्वल बनाने को हमेशा शिक्षा दिया करता है। उसकी सदा यही इच्छा रहती है कि मेरा पुत्र गुणी यशी, सुखी और चिरायु हो। क्या यह बात और किसीमें सम्भव हो सकती है।

माता पिता के प्रति पुत्र का कर्त्तव्य—जब माता पिता हमारे लिये इतना करते हैं तो हमको उनके प्रति भी कुछ करना अवश्य चाहिये। यह निश्चय है कि उनके किये हुए उपकारों के ऋण से उऋण नहीं हो सकते तथापि हम अपने कर्त्तव्यों से उन्हें कुछ सन्तुष्ट कर सकते हैं। माता पिता को प्रसन्न रखना सन्तान का प्रथम कर्त्तव्य है। जिससे वे सन्तुष्ट हों, जिससे उनका दुख दूर हो और जिससे उनके सुख और आनन्द बढ़ें, वही सन्तानों का अवश्य-कर्त्तव्य है। इसके लिये हमें चाहिये कि पिता-माता की आज्ञा को विना विचारे पालन करें। वे जो आज्ञा देंगे वे मेरे हिताहित के विचार से ही। क्योंकि उनके ऐसा स्वार्थशून्य कोई हितचिन्तक है ही नहीं। आज्ञा पालन के साथ यथोचित भक्ति, श्रद्धा और सम्मान-पूर्वक सब समय प्राण-प्रण से उनकी सेवा करना उचित है। वृद्धावस्था में सब कार्यों में उनकी सहायता, सेवा तथा सुश्रूषा करना, उनकी सुख स्वच्छन्दता के लिये सदा सचेष्ट रहना और उनके अभाव तथा दुःख छुड़ाने के लिये सद

प्रकार प्रस्तुत रहना कर्तव्यपरायण, पितृ-मातृ-भक्त और सुजन सन्तान को सब प्रकार उचित है।

माहात्म्य—शास्त्रों में पितृ-मातृ भक्ति की बड़ी महिमा गायी गयी है। लिखा है—

'भूमेर्गरीयसी माता स्वर्गादुच्चतर पिता'।
'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'॥
'पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परम तपः।
'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रियन्ते सर्व-देवता'॥

इसके उदाहरणों की भी कमी नहीं है। रामचन्द्र अपने माता-पिता की आज्ञा मान वन २ मारे फिरे। श्रवण अपने कांध पर अन्धे माता पिता की बहँगी ढोते फिरे। पिता की प्रसन्नता के लिये भीष्म आजन्म ब्रह्मचारी बने रहे। फरासी बालक कैसाबिएंका जहाज पर आग में जल गया पर अपने स्थान से पिता की आज्ञा के कारण नहीं टला।

उपसंहार—यदि हम माता पिता की सेवा तन मन से करें तो उनका पुण्य अजय होता है। इनकी सेवा से परमेश्वर भी प्रसन्न होते हैं और हम लोगों के लोक परलोक दोनों ही सुधरते हैं।

छात्र और शिक्षकों के कर्तव्य।

(Duties of Students and Teachers)

भूमिका—संसार में कोई ऐसा कर्म नहीं है जो शिक्षा सापेक्ष्य न हो। मनुष्य को कुछ कार्य करना है वह सब शिक्षा से ज्ञात हो। चाहे वह शिक्षा प्राचीन हो या आधुनिक, शिक्षा के बिना कोई कार्य हो ही नहीं सकता। चाहे बालक हो या बूढ़ा हो, सबको शिक्षा की बड़ी भारी आवश्यकता है।

बालक अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि के बोल चाल, चलना-फिरना, उठना बैठना आदि सब कार्यों को देख सुन कर करने लगता है। युवक शिक्षकों से शिक्षा ग्रहण कर शिक्षित होता है। सारांश यह कि सबको समय २ पर शिक्षा लेनी ही पड़ती है।

शिक्षा के प्रकार—शिक्षा दो प्रकार की होती है—एक दृष्टान्त स्वरूप और दूसरी उपदेश-स्वरूप। पहले प्रकार की शिक्षा प्रबल और दूसरे प्रकार की शिक्षा निर्बल है। पहले का प्रभाव अधिक और दूसरे का कम पड़ता है। माता-पिता, भाई-बहन, नौकर-चाकर, साथी-मित्र आदि प्रथम-शिक्षक हैं। इनकी शिक्षा मौखिक नहीं होती। बालक इनकी देखा-देखी बहुत बातें सीखता है क्योंकि बालक अधिकतर अनुकरण शील ही होते हैं। इससे उचित है कि बाल्यावस्था में लड़कों को उच्च आदर्श दिखलाये जायँ। जब बालक कुछ २ प्रौढ़ होता है तब दूसरे प्रकार की शिक्षा के लिये शिक्षा-गुरु के पास आता है। इनकी शिक्षा उपदेश द्वारा होती है। इन्हींके साथ विद्यार्थियों को बहुत काल तक रहना पड़ता है। इससे इन दोनों के पृथक् २ कर्तव्य लिखे जाते हैं।

शिक्षक का कर्तव्य—विद्यार्थियों को सुशिक्षादान, उनकी चिन्ताशक्ति का विकाश-साधन और धार्मिक भाव का उद्दीपन, चरित्र का संशोधन और संगठन, सुशासन और स्नेह-व्यवहार आदि शिक्षकों के प्रधान कर्त्तव्य हैं। छात्रों के सामने अपने उपदेशानुसार उन्हें आदर्श होना उचित है। ऐसा न होने से उनका उपदेश व्यर्थ है। नियमित रूप से छात्रों से उत्तम २ शारीरिक, मानसिक और नैतिक कार्यों को कराना और उन्हें स्वावलम्बी होने की शिक्षा देना भी उन्हें बहुत

आवश्यक है। विद्यार्थी किस प्रकार विनयी, संयमी, सत्यवादी उद्यमी और कर्तव्यपरायण हो सकता है इस ओर ध्यान रखना शिक्षा-गुरु को बहुत उत्तम होगा। इन सब बातों का दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से वर्णन करना अनावश्यक है। क्योंकि आजकल सब लोग इस बात को समझ रहे हैं।

विद्यार्थी का कर्तव्य—शिक्षा-गुरु का हम लोगों पर भारी ऋण है। उनके सदुपदेश से ही हम लोग लोक तथा परलोक में सुख-साधन की शिक्षा पाते हैं। शिक्षा-गुरु की कृपा से ही हम लोग हिताहित और धर्माधर्म का ज्ञान करते हैं। अतएव गुरु के प्रति भक्ति, श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शन करना सर्वतोभाव से हमारा कर्तव्य होना चाहिए। शिक्षक की शिक्षा पर ध्यान देना, उनकी आज्ञाओं का पालन करना, भेंट होने पर सादर प्रणाम करना, उनकी सेवा करना, दुरवस्था में सहायता करना, और उनकी पितृवत् पूजा करना विद्यार्थी के आवश्यक कर्तव्य हैं। उनके सामने विनयी, नम्र और अनुगत बना रहना छात्रों को उचित है। इस प्रकार सुशील और कर्तव्यपरायण बन कर सुशिक्षक के संयोग से विद्यार्थी सब प्रकार सुयोग्य हो सकते हैं।

उपसंहार—मणिकांचन का संयोग जैसे बड़ा दुर्लभ है वैसे ही सुशिक्षक और सुछात्रों का संयोग भी। पर यह सम्भव है कि इनमें से एक भी अच्छे हों तो दूसरे को भी अच्छा कर लेना कोई कठिन बात नहीं है। गुरु अच्छा होगा तो अपने सदुपदेश से और विद्यार्थी अच्छा होगा तो अपने व्यवहारों से एक दूसरे को अच्छा बना दे सकता है। यदि दोनों ही अच्छे हों तो सब प्रकार के कल्याण सम्भव हो सकते हैं।

अतएव सभी शिक्षक और विद्यार्थियों को उचित है कि अपने अ कर्त्तव्यों का पालन कर सब प्रकार सुखी बनें।

प्रश्न—आज्ञाकारिता, स्वदेशानुराग, मातृभाषा प्रेम, देशाटन और विद्याशिक्षा पर यथा एक लेख लिखो।

(ग) गुणदोष (*Virtues and Evils*)

स्वावलम्बन (Self-Help)

भूमिका—संसार के सभी प्राणियों को परमेश्वर ने स्वावलम्बन की शक्ति दी है। उनकी इच्छा है कि कोई जीव निश्चेष्ट न रहे। इसीसे क्या बालक क्या युवा और क्या वृद्ध, सब जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त कुछ न कुछ शारीरिक या मानसिक किसी न किसी प्रकार की चेष्टा में लगे हुए हैं।

अर्थ—जो अपने योग्य कार्य हो—सामाजिक वा जातीय, उसको अपने ही करे और जिस कार्य में अन्यान्य किसीका अनावश्यक साहाय्य बिना लिये ही स्वभाव सिद्ध स्वावलम्बन से सब प्रकार अपनी चेष्टा पर ही निर्भर रहे उसीका नाम स्वावलम्ब है। अर्थात् किसी कार्य में परमुखापेक्षी न होकर निरपेक्ष भाव से अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति-सञ्चालन करके अपनी ही चेष्टा से जो स्वकार्य सम्पादन करना स्वावलम्बन की यथार्थ परिभाषा है।

यह प्राकृतिक गुण है—आत्मनिर्भरता स्वभाव सिद्ध है। ईश्वरीय नियम या प्रकृति ही सभी को स्वावलम्बन की शिक्षा देती है। बालक जन्मकाल से ही छट पट करता है। उसके अङ्ग सञ्चालन से स्वतः स्वावलम्बन की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष होती है। निकृष्ट प्राणियों में स्वावलम्बन चेष्टा जन्मकाल ही से है।

वे आप से आप उठ खड़े होते और प्राकृतिक शक्ति से शीघ्र समर्थ हो जाते हैं।

प्राकृतिक गुण में बाधा—यह प्राकृतिक प्रवृत्ति धनियों के यहाँ प्रायः रहने नहीं पाती। धनी-सन्तान दासी दास के हाथों के दिन-रात खिलौने बने रहते हैं। उन्हें अवकाश नहीं मिलता कि वे स्वावलम्बन सीखें या ऐसे अवसर ही उन्हें नहीं दिये जाते कि वे अपने बल-बूते उठ खड़े हों। इसीसे उनको उठने बैठने और चलने फिरने में बहुत दिन लग जाते हैं। निर्धन गृहस्थ के यहाँ यह बात नहीं है। गरीब के घर छोटे बच्चे मिट्टी, चटाई या पलने पर पड़े रहते हैं। माँ घर का सब काज करती है। लड़के हाथ पैर पटक कर रोते हैं, कुनमुनाते हैं, छटपटाते हैं और कभी चित पट हो जाते हैं। इसका फल यह होता है कि वे शीघ्र ही उठ खड़े होते और सबल हो जाते हैं। यही बात अन्य जीवों में भी देखी जाती है। जंगली पशुओं की अपेक्षा गृह-पशु उतने सबल और समर्थ नहीं होते, क्योंकि उनकी आत्म-निर्भरता मनुष्य-साहाय्य से कम पड़ जाती है। इसलिये गृहपालित पशु निस्तेज और पराधीन तथा वन्य पशु तेजस्वी और स्वाधीन होते हैं।

स्वावलम्बन की आवश्यकता—मनुष्य जीवन में सम्पन्न होने वाला सांसारिक कोई कार्य हो बिना स्वावलम्बन के ठीक सिद्ध नहीं हो सकता। क्या शिल्प-कौशल हो, क्या खाना-पीना हो, क्या पढ़ना लिखना हो और क्या सामाजिक कोई काम हो बिना इसके कुछ हो नहीं सकता। उन्नति तथा अभीष्ट सिद्धि भी इसके बिना कोसों दूर रहती है। स्वावलम्बन के बिना क्या व्यक्तिगत और क्या जातिगत मनुष्य आदर हो

नहीं सकती। इस पृथ्वी पर रह कर जो दूसरे के भरोसे अपने जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है वह ईश्वरीय इच्छा के प्रतिकूल कार्य करता है। क्योंकि ईश्वर की अभिलाषा है कि सभी अपनी उन्नति और अपना पालन आप करें—अपनी वांछित वस्तुयें अपने परिश्रम से ही प्राप्त करें।

स्वावलम्बन का अभ्यास—स्वावलम्बन से आत्मशक्ति प्रकटित होती है। इससे आत्म-निर्भरता में मनुष्य सचेष्ट और सयत्न होता है। चेष्टा से शारीरिक और मानसिक शक्ति का विकाश होता है। बालक बार बार उठता है, गिरता है, एक बार उठ खड़ा हो ही जाता है। घोड़े पर चढ़ने वाला घोड़े पर चढ़ता है, गिरता है, फिर चढ़ने लग जाता है। साइकिल चढ़ने को लोग लाख सिखाते हैं पर जब तक वह स्वावलम्बी हो आत्म-निर्भर, सतर्क, सचेष्ट और सयत्न नहीं होता तब तक उसे साइकिल चढ़ना नहीं आता। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि स्वावलम्बन ईश्वराभिमत है। यही बात शिक्षा-सम्बन्ध में भी देखी जाती है। जो विद्यार्थी शिक्षक से शिक्षा प्राप्त करके अपनी चेष्टा से अभ्यास नहीं करते और गृह-शिक्षक की अपेक्षा रख उसे छोड़ देते हैं उनकी शिक्षा बढ़ती नहीं। जो विद्यार्थी परसाहाय्यापेक्षी होकर यथोचित स्वावलम्बन से पाठाभ्यास नहीं करते उनकी बुद्धि का स्फुरण नहीं होता, उनकी स्मृति शक्ति परिचालित नहीं होती और न उनकी चिन्ताशक्ति की जड़ता ही दूर होती है।

स्वावलम्बन के गुण—स्वावलम्बन उन्नति, सुख-समृद्धि और अभीष्ट सिद्धि का एक मात्र उपाय है। क्योंकि आत्म-निर्भर मनुष्य अध्यवसाय-शील, उत्साही और कर्मकुशल होता है। व्यक्तिगत स्वावलम्बन से सामाजिक स्वावलम्बन और

जिससे जातीय स्वावलम्बन की प्रवृत्ति प्रबल होती है। फिर देशीय स्वावलम्बन दुर्लभ नहीं होता। जिसकी स्वावलम्बन की प्रवृत्ति नहीं उसका मनुष्य-जीवन व्यर्थ है। क्योंकि वह न तो अपना और मनुष्य-समाज का कोई कार्य सम्पादन कर सकता है। जिनमें आत्मनिर्भर शक्ति प्रबल है वे ही प्रकृत मनुष्य कहे जा सकते हैं। स्वावलम्बन ही वर्तमान समय में सब प्रकार फली फूली दीख पड़नेवाली जातियों का मूल कारण है। कहना न होगा कि संसार में जिन महात्माओं ने जन समाज का अत्यन्त उपकार किया है उनकी प्रधान उन्नति का एक साधन या निदान स्वावलम्बन ही है। सुख, सौभाग्य, सम्पत्ति और यश स्वावलम्बी के ही भाग्य में है।

परावलम्बन के दोष—परावलम्बी पुरुष का कोई कार्य नियमित रूप से नहीं हो सकता। जो मनुष्य पर निर्भर है उनकी विद्या और बुद्धि बेकार हो जाती है। अङ्ग प्रत्यङ्ग के परिचालन की क्षमता क्षीण हो जाती है। वे हाथ पैर रखते हुए भी लँगड़े और लूले, सक्षम होने पर भी अक्षम और ज्ञानी होने पर भी मूर्ख हैं। परमुखापेक्षी होकर कोई उन्नति नहीं कर सकता। इसकी अपेक्षा हानिकारक और अवनति-जनक कोई अवनति सूचक अवस्था ही नहीं है। परमुखापेक्षी होने से सांसारिक सभी कार्यों में विफलता आ जाती है। साधारण गृहस्थ भी गृहस्थमर्यादा के वशवर्ती होकर साधारण कार्यों को भी करने में सङ्कुचित हो जाता है। इससे उसकी संसार-यात्रा सुख स्वच्छन्दता से निभती नहीं। [illegible] [illegible] उन्हीं साधारण कार्यों को करके सीखना पड़ता [illegible] है, परिश्रमी होने पर भी [illegible] न करने के कारण [illegible] ही हो जाते हैं। [illegible] आलस्य [illegible]

यूरोप में नहीं है। वहाँ सभी स्वावलम्बी हैं। इसी कारण उनका इतना अभ्युदय और परावलम्बी होने के कारण हम लोगों की इतनी अधोगति है। परमुखापेक्षा की अपेक्षा उन्नति का अन्य अन्तराय नहीं है। पर-प्रत्याशी कापुरुष पुरुष नाम के अयोग्य है।

ग्रीक पण्डित ईसप् ने स्वावलम्बन पर यों एक कहानी लिखी है—'एक गाडीवान् की गाडी गहरे कीचड़ में फँस गई थी। गाडीवान ने गाडी पार करने की बडी चेष्टा की, बैलों को बहुत मारा पीटा, पर गाडी टस से मस न हुई। अन्त में हरक्यूलस नामक एक शक्तिधर देवता का स्मरण करने लगा। देवता ने प्रकट होकर कहा—"निश्चेष्ट होकर भगवान् के स्मरण करने से तो वे सहायक होंगे नहीं। पहिये में काँध लगाओ और साथ ही ईश्वर को भी पुकारो, तब देवता प्रसन्न होंगे।" यह कह देवता अन्तर्धान हो गये। शकट-चालक ने ऐसा ही किया। शकट सङ्कट-मुक्त हो गया। देवता के कहने का उसने यह अभिप्राय निकाला कि "अपने प्राणपण से चेष्टा न करने से ईश्वर भी उसके कार्य को नहीं करते।" तब तो कहा है कि—

God helps those who help themselves.

स्वावलम्बन की सीमा—सब अवस्थाओं और सब कार्यों में स्वावलम्बी बन सब कुछ करना अविवेक का काम है। परकीय साहाय्य जितना ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक हो उतना ग्रहण करना कर्त्तव्य है। बालपन में पिता माता का, विद्यार्थी अवस्था में शिक्षक का, सांसारिक अवस्था में गुरु-जनों का, किसी गुरु कार्य में सर्व साधारण का और ऐसे ही परसहायता के बिना जो कार्य न होने वाले हैं उनमें

साहाय्य लेना परम प्रयोजनीय है। सहायता का समय बीत जाने पर अपने स्वावलम्बन की शक्ति का परिचय देना अकर्तव्य है। अधिक साहाय्य लेने से अपनी कार्य क्षमता प्रस्फुटित होने नहीं पाती। स्वावलम्बन के उदाहरण में विद्यासागर, नेपोलियन बोनापार्ट, बेंजमिन फ्रैंकलीन आदि अनेक महात्मा हैं।

उपसंहार—हमारे सब आवश्यकीय सामानों को अन्यान्य देशों ने प्रस्तुत कर दिया है। हम झटपट उन्हें लेते और व्यवहार में लाते हैं। इससे हममें आलस्य खूब छा गया है। हम लोग इनके लिये कुछ नहीं कर सकते। जापान आज दियासलाई बन्द कर दे, विदेश से सूई, तागा न आवे तो हम लोगों के यहाँ रसोई बननी मुश्किल हो जाय—कपड़ा पहनने में मारे जायँ। यह कैसे लज्जा की बात है। सौभाग्य का विषय है कि उदार नीतिक अङ्गरेजों ने हमें व्यावहारिक और व्यापारिक शिक्षा की ओर भी उन्मुख किया है और व्यावहारिक शिल्पविद्यालय भी खोले हैं। विश्वपालक विश्वनाथ विश्वविद्यालय की शरण लेने से हमारी यह शोचनीय अवस्था बहुत कुछ दूर हो जा सकती है। समय आ गया है, अब हमें चाहिये कि स्वावलम्बी बनकर विद्या और कला कौशल सीखें और अपनी जड़ता दूर करें। जब तक हम लोग स्वावलम्बी नहीं होंगे तब तक हमारी यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती और न जाति-समृद्धि की वृद्धि ही हो सकती है।

सदाचारशिक्षा (Good Conducts)

यह वह वस्तु है जो किसी देश या समाज को उन्नति के सब से उच्चतर शिखर पर पहुँचाती है। यह शक्ति और [illegible] है जिससे कोई व्यक्ति संसार में [illegible] कर [illegible]

चरित्र शोधन के केवल इन शक्तियों से मनुष्य अपने उद्देश में कृतकार्य नहीं हो सकता। एक विद्वान या धनवान चरित्र हीन है तो वह मूर्ख या दरिद्र चरित्र हीन की अपेक्षा अधिक भयङ्कर और निन्दनीय है। एक भूखा मनुष्य यदि प्रलोभन में आकर चोरी करता है, चाहे वह अपराधी अवश्य हो परन्तु उस धाढ्य चोर की अपेक्षा जिसके पास खाने पीने का सब सामान मौजूद है, अवश्यमेव उसका अपराध बहुत हलका होगा। इसी प्रकार मूर्ख दुर्वृत्त की अपेक्षा विद्वान दुश्चरित्र समाज में अधिक निन्दनीय होगा।

किसी कवि ने क्या अच्छा कहा है—

विद्या विवादाय धन मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय॥
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

जहाँ दुश्चरित्र विद्या को विवाद, धन को मद और बल को परपीड़ा का साधन बनाता है, वहाँ सुचरित्र इनको क्रमशः ज्ञान, दान और रक्षा का कारण बनाता है। एक और कवि कहता है—

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥

दुष्ट मनुष्यों के लिये विद्या, धन और कुटुम्ब ये तीनों मद हैं। ये ही सुजन के लिये दम अर्थात् संयम के कारण हैं।

प्रिय विद्यार्थियो! जिस चरित्र के बिना विद्या, धन और बल जैसी शक्तियाँ निष्फल ही नहीं किन्तु हानिकारक हो जाती हैं, उसकी मनुष्य के लिये कितनी आवश्यकता है, यह मुझे बतलाना नहीं होगा। चरित्र के महत्त्व और उसकी

आवश्यकता को तो सभी स्वीकार करेंगे। परन्तु ऐसे मनुष्य विरले ही निकलेंगे जो चरित्रवान् कहलाने के वास्तविक अधिकारी हों। बात यह है कि आप लोग दूसरों की दृष्टि में चरित्रवान बनना चाहते हैं, परन्तु जो मनुष्य अपनी दृष्टि में, जो आपे को खूब पहचानती है, गिरा हुआ है वह उन लोगों के सामने, जो उसको बिलकुल नहीं जानते या बहुत ही कम जानते हैं, अपने को बड़ा दिखलाने से क्या बड़ा बन सकता है? यह ठीक है कि संसार में परीक्षक या तत्त्वदर्शी सदा कम होते हैं, इसलिए साधारण और विशेष कर श्रद्धालु पुरुषों में आडम्बर और दम्भ का जादू चल जाता है। पर प्रश्न यह है कि क्या कोई चतुर मनुष्य भी, जो दूसरों को धोखा देने में सिद्धहस्त हो गया है, अपने आप को धोखा दे सकता है? यदि नहीं दे सकता तो वह हजार दूसरों की दृष्टि में माननीय हो, अपनी दृष्टि में तो उसका इतना भी आदर नहीं जितना किसी स्वामी को अपने विश्वासी कुत्ते का होता है। मान लो कि एक मनुष्य को संसार भर निर्दोष कहता है, पर उसका आत्मा पद पद पर उसे दोषी सिद्ध करता है, तो क्या वह सुख की नींद सो सकेगा और सुख की मौत मर सकेगा? चाहे लोग उसके छिद्रों से परिचित न हों और कोई उसे परीक्षा की कसौटी में ही कसता हो, पर "चोर की दाढ़ी में तिनका" इस कहावत के अनुसार उसे सदा यही शंका रहती है कि अब मैं पकड़ा गया और मारा गया। निस्सन्देह ऐसे अपराधी के लिये जिसका अपराध प्रगट नहीं हुआ, यह दण्ड बहुत ही उपयुक्त है।

जितना प्रयत्न मनुष्यों की दृष्टि में अच्छा बनने के लिये कोई करता है, यदि उतना आत्म निरीक्षण और, आत्म संयम

के लिये वह करे तो फिर उसे इस प्रवंचना की, जिससे वह अपने को बना ठना कर दिखलाना चाहता है, आवश्यकता ही न रहे। सच्चरित्र बनने के लिये मनुष्य को सब से पहले आत्म निरीक्षण की आवश्यकता है। इसलिये पहले हमको यह देखना चाहिए कि हममें कौन कौनसी त्रुटियाँ और दोष हैं और वे किन किन कारणों से उत्पन्न हुए हैं। जैसे एक व्यवसायी अपने आय-व्यय की पड़ताल करता है, आमद की वृद्धि के उपायों को सोचता और व्यय की मदों में किफायत निकालता है, उसी तरह हमको भी यह देखना चाहिए कि हमारा आत्मिक कोष किन किन रत्नों से पूर्ण है और उन रत्नों की जगह किन किन कंकर-पत्थरों ने घेर ली है। बस उच्च भावों के रत्नों से अपने हृदय-मन्दिर को सजाना और संकीर्ण भावों और कुसंस्कारों के कूड़े कर्कट को बाहर निकाल कर फेंक देना सच्चरित्रता के मन्दिर में प्रवेश करने की पहली सीढ़ी है।

वे उच्च भाव क्या हैं जो मनुष्य को सच्चरित्र बनाते हैं? सब से पहला गुण जिसको चरित्र की नींव कहना चाहिए, सरलता अर्थात् निष्कपटता है। मनुष्य में चाहे और गुण हों पर यदि उसके व्यवहार में कपट हो तो वह कभी सच्चरित्र नहीं कहला सकता। दाम्भिक और कपटी लोग चाहे संसार में चतुर भले ही कहलावें, पर चरित्र के शुभ सिंहासन पर बैठने के योग्य कदापि नहीं हो सकते। सत्य-परायणता और अन्य सात्विक [illegible] भी इसी गुण के अन्तर्गत है, क्योंकि कपटी और दम्भी [illegible] ही असत्य या व्यवहार का आश्रय लेकर अपने स्वार्थ [illegible] करता है। जिसको अपने आत्मा पर विश्वास है [illegible] को छोड़ कर दूसरों की ओर न ताकना।

दूसरा गुण कृतज्ञता है। जो मनुष्य किसीके उपकार को नहीं मानता वह पशुओं से भी गिरा हुआ है। पशुओं में भी किसी दर्जे तक कृतज्ञता का भाव देखने में आता है। मनुष्य होकर यदि हमने अपने उपकारी को न पहचाना और उसके प्रति कृतज्ञता के भाव को न दिखलाया तो हमसे गाय, बैल, घोड़े और कुत्ते भी अच्छे हैं। मनुष्य की प्रशंसा तो इसमें है कि अनुपकारी और शत्रु के साथ भी भलाई करे। उपकारी के प्रति कृतज्ञ होना केवल अपने कर्तव्य का पालन करना है। पर शोक कि हममें ऐसे नराधम भी मौजूद हैं जो अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये उपकारी और विश्वासी के साथ भी कपट का आचरण करते हैं। ऐसे ही लोगों को लक्ष्य में रख कर किसी कवि ने यह श्लोक बनाया होगा—

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि॥

तीसरा गुण चरित्र का उपयोगी उदारता है। साधु और सज्जन वही है जो मनुष्य मात्र को ईश्वर का पुत्र समझ कर भ्रातृ-भाव से देखता है।—जातीय, दैशिक और साम्प्रदायिक संकीर्ण भाव जिसकी दृष्टि को संकुचित नहीं बना सकते, जो केवल वाणी से ही नहीं किन्तु मन और कर्म से भी—

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

इस पवित्र और उदार भाव का अनुसरण करता है। ऐसा मनुष्य चाहे किसी देश, जाति या सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता हो, वास्तव में वह मनुष्य जाति का भूषण है। यद्यपि मनुष्य का जिनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है उनसे विशेष प्रेम का होना स्वाभाविक है तथापि अपनों से प्रेम करना दूसरों से द्वेष या

केन्द्र हो जाओ। अपने जीवन को इन पवित्र गुणों से अलंकृत करके संसार को दिखला दो कि जिस भारत माता की कोख से बुद्ध जैसे आदर्शचरित्र ने जन्म लेकर संसार में चरित्र की चाँदनी फैलाई, वह अब भी चरित्रोपार्जन में किसीसे पीछे नहीं है।

पं० बद्रीदत्त शर्म्मा।

आत्म-गौरव (Self-respect)

संसार में ऐसा एक भी मनुष्य नहीं है जो अपनी प्रतिष्ठा नहीं चाहता हो, पर ऐसे लोग बहुत थोडे हैं जो अपने को प्रतिष्ठित बनाने का यत्न करते हों।

बहुत से लोग प्रतिष्ठित बनने के लिये दूसरों की सेवा भक्ति करते हैं, अपनी कुल मर्यादा के विरुद्ध चाटूक्ति सुनाया करते हैं और हाथ जोडे खड़े रहते हैं। उनका यह यत्न निष्फल होता है अथवा उस भटके हुए यात्री के ऐसा है जो पूर्व की ओर जाना चाहता हो और पश्चिम जाता हो। यह बात प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा आप करता है उसी की प्रतिष्ठा दूसरा करता है।

साधारण लोग मेरे कहने का अभिप्राय यह न समझ लें कि सभी अपना शिष्टाचार छोड़ कर औद्धत्य प्रगट करें। शिष्टाचार उतना ही रहे जितने में वह शिष्टाचार कहलाता रहे। जब उसका नाम चाटुकार हो जायगा तब चाटुकारी अपनी पूर्व-सञ्चित प्रतिष्ठा से भी रहित हो जायगा, प्रत्युत् जिनका चाटुकार (खुशामद) करेगा वे भी उसे तुच्छ जानकर प्रतिष्ठा के अयोग्य समझेंगे।

योद्धा उस वीर की अधिक प्रतिष्ठा करता है जो अपने अस्त्र-शस्त्र से प्रतिपक्षी को जर्जर कलेवर कर देता है। वीर

उसको और अवज्ञा की दृष्टि से देखता है जो कायर एकान्त से भाग जाता है और एक ही झपट में हाथ जोड़ने लगता है। मनुष्य के शरीर में ही छः शत्रु विद्यमान हैं। उनके वशमें मग्न होना उचित नहीं, उन्हें स्थान देना ठीक नहीं, उनका सत्कार ठीक नहीं, उन्हें बद्धमूल होने देना ठीक अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध यत्न करना है।

बहुत से लोग आत्मगौरव का अर्थ अभिमान समझते हैं और कहते हैं कि मद और आत्मगौरव एक वस्तु है, अतएव आत्मगौरव भी एक समीपवर्ती शत्रु है। इसे बुद्धिमान् कैसे उत्तम समझें? उनसे मेरा निवेदन यह है कि मनुष्य का मनुष्यत्व आत्मगौरव है। जीवन का प्रमाण आत्मगौरव है, विद्या का फल आत्मगौरव है तथा ज्ञान का सार आत्म-गौरव है। अभिमान अथवा मद आत्मगौरव नहीं है, क्योंकि मनुष्य अभिमानी तभी कहा जाता है जब उसमें वह गुण, सामर्थ्य अथवा योग्यता नहीं हो और वह अपने को उसका अधिकारी मानता हो।

जो मनुष्य अपने कुल, जाति, देश और विद्या का गौरव अपने मन में रखता है वह बुरा काम नहीं करता, प्रत्युत दैवात् बुरे लोगों की संगति में पड़ भी जाता है तो अपने आत्मगौरव से कुल, जाति और देश आदि के ध्यान से कोई बुरा काम नहीं करता। वह समझता है कि बुरे कामों के करने से आत्मगौरव अर्थात् जाति, देश और कुल की हानि होगी। लोग मेरे कारण मेरी जाति आदि की निन्दा करेंगे वह मेरी ही निन्दा है, क्योंकि जाति व्यक्ति से पृथक् कोई वस्तु नहीं है।

एक जाति का एक हीन मनुष्य एक निन्दित काम करे

को तैयार था, इतने में किसीने उससे उसकी जाति पूछी इससे उसको अपनी जाति का गौरव स्मरण हो आया और बुरे काम से पृथक् हो गया। यदि वह आत्मगौरव-शाली नहीं होता तो अपनी जाति के स्मरण मात्र से बुरा काम त्याग नहीं करता। आज कल भारतवर्ष के छात्र और अध्यापकों में आत्मगौरव नहीं है, अन्यथा वे अपने पूर्वजों के विद्या प्रेम, अध्यवसाय तथा परोपकार आदि सद्गुणों के स्मरण दिलाने पर भी आलस्य छोड कर उनके लिये उत्कण्ठित क्यों नहीं होते हैं?

प्रोफेसर, प० सकलनारायण पाण्डेय (तीर्थ-त्रयी)।

मिता-चरण (Temperance.)

जिस वर्ष वृष्टि नहीं होती अथवा बहुत ही स्वल्प होती है उस वर्ष अकाल पडने की सम्भावना हुआ करती है यौंही जब अतिवृष्टि होती है तब भी बहुत से खेत बह जाते हैं बहुत से सड जाते हैं इससे अन्न की उत्पत्ति में बाधा पडती है यह प्राकृतिक नियम हमें सिखलाता है कि जो बात मर्यादा बद्ध नहीं होती वह कष्ट का हेतु होती है यदि हम परिश्रम करना छोड दें तो कुछ ही काल में आलसी होकर और धन, बल, मान इत्यादि खोकर नाना जाति के रोग शोकादि का भाजन बन बैठेंगे अथवा अपनी शक्ति से अधिक श्रम करें तो भी शरीर शिथिल एवं मन खेदित होने के कारण किसी काम के न रहेंगे भोजन यदि स्वादिष्ट होने से भूख से अधिक खाएं तो आलस्य और अनपच के कारण भाँति २ के कष्ट सहने पडेंगे तथा अत्यन्त थोडा भोजन करें तो भी निर्बलता-जनित उपाधि समूह झेलने पडेंगे अत. बुद्धिमान् को चाहिये कि जो काम करे परिमाण

भीतर ही करे क्योंकि जीवन को सुविधा-सम्पन्न बनाने के लिये जैसे सभी बातों का अभ्यास रखना आवश्यक है वैसे ही यह स्मरण रखना भी प्रयोजनीय है कि अति किसी बात की अच्छी नहीं होती परिणाम में उसके द्वारा दुःख ही होता है जिन बातों को सारा संसार एक स्वर से उत्तम कहता है उनकी प्राप्ति के लिये भी यदि परिमिति का त्याग कर दिया जावे तो क्लेश और हानि हुए बिना नहीं रहती विद्याध्ययन अथवा धर्म के सञ्चय करने में जितना श्रम किया जाय उतनी ही कल्याण की वृद्धि होती है किन्तु साथ ही यह भी स्मर्तव्य कि यदि हम महापुरुषवर पण्डित [illegible] सम्पत्ति-सम्पन्न परम धार्मिक बनने की धुन में आकर आहार विहारादि के [illegible] की ओर से ध्यान हटा लें तो थोड़े ही दिनों में आरोग्य से रहित हो कर पढ़ने लिखने के काम के न रहेंगे या पढ़ा पढ़ाया निष्फल हो जायगा कृषि वाणिज्यादि के लिए दौड़ने की शक्ति न रहेगी अथवा सञ्चित धन का उप[illegible] दुरुपयोग हो जायगा भलाई बुराई का यथेष्ट निर्णय न कर सकेंगे वा जिन सत्कार्यों के करने को जी छटपटाया करेगा वे हाथ [illegible] से ही कठिन हो जायेंगे क्योंकि जिस अंग वा पदार्थ से अत्यधिक काम लिया जाता है वा नहीं लिया जाता वह [illegible] हो जाता है और आवश्यकता के समय काम नहीं दे सकता धन [illegible] किसीकी दशा एक सी नहीं रहती [illegible] समय पर सभी कुछ करने की आवश्यकता पड़ती [illegible] उसकी पूर्ति के उपयुक्त [illegible] अभाव में यदि वह हो सका बहुत [illegible] क्लेश वा हानि अथवा अपकीर्ति पड़ती है जो लोग [illegible] की रक्षा में [illegible] परिमित [illegible] हैं उन्हें [illegible]

का अवसर पडता है उचित व्यय करने के योग्य रुपया नहीं मिलता अथवा जो लोग खाने पहिरने देने- दिलाने आदि में कजूसी करते हैं उनकी ऐसी आवश्यकता के आ पडने पर पैसे २ पर जी निकलता है इन दोनों प्रकार के पुरुष ऐसी अवस्था में जो कुछ करते हैं सतुष्ट भाव से नहीं करते अत बुद्धिमान का कर्तव्य यही है कि जब जैसी ही आ पडे तब वैसे ही बन जाने के लिये सन्नद्ध रहे और यह तभी हो सकता है जब मिताचरण के द्वारा शरीर एव अधिकृत वस्तु मात्र को रक्षित अथच कार्योपयुक्त रक्खा जाय यद्यपि समय विशेष की उपस्थिति में जी खोल कर अपनी शक्ति से कहीं साहस धैर्य उद्योग उदारतादि का प्रदर्शन ही असाधारण पुरुषों का लक्षण है इतिहास में वही लोग गौरवास्पद होते ह जो काम पडने पर अपने धर्म अथवा प्राण तक का मोह न करके,कर्तव्य-पालन का उदाहरण दिखला देते ह किन्तु ऐसा अवसर नित्य नहीं पडा करता जीवन भर में दो ही एक बार वा बहुत हुआ तो दस पांच बेर वित्त बाहर काम करने का समय आता है और उसी में दृढ रहना जन्म-धारणकी सार्थकता का सम्पादन करना है और ऐसे अवसर पर उचित आचरण वे ही दिखला सकते हैं जिनकी आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकार की पूंजी सर्वथा सुस्थिर हो और शनै २ बढती रहती हो यह योग्यता जिसमें न हो वह साधारण जन-समुदाय में भी गणनीय नहीं है तस्मात् इसकी प्राप्ति के लिये पाठकगण को चाहिए कि शरीर के सभी अवयवों और मन की सभी शक्तियों से काम लेते रहा करें पर उतना ही जितने में अधिक थकावट न हो अन्न वस्त्रादि में व्यय भी इतना ही किया करें जितना सामर्थ्य के अन्तर्गत हो दूसरों

व्यवहार करोंगे भी उनका ही देखना करें जिनके लिये इससे अपनी वाणी और वेष भी वैसा ही रक्खना करें जैसा कुल की मर्यादा के विरुद्ध और लोक-समुदाय में नाधिन न हो बस ऐसा ध्यान बना रखने और अभ्यास करते रहने से शिष्टाचारी और सज्जनाधिकारी होने में कोई संशय न रहेगा और आवश्यकता के समय तदनुकूल कार्य पूर्ण-कारिणी सामग्री का अभाव न रहेगा ।

पण्डित प्रताप नारायण मिश्र ।

क्रोध—(Anger)

याद रखिये, क्रोध से और विवेक से शत्रुता है । क्रोध का पूरा शत्रु है । क्रोध एक प्रकार की प्रचण्ड आंधी है । जब क्रोधरूपी आंधी आती है तब दूसरे की बात नहीं सुनती । उस समय कोई चाहे कुछ भी कहे सब व्यर्थ है । आंधी में भी किसीकी बात नहीं सुन पड़ती । ऐसी आंधी के समय बाहर से सहायता मिलना है । यदि कुछ सहायता मिल सकती है तो भीतर मिल सकती है । अतएव मनुष्य को उचित है कि वह पहिले ही से विवेक, सुविचार और चिन्ता को अपने हृदय में भर रक्खें जिससे क्रोध रूपी आंधी के समय वह उनसे ही भीतर सहायता ले सके । जब कोई नगर किसी बलवान् शत्रु से घेर लिया जाता है तब उस नगर में बाहर वस्तु नहीं जा सकती । जो कुछ भीतर होता है वही है । घेराबन्द होने पर भी बाहर की कोई वस्तु नहीं आसकती । इसी लिए हृदय के भीतर सुविचार और होनी है ।

क्रोध ऐसा बुरा विकार है कि वह सुविचार को जड़ से नाश करने की चेष्टा करता है। वह विष है, क्योंकि उसके नशे में भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह, मूर्तिमान मत्सर है, उसके कारण क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य का भी लोग मत्सर करने लगते हैं। क्रोधी प्रत्येक बात पर, प्रत्येक दुर्घटना पर और प्रत्येक मनुष्य पर बिना कारण अथवा बहुत ही थोड़े कारण से बिगड़ उठता है। यदि क्रोध का कारण बहुत बड़ा हुआ तो वह उग्ररूप धारण करता है। और यदि उसका कारण छोटा हुआ तो चिड़चिड़ाहट ही तक उसकी नौबत पहुँचती है। अतएव, या तो वह प्रचण्ड होता है या उपहास-जनक। दोनों प्रकार से बुरा ही होता है। क्रोध मनुष्य के शरीर को भयानक कर देता है, शब्द को कुत्सित कर देता है, आँखों को विकराल कर देता है, चेहरे को आग के समान लाल कर देता है, बात चीत को बहुत उग्र कर देता है। क्रोध न तो मनुष्यता ही का चिन्ह है और न स्वभाव के सरल किम्वा आत्मा के शुद्ध होने ही का चिन्ह है। वह भीरुता अथवा मन की क्षुद्रता का चिन्ह है। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक क्रोध आता है नीरोग मनुष्यों की अपेक्षा रोगियों को, युवा पुरुषों की अपेक्षा बुड्ढों को, और भाग्यवानों की अपेक्षा अभागियों को। जो मनुष्य क्षुद्र हैं, उन्हीं को क्रोध शोभा देता है, सज्ञान, उदार और सत्पुरुषों को नहीं।

जिसे क्रोध आता है वह उसे ही दुखदायक नहीं होता, क्रोध के समय जो लोग वहाँ होते हैं उनको भी वह दुख-दायक हो जाता है। चार आदमियों के सामने किसी छोटे-से अपराध पर नौकर चाकरों को बुरा भला कहना और उन पर क्रोध करना किसीको अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार

क्रोध करना और उचित अनुचित बोलना असभ्यता का लक्षण है। क्रोध ही के कारण स्त्री-पुरुष में बिगाड़ हो जाता है। क्रोध ही के कारण मित्रों का साथ, सभा समाज का जाना, और जान-पहचान वालों के साथ उठना बैठना असम्भव हो जाता है। क्रोध ही के कारण सीधी सादी हँसी की बातों में भयानक और शोककारक घटनायें पैदा हो जाती हैं। क्रोध ही के कारण मित्र द्रोह करने लगते हैं क्रोध ही के कारण मनुष्य अपने आप को भूल जाता है, उसकी विचार-शक्ति जाती रहती है, और बात चीत करने में वह कुछ का कुछ कहने लगता है। क्रोध ही के कारण मनुष्य, किसी वस्तु का चुपचाप ज्ञान प्राप्त न करके व्यर्थ झगड़ा करने लगता है। जिनको ईश्वर ने प्रभुता दी है उनको क्रोध घमण्डी बना देता है। क्रोध सारासार विचार पर पर्दा डाल देता है, उपदेश और शिक्षा को क्लेशदायक कर देता है, धीमान को द्वेष का पात्र कर देता है। जो लोग भाग्यवान नहीं हैं वे यदि क्रोधी हुए तो उन पर कोई कृपा नहीं करता। क्रोध अनेक बुरे विकारों को मिलाता है। उसमें दुःख भी है, द्वेष भी है, भय भी है, तिरस्कार भी है, घमण्ड भी है, कपटीपना भी है, उतावली भी है निर्बोधता भी है। क्रोध के कारण दूसरों को चाहे जितना क्लेश मिले, तथापि जिस मनुष्य को क्रोध होता है उसीको सब से अधिक क्लेश मिलता है और उसी की सबसे अधिक हानि भी होती है।

क्रोध से बचने अथवा क्रोध को दूर करने के लिये क्रोध करना उचित नहीं। अपने ऊपर जो क्रोध करने से क्रोध बढ़ता है, घटता नहीं।

क्रोध से बचाने के लिये मनुष्य को चाहिये कि सब समय

मन में दृढता से पहले यह प्रण करे कि वह उस दिन क्रोध न करेगा, फिर चाहे उसकी कितनी ही हानि क्यों न हो। इस प्रकार प्रण करके उसे सजग रहना चाहिए। एक दिन बहुत नहीं होता। यदि वह एक, दिन भी क्रोध को जीत लेगा तो दूसरे दिन भी वैसा ही प्रण करने के लिये उसमें साहस आ जायगा। तब उसे दो दिन क्रोध न करने के लिये प्रण करना उचित है। इस भाँति बढाते बढाते क्रोध न करने का स्वभाव पड जायगा। क्रोध मनुष्य का पूरा शत्रु है उसके कारण मनुष्य का जीवन दुःखमय हो जाता है। जिसने क्रोध को जीत लिया, उसके लिए कठिन से भी कठिन काम करना सहल है।

क्रोध को बिलकुल ही छोड देना अच्छा नहीं। किसी को बुरा काम करते देख उसे पहले मीठे शब्दों से उपदेश देना चाहिए। यदि ऐसे उपदेश से वह उस काम को न छोडे तो उसपर क्रोध भी करना उचित है। जिस क्रोध से अपने कुटुम्बी, अपने इष्ट मित्र अथवा दूसरों का आचरण सुधरे, ईश्वर में पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो, दया, उदारता और परोपकार में प्रवृत्ति हो, वह क्रोध बुरा नहीं।

सरस्वती-सम्पादक प० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

दया (Kindness)

अर्थ—किसी जीव को पीडित, क्लेशित और दुःखित देख कर उसके क्लेश, पीडा और दुःख दूर करने की जो इच्छा है उसे ही दया कहते हैं। दया मानवीय अन्तःकरण की सात्विक वृत्ति है। जिससे मनुष्यों के मन में मनुष्यत्व का बीजारोपण हो और पशुत्व-भाव दूर हो कर देव-स्वभाव आवे वही दया है।

दया की प्रधानता—परमेश्वर की सारी सृष्टि में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य में जैसी बुद्धि है वैसी और किसी जीव में नहीं है। मनुष्य बुद्धि-बल से क्या निर्बल, क्या सबल, क्या पशु-पक्षी और क्या मनुष्य सब पर अपना प्रभुत्व जमा सकता है। उनसे वह जैसा चाहे, व्यवहार कर सकता है। उसको रोक टोक करने वाला कोई नहीं है। पर इससे यह समझना नहीं चाहिए कि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा है कि वह सबों से यथेच्छ व्यवहार करे। उसने मनुष्यों के हृदय में [illegible], क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, जिघांसा आदि पशु प्रवृत्ति को उत्पन्न कर दिया है वैसे ही दया, दाक्षिण्य, उदारता, सरलता, क्षमा, न्याय आदि दैवीय वृत्तियों को भी दे दिया है। मनुष्य जब काम क्रोधादि का आश्रय लेता है तब नीच, पशु आदि शब्दों से सम्बोधित होता है और जब दया-दाक्षिण्य आदि गुणों को ग्रहण करता है तो लोग उसे दयालु आदि कहते हैं। इन गुणों में दया सर्वोपरि है। हम लोगों को उचित है कि सभी जीवों पर समान भाव से दया-दृष्टि रख [illegible] में [illegible] बनाये रहें और भूल कर भी किसीके साथ क्रूरता का व्यवहार न करें।

स्वार्थ दया—यदि हम अपने किसी आत्मीय व्यक्ति के बीमार पड़ने पर उसके रोग दूर करने के लिये औषधि आदि की व्यवस्था कर देते हैं या उसको कुशल वैद्य [illegible] का प्रबन्ध कर देते हैं और वैसे ही अपने परिवार को गरीब [illegible] खान-पान का प्रबन्ध कर देते हैं या यथासाध्य उनके [illegible] उपयुक्त स्थान दिलाने का यत्न कर देते हैं तो वह दया दया नहीं कही जा सकती। क्योंकि वह दया निःस्वार्थ नहीं है और [illegible] का [illegible] है। यदि हम किसीके लिये [illegible]

अभाव की पूर्ति करूँ और भीतर यह वासना भरी रहे कि मुझे लोग दयालु कहा करें और सर्व-साधारण में मैं इस कर्तव्य के लिये उच्च बन कर रहूँ तो यह भी दया नहीं है, क्योंकि इसमें भी अपना स्वार्थ भरा हुआ है। अतएव नि स्वार्थ भाव से क्या नीच, क्या उच्च, क्या परिचित और क्या अपरिचित, क्या देशी क्या विदेशी, क्या आत्मीय क्या अनात्मीय सब पर समान-भाव से दया-दृष्टि जो रक्खी जाती है वही यथार्थ दया है।

दयालु और निर्दय—जो व्यक्ति दयालु हैं उनका अन्त करण किसी जीव के दु ख को देखते ही दु.खित हो जाता है, उनका हृदय द्रवित हो जाता है, आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। वे उस जीव को उस दु ख से छुडाने का सब भाँति प्रयत्न करते हैं। यदि उसमें कोई विघ्न-बाधा आ उपस्थित होती है तो प्राण-पण से उसके प्रयत्न में बद्ध-परिकर हो प्रवृत्त हो जाते हैं। जो ऐसे व्यक्ति हैं वे ही प्रकृत दयालु, प्रकृत देवता और प्रकृत मनुष्य हैं। इनकी ऐसी ही दया भी प्रकृत दया कही जाती है। जो अपने ही आराम से दुनिया भर को सुखी समझता है, जो आप उच्च २ महलों में अनेक दास दासियों और सब प्रकार की सुख सामग्री के सांसारिक अनेक उपभोगों को भोगते हैं और अपने निकट-निवासी दीन दरिद्रों को नाना कष्ट भोगते हुए देख कर भी जिसके हृदय में नाम मात्र को भी दया का सचार नहीं होता उनके दु.ख दूर कर कुछ भी साहाय्य करने को चित्त में चिन्ता नहीं करता उससे बढकर कोई निर्दय दुनिया में नहीं है।

जीवों पर दया—निरवलम्ब को अवलम्ब देना, दुखियों का दुख छुडाना, भूखों को भरपेट अन्न देना, मगनचनों को

मर डालना देना, भिखमंगी को कपड़ा देना, सब के सुख [illegible]
सहानुभूति दिखलाना आदि कार्यों ही से मनुष्य
का दया-भाव प्रकट होता है। जो धनी है वह धन से, जो
शक्तिशाली है वह शक्ति से, जो बलवान् है वह बल से, जो सब
प्रकार असमर्थ है वह दो चार मीठी बातों ही से और जो
है वह दो चार सदुपदेशों से ही दयापात्र व्यक्तियों
दिखला सकता है। हमें उचित है कि अपने गृह-
पशुओं को भरपेट भोजन देकर, उन्हें दुःखदायक कार्यों
क्या कर सब प्रकार उनका यत्न करें। उपयोग में आने
पशुओं से अत्यधिक काम न लें और उनके साथ क्रूरता
न करें।

दया की उत्तमता—दया सब गुणों में उत्तम है। मानव
में दया ही सर्व-प्रधान धर्म है। दया मनुष्यत्व का
है। दया ही से मनुष्य का महत्त्व प्रकट होता है।
मनुष्य पशुवत् है। दया के आगे पापापाप, देश काल
विचार नहीं है। दया करने से मनुष्य के हृदय में
होता है वह अवर्णनीय है। जो एक बार दुःखियों
कर उसे दूर करता है उस पर ईश्वर प्रसन्न
। अतएव माता पिताओं का कर्तव्य है कि वे अपनी
को दया की शिक्षा दें और उनमें किसी प्रकार
प्रवेश होने न दें। इसमें अनेकानेक लाभ [illegible]
दोनों में होते हैं। जो लोग दीन-दुखियों की [illegible]
[illegible] है और उनकी सहायता करना
[illegible] और करते हैं।
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ने अन्तिम समय में भी निर्बोध घातकों के लिये सर्वान्तःकरण से भगवान् से उनकी क्षमा की प्रार्थना की थी। विद्यासागर ने एक अपना नूतन वस्त्र भिक्षुक को देकर जब आप नंगे होकर अपने घर आये तब माता को सच्चा वृत्तान्त जानने पर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। ऐसे ही दया के अनेकों दृष्टान्त हैं।

उपसंहार—जो मनुष्य जीवन पाकर केवल अपने पेट पोसने के लिये ही लालायित रहते हैं उनमें और अन्य जीवों में कुछ भी भेद नहीं है। यदि मनुष्य अपना पशुत्व से विशेषत्व प्रतिपादन करना चाहें तो दयावान् बनने के लिये उन्हें यत्न करना परम आवश्यक और धर्म है।

अभिमान (Pride)

विद्या, बुद्धि, बल, पौरुष, मान, मर्यादा, कुल, गौरव, धन, जन, राजपाट, धर्म, आचार, और शौर्य, औदार्य्य, दया, दाक्षिण्य तथा सौन्दर्य्यादि गुणों के कारण घमण्ड करने को अभिमान कहते हैं। यह नियम नहीं कि ये सभी बातें समुदित हों तभी उनपर घमण्ड करने को अभिमान कहते हैं। किन्तु इनमें से एक एक के ऊपर गर्व को भी अभिमान कहा जाता है।

यह अभिमान सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है। जिस अभिमान से अपना चाहे कोई लाभ भले ही हो, पर दूसरों को किञ्चिन्मात्र भी उससे हानि न पहुँचती हो, वह सात्विक अभिमान है। अपने लाभ के सिवा इससे दूसरों की हानि भी हो तो उसे राजस अभिमान कहते हैं। और, जब इससे अपने को कुछ लाभ के सिवा अधिक हानि भी उठानी पड़ती हो और दूसरों को तो हानि

हानि भोगनी पड़ती हो तो उसे तामस अभिमान कहते । निदान गुण-भेद के कारण यह अभिमान उत्तम मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार का होता है। इसके अतिरिक्त गुणों के मिश्रण-तारतम्य से इसके और भी अनेक अवान्तर भेद हो सकते हैं, पर तीन ही भेद मौलिक हैं। इसी त्रिविध के सम्बन्ध से जीवमात्र देव, उपदेव या मनुष्य और या राक्षस नाम से अभिहित होते हैं और इसी कार्य- पर ध्यान देने से यह अभिमान क्रमशः सर्वथा , अथवा अनुपादेय और नितान्त ही हेय—ऐसा तीन का माना जाता है।

बहुतेरे विवेकी पुरुष अभिमान मात्र को दोषों ही में हैं और उसे किसी भाँति भी उपादेय नहीं मानते— हेय ही बतलाते हैं। शायद उनका यह तात्पर्य हो अभिमान या उसके पात्र या अधिकारी आज दिन नहीं सकते या हैं ही नहीं, बाकी दोनों प्रकार के अभिमान से अछूते न होने से उपादेय नहीं है तो लाचार सभी कोई निर्विषय होने में और कोई दोषाक्रान्त होने या हेय ही ठहरते हैं इत्यादि।

परन्तु मेरा तुच्छ विचार उन लोगों के इस विचार के बदने या मानने के लिये अनुमति नहीं देता में भी देवस्वभाव मनुष्यों का सर्वथा [illegible] करने का [illegible] या [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible]। और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे हैं कि [illegible] न [illegible], [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इस लोक को छोड़ गये हैं और कई उदाहरण रूप से वर्तमान भी हैं जिनसे मर्त्यलोक को भी अमर्त्यलोक से बराबरी करने का अवसर मिल रहा है। सभी पढ़े लिखे सदाशय और सर्व श्रद्धास्पद मनुष्य उनको अपना आदर्श पुरुष और नेता मानते हैं। हाँ, ऐसे सत्पुरुष विरले ही होते हैं, हजारों में, लाखों में या यों कहो कि करोड़ों में एक ही दो होते हैं—पर होते हैं, रही और हैं भी—इसमें कोई सन्देह नहीं। जैसे सभी पर्वत में मानिक हीरे नहीं होते, सभी वनों में चन्दन वृक्ष नहीं उपजते और सभी हाथियों में गजमुक्तायें नहीं पाई जातीं, पर कहीं २ ये मिलते ही हैं। इसलिये इनका अभाव नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार उदाहरण न मिलने या कम मिलने से उत्तम अभिमान वा उसके पात्र मनुष्यों का अभाव नहीं सिद्ध हो सकता और न वैसा अभिमान दोषों में ही गिना जा सकता और न वैसे उत्तमाभिमानी मनुष्य ही द्वेषी वा कलङ्कित माने जा सकते हैं।

सारांश यह कि—जिस अभिमान से मनुष्य की आत्मा सुविचारी मनुष्यों की दृष्टि में किसी तरह कलुषित न प्रतीत होती हो और जो अभिमान मनुष्य के ऐहिक वा पारलौकिक कार्यों में किसी प्रकार की प्रतिबन्धकता न उपस्थित करता हो, वरन् दूसरों का उससे यथार्थ उपकार भी होता हो, वह अभिमान मनुष्य का दूषण नहीं, बल्कि भूषण है—सर्वथा उपादेय है और उभय लोक साधक है। इसीलिये अपने देश का वेश का, भाषा का सम्मान-गौरव का जातीयता का, धर्म का तथा सदाचार इत्यादि मनुष्योचित विषयों का अभिमान दूषित नहीं समझा जाता, वरन् ऐसे उत्तम अभिमान से अलङ्कृत पुरुष देश के, समाज के और कुल के अलङ्कार समझे

है। प्रत्युत् इस अलौकिक गुण से विहीन मनुष्य, मनुष्य
कहे जाकर असुर, राक्षस और देश तथा समाज के प्रधान
कलङ्क माने जाते हैं। यदि अभिमान मात्र दूषित और हेय
समझा जाता तो सभी अभिमान से रहित विरागी मनुष्य भी
सोऽहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक अभिमान-विशेष से युक्त होने
कारण मोक्ष कभी नहीं पाते पर ऐसा सिद्धान्त नहीं है।
वेद शास्त्र एक स्वर से ऐसे अभिमान विशेष को भी
का साधन बतलाते हैं, जीवन्मुक्ति तो इस सिद्धान्त
निर्भर है। यदि ऐसी व्यवस्था न मानी जायगी तो बन्ध
मोक्ष की सभी व्यवस्थाएँ अव्यवस्थित हो जायँगी,
के साधक बाधक विषय बताने वाले सभी प्रमाण-शास्त्र
हो जायँगे। अतः पूर्वोक्त व्यवस्था ही सर्वथा मान्य
सर्ववादि-सम्मत है। इसलिये अपने को इस उत्तम
अभिमान का अधिकारी बनाने के लिये, इस धर्मी
प्रकार से अपनी आत्मा को अलंकृत करने के लिये
सभी मनुष्यों को प्राणपण से यावच्छक्य प्रयत्न
चाहिए। यही धर्मनीति की मूल भित्ति है।

बाकी दो प्रकार के अभिमानों में से मध्यम (राजस)
लौकिक विचार से कुछ उपयोगी और स्वार्थ-
होने पर भी परार्थ और परमार्थ की बाधकता की
नहीं। इस लिये इसको सर्वथा न तो उपादेय ही
है और न हेय ही समझ सकते हैं। अतएव उत्तम
के मनुष्य यदि मध्यम कोटि के मनुष्यों में अपनी गिनती
करें, तो उनका उचित कर्तव्य है, तो व इसे भले ही
पर उत्तम कोटि के मनुष्यों का तो इससे बचना ही
। जोंकों की तरह इसे भी दूर और दूर

कर मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को भी इससे सर्वथा अलग रहने की सलाह मैं नहीं दे सकता। क्योंकि श्रमविकाशोपयोगिनी राजनीति का मूल यही है। सांसारिक परिस्थिति और भविष्य आत्मोन्नति के लिये इसका सर्वथा त्याग वा इससे सर्वथा उदासीन रहना उतना उपयोगी नहीं जचता, पर तो भी इतना आवश्य कहूँगा कि सावधान और सदाशय मनुष्य चाहे तो इसके निकृष्ट दूसरे अंश से वचकर भी अपना मतलब निकाल ले सकता है।

तीसरा तामस अभिमान अधम है। यह राक्षसी प्रकृति के मनुष्यों का सर्वस्व और प्रधान अवलम्बन है, तथा कूट नीति की जड है। वह उभय-लोक-वाधक होने के कारण वडा ही नीच और सत्यानाशी अभिमान गिना जाता है, अतएव सर्वथा हेय है। इस विषय में औरों के विचार से मैं सर्वथा सहमत हूँ। जो मनुष्य भद्र समाज में प्रविष्ट हुआ चाहे और अपने को दैवी-प्रकृतिक वनाने की कामना रखता हो वह भूल कर भी इस नीच अभिमान को अपने पास तक भी फटकने न दे। मैं उन नवयुवक भाइयों को, जिन लोगों पर ही भविष्य उन्नति की आशा-भरोसा है, इस महा जघन्य अधम तामस अभिमान से कोसों दूर रहने का सत्परामर्श देता हूँ।

यह सिद्धान्त इतना सुबोध और स्वत सिद्ध प्रसिद्ध है कि इसके लिये शास्त्रीय प्रमाणों को उद्धृत करने तथा उदाहरणों को देकर अधिक स्पष्ट और पुष्ट करने की उतनी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, अत वैसा नहीं किया गया।

(श्रीकवि) पं० विजयानन्द त्रिपाठी।

नम्रता (Modesty)

संसार के साम्य-वादियों में शिरोमणि, शिक्षकर्म के दाता नायक कैसी बढ़िया बात बतलाते हैं सो सुनिये—

नायक सबै हो रहे जैसी नन्हीं दूब।
बाढ़ पात सब सूखिये दूब दूब की दूब॥

इस दोहे में से नम्र होने का कैसा अच्छा उपदेश देते हैं हिन्दी साहित्याकाश के पूर्ण चन्द्रमा, कविकुल गुरु तुलसीदासजी भी कहते हैं कि "नवहिं नवहिं बुध पावें।" आपकी समझ से विद्या पढ़ने का, ज्ञान होने बुद्धि से परोपकार रखने का मतलब यही है कि मनुष्य संसार में रहे। जो नम्र होता है, जिसमें विनय रहती है वही समाज में श्रद्धा और विश्वास है।

अकड़ कर चलो, अपने सामने किसीको तिनका भी मत समझो, जो जी अपराध करते भी दुनिया को के लिये तैयार रहो, धन अरु विद्या हो तो सब बरबाद करो, चार पैसे की हिमायत हो तो अपना अपनी हैसियत की हेकड़ी जमा करो तो देखोगे कि थोड़े ही में सारा संसार तुमसे विरुद्ध हो जायगा। सभी पतन के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करेंगे और शक्ति हटाने लिये चेष्टा करेंगे। अभिमानियों और दुर्विनीतों दुनिया दुश्मन है और वह दुश्मनी का असर संसार अपनी है।

तुमसे कोई अपराध किया, उसने तुम्हारे किसी बड़े को तुच्छता का व्यवहार, उसने तुम्हारी शक्ति पर हानि

करने का सकल्प कर लिया। ऐसे-अवसर पर तुम्हीं कहो कौनसी औषधि तुम्हारे अदृष्ट को ठीक रास्ते पर लाने के लिये उपयुक्त होगी? अफसर से लड़ाई कर के कभी तुम उसको उसके सकल्प से विचलित कर सकते हो? अपनी दलीलों और सफाई के सबूतों के ढेर के ढेर सामने पेश कर के भी क्या तुम उसका मन फेर सकते हो? नहीं, इनसे काम नहीं चलेगा। तुम नम्र होकर उससे कहो कि मुझसे यह भूल हो गयी, इस बार क्षमा हो, आगे से ऐसा न होगा। बस सारा झगड़ा यहीं तय हो गया। तुम्हारे नम्र निवेदन के आगे उसके दृढ़ से दृढतर संकल्प को भी झुकाना ही पड़ेगा। नम्र मनुष्यों की विनय-नम्र बातों को सुन जल्लाद भी अपनी नंगी तलवार जमीन पर डाल देता है, झुकायी हुई गर्दन पर भला किसका कठिन हिया होगा जो हाथ भी रखे, हथियार की तो बात ही न्यारी है।

नम्र होने से कोई नीच नहीं होता—नम्रता मनुष्य को और भी ऊँचा बना देती है। नम्र मनुष्य अपने गुणों को आप प्रकट नहीं करता, पर उसके गुण नम्रता के स्वच्छ स्फटिकावरण के भीतर से बिजली की रोशनी की तरह फूट फूट कर बाहर निकलते हैं। छिछोरे ही अपनी प्रशंसा आप गाया करते हैं, अपने को बड़ा और गुणी प्रमाणित करने की प्राणपण से चेष्टा किया करते हैं, पर जो वास्तव में गुणवान् हैं वे बाहर से ऐसे बने रहते हैं कि सरसरी तौर से देखने पर कोई न समझ सकेगा कि ये कितने पानी में हैं।

नीतिशास्त्र के ज्ञाता, पाश्चात्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान सेमुएल स्माइल्स के स्वर में स्वर मिला कर हम भी कहते हैं कि—

उठ गई है, वहाँ नाना प्रकार की कुप्रथाओं—विलासी कुरीतियों तथा नये कुसंस्कारों—ने विकराल मूर्ति धारण कर लिया है। पुनः दिन दिन वह सामाजिक शरीर असाध्य रोगों का शिकार बनता जाता है। इसी प्रकार, विचार दौड़ाकर हम लोग देख सकते हैं कि, एकता द्वारा किस तरह हित-साधन और कल्याण होना सम्भव है। तथा, एकता का तिरस्कार कर देने से, कितनी शीघ्रता के साथ हम लोगों का और सत्यानाश हो जाना निश्चय है।

साधारणतः देखिये, एक हाथ से ताली नहीं बजती। चुटकी भी एक अंगुली से नहीं बज सकती। एक पहिये के बल पर गाड़ी भी नहीं चलती। एक अंग से कैंची भी नहीं चलती। एक कल से लेखनी तक नहीं लिख सकती। यहाँ तक कहते हैं कि, एक पर एक रखने से '११' हो जाता है। एक की पीठ पर निकम्मे सिफर भी लगातार जुड़ते चले जायँ तो करोड़ों की संख्या बात की बात में बन जाती है। चींटियाँ, जो संसार में क्षुद्रातिक्षुद्र जीव हैं, एकता की शक्ति दिखला कर लोगों को चकित बना रही हैं। एक मूल मक्खी को भी बाँध कर फिर रख सकता। लेकिन, बहुत से सूत—एक में एक मिल कर हाथी को भी मिल कर हिलने नहीं देते। यह प्रति दिन ", के सामने सामने काली काली ताक पर रखिये। पंचतत्त्वों की एकता से रचे गये संसार की ओर दृष्टि दौड़ाइये। भी एकता के ज्वलन्त उदाहरण वर्तमान हैं।

शाखाओं के मेल से वृक्ष, पत्तों के मेल से पल्लव, पल्लवों के पुंज की शोभा और शीतल छाया का विस्तार होता फूलों के मेल से गुच्छा और माला की तैयारी होती है। के मेल से एक बड़ी बालटी बन जाती है।

पूर्ण शिक्षा—आर्थिक या पारमार्थिक, वैज्ञानिक या व्यावहारिक, व्याकरण सम्बन्धी या साहित्यिक, किसी प्रकार की शिक्षा क्यों न हो एक में पूर्ण अभिज्ञता होनी चाहिये। एक एक विषय की शिक्षा में एक एक की पारगता होना बहुत आवश्यक है। यद्यपि सब विषयों का थोड़ा थोड़ासा ज्ञान रखना नितान्त सभी को प्रयोजनीय है और इसके लिये चेष्टा भी करनी चाहिये तथापि एक में पूर्ण पारदर्शिता न रखने से उसका महत्व प्रकट नहीं होता और वह विद्वान नहीं कहा सकता। सब विषयों में जो अपूर्ण विज्ञ हैं वे 'पल्लवग्राही पाण्डित्य' कहलाते हैं।

प्रश्न—विद्याध्ययन [illegible] मातृभाषा शिक्षा का फल, [illegible] परीक्षा के [illegible] एक एक लेख लिखो।

द्वितीय परिच्छेद—सामाजिक प्रथा या अनुष्ठान।

(Social customs or Institutions)

बाल्य-विवाह (Early Marriage)

भूमिका—हिन्दू-समाज में आज तक जितनी कुरीतियाँ हैं और उनका जितना बुरा प्रभाव उस पर पड़ा है एक ओर और बाल्य विवाह का बुरा प्रभाव एक ओर है। इससे उसमें जो सर्वनाश का सूत्रपात हो गया है हो रहा है उसको देख कर दुःख से हृदय फट उठता है उसके सामने किसी कुरीति का प्रभाव [illegible] नहीं। यही कारण है कि [illegible] समाज सुधारक [illegible] प्रभावपूर्ण [illegible] एक ओर [illegible] बहु-मूल्य [illegible] को

आवश्यकता—दूषित विवाह चार प्रकार के हैं। बहु-विवाह, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, और बेजोड़ विवाह। विधवा विवाह शास्त्र-दूषित बतलाया जाता है अतएव इनमें उसकी गणना नहीं हो सकती। इन विवाहों की बुराइयाँ सब को विदित है। पर बाल्य-विवाह की बहुत ऐसी बुराइयाँ हे जो प्रत्यक्ष-रूप से नहीं दिखाई पड़तीं। इसी से अन्यान्य तीनों दूषित विवाहों से इसकी विशेषता बहुत बढी चढी हुई है। अतएव इससे बचना सब को उचित है।

मूलोत्पत्ति—विचार से यह ज्ञात होता है कि बाल-विवाह प्राचीन नहीं, आधुनिक है। सम्भवत मुसलमानी साम्राज्य के समय से ही इसका प्रचलन हुआ है। क्यों ऐसा हुआ? इसका कारण गुरुतर है। मोटा-मोटी यह कहा जा सकता है कि क्या धनी और क्या गरीब, किसी के घर युवती कन्यायें उस समय बचने नहीं पाती थी। वे अवस्थापन्न होते ही अधिकारियों की कुदृष्टि में पड कर लूट ली जाती थीं और 'जोइ पहरू सोइ चोर' की कहावत चरितार्थ होती थी। इसी समय से पर्दों की प्रथा प्रचलित हुई और बाल्य-विवाह भी जारी कर दिया गया। जहाँ प्रभुताशाली पुरुष थे वहाँ इस बात की कम सम्भावना थी, इसीसे वहाँ अब तक ये दोनों बातें नहीं हैं—जैसे महाराष्ट्र और पंजाब। लोगों ने मान मर्यादा के संरक्षणार्थ उपाय तो अच्छा निकाला पर समय के फेर से वह बात न रही।

दोष—बाल्य-विवाह होने के सम्बन्ध में कुछ शास्त्रीय और सामाजिक-बातें भी उठायी जाती हैं। वे ये हैं। जिस कुल में कन्या सयानी हो जाती हे उसकी बड़ी बदनामी होती है। कुल में कलङ्क लगने की भी सम्भावना रहती है

जब दोनों सयाने रहते हैं तब उनमें गाढ़ प्रेम नहीं होता और उनका सुख चिरस्थायी नहीं रहता। पुरुष यदि अवस्थापन्न हो कर अपने मन के मोताबिक विवाह करेगा तो कई कारणों से सामाजिक हानियाँ हो सकती हैं। रजस्वला कन्या शास्त्रीय विधि के अनुसार दान के अनुपयुक्त हो जाती हैं, इत्यादि।

दोष निराकरण—ये दूषणीय बातें प्राचीन नहीं, नवीन हैं। ऐसी बातें प्राचीन काल में किसी के मन में नहीं थीं। पहले जब कन्यायें विवाह-योग्य होती थीं तभी उनका विवाह होता था। वे पितृकुल में ही सुशिक्षित हो कर पतिगृह में आ कर को प्रसन्न रखती थीं न कि बाल्यावस्था में आकर घर का बोझ होती थीं। कुल में कलह लगने की बात की कुशिक्षा और कुसङ्ग का फल है। कुलाङ्गनायें गुण-स्वभाव के कारण पति का हृदय अपने वश में के लिये न रख सकें यह कभी नहीं हो सकता। यह कोई नियम नहीं कि अपरिपक्वावस्था ही में विवाह होने से दोनों गाढ़ प्रेम होता है। पुरुष अवस्थापन्न हो कर स्वतन्त्रता विवाह न करे तो कोई बुराई नहीं है। उनका विचार पर निर्भर होगा तो कोई कुफल न फलेगा। ऐसी शास्त्रीय विधि का भी निर्वाह किया जा सकता है। जो यह समझते हैं कि हमारे लड़के वालों का बाल्यावस्था न होगा तो लोग मेरे कुल में नाना भाँति के कलङ्क लगाने लगेंगे—यह उनका भ्रम है और मूर्खता है।

बाल्य-विवाह के दोष—बाल्यावस्था में विवाह करना लड़का-लड़की को चौपट करना है। आजकल जो जैसा स्वभाव देखा जाता है वैसा पहले नहीं थी वैसी शिक्षा पहले मिलती थी वैसी

अब नहीं मिलती। इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। लड़कों की सगति की ओर भी अभिभावकों का कुछ खयाल नहीं है। अतएव आज कल के लडके १० वर्ष लगते न लगते विलासिता की मूर्ति और विषयलोलुप बन जाते हैं। इस अवस्था में यदि विवाह कर दिया, जाय तो उनका पढना लिखना चौपट हो जायगा, वीर्य नष्ट हो जायगा, स्वास्थ्य में हानि पहुँच जायगी, शरीर निर्बल, निस्तेज और नष्ट हो जायगा, और उनसे जो सन्तान पैदा होगी वह भी शारीरिक सारी शक्तियों से हीन, दीन और मलीन होगी। सब से बढ़कर दुःख की बात तो यह है कि लडका जब तक चैतन्य हुआ नहीं, अपने को ठीक तरह से पहचाना भी नहीं कि उसके गले एक और ढोल मढ दिया जाता है। धनी-मानियों को इसका तो दुःख कम होता है पर साधारण अवस्थापन्न व्यक्तियों को निस्सहाय होकर जो कष्ट भोगना पडता है वह वे ही जानते हैं। जिन उच्च जातियों में विधवा-विवाह का प्रचलन नहीं, उनके यहाँ इस बाल्यविवाह के कारण बाल-विधवायें जो मर्मान्तिक यातनायें सहती हैं वह किसी से छिपा नहीं है।

उपसंहार—इन उपर्युक्त बातों को सोच विचार कर विचारवान व्यक्ति बाल्य विवाह का कभी साहस नहीं करेंगे। हो सकता है कि देश, काल और अवस्था के अनुसार कुछ कम उम्र में विवाह हो पर यह खयाल रखना चाहिये कि जब तब कन्या रजस्वला न हो जाय या उसका समय न पहुँच जाय तब तक कन्या का विवाह न करना ही श्रेयस्कर है। इसके लिये उपयुक्त समय तेरह या चौदह वर्ष का है। इसी प्रकार जब तक लडके की अवस्था बीस वर्ष की न हो तब तक उन्हें विवाह के बन्धन में बाँधना नहीं चाहिये। इस अव-

था का पुरुष सबल और सुयोग्य हो सकता है और अपने जीवन-निर्वाह के योग्य शिक्षा-लाभ भी कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युवक सुसंग में रहकर सदाचारपूर्वक अपने ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करें और अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर लौकिक धर्म निबाहें तो कभी भी भावी सन्तानें दुर्बल न होंगी और उनसे किसी प्रकार वंशलोप होने की सम्भावना नहीं रहेगी। ऐसे विवाह बंगाल और महाराष्ट्र में सदा हुआ करते हैं। अन्य प्रान्तों में भी किसी जाति में यह बात है पर अधिकतर बड़ी २ जातियाँ बाल्य विवाह की ही प्रबल पक्षपातिनी हो रही हैं। यह देश और जाति दोनों का बाधक है। ऐसी कुप्रथा को जहाँ तक शीघ्र हो उठा ही देना चाहिये।

प्रश्न—अनमेल विवाह, विधवा विवाह, हिन्दू और मुसलमानों का विवाह [illegible] और [illegible] दहेज की कुप्रथा पर एक छोटा लेख लिखो।

तृतीय परिच्छेद—प्रवाद और सूक्तियाँ।

(PROVERBS AND SAYINGS)

सारल्यं सत्तमो मार्गः

(Honesty is the best Policy)

सारल्य या साधुता दोनों एक ही बात है। सांसारिक कार्यों में सफलता-लाभ के लिये जिन सद्गुणों का अवलम्बन किया जाता है वही साधुता या सारल्य है। आज कल प्रचलित भाषा में इसे ईमानदारी कहते हैं। यही साधुता सब सज्जनों के लिये अलंकार स्वरूप है। तात्पर्य कि कोई कैसा ही काम क्यों न हो उसमें कपट, छल-छिद्र छोड़ कर सदा २ समुचित व्यवहार करना सर्वोत्तम है।

सभी लोग चाहते हैं कि हम कृतकार्य हों—हमारी अभीष्टसिद्धि हो पर उनमें बहुत कम सफल-मनोरथ होते हैं। क्यों? इसका एक यही उत्तर है कि वे अपने अभीष्ट-साधन की कार्यसिद्धि में सत्पथ का अवलम्बन नहीं करते। वे थोड़े से प्रलोभन में पड़ कर अपना प्रकृत पथ छोड़ देते हैं। इसका फल यह होता है कि वे अपने कार्य में हर प्रकार की हानि तो उठाते ही हैं साथ ही साथ लोक में अपयश, कलङ्क और दुर्नाम फैलाते हैं। इस प्रकार के कार्य से चुपचाप बैठे रहना ही अच्छा हो सकता है। क्यों? असाधुता से भी अपने कार्य में सिद्धि की सम्भावना है पर उसका परिणाम बहुत बुरा होता है। क्योंकि कार्य में गुप्त रूप से छिपा हुआ कारण यथा समय प्रकट होकर सभी पोल खोल देता है। अतएव शीघ्र अधिक लाभ के लिये असन्मार्ग का साधन करना अत्यन्त अनुचित है।

खूब सोच विचार कर, आगे पीछे देख सुन कर और फलाफल की विवेचना कर यही उचित जान पड़ता है कि साधुता का पथ ही प्रशस्त और निर्विघ्न है। सत्पथ का पथिक बन परिश्रम से अर्थोपार्जन करना और प्रतिष्ठा पाना शास्त्रानुमोदित है। यद्यपि इस प्रकार कार्य करने में कष्ट है और छल-कपट का जाल बिछा कर सुख से धन कमाना सुखकर है तथापि सत्य से विचलित होकर संसार की मर्यादा लाँघना-प्रशस्त नीतिपथ का अतिक्रम करना उचित नहीं है। संसार में जितने उन्नतिशील पुरुष हुए हैं उनके सहायक धर्म, बुद्धि और परिश्रम ही हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं जो पाप बुद्धि से पैसे कमाकर सौभाग्यशाली बन गये हैं पर उनकी सम्पत्ति विद्युद्विलास के समान क्षणस्थायी है—चिरस्थायी

नहीं। यूरोप की सारी जातियाँ, अमेरिका, जापान आदि अभ्युदयशाली देश केवल साधुता से ही अपरिसीम परिश्रम के द्वारा नाना कलाकौशल और व्यवसाय-बुद्धि की उपासना कर सम्पत्तिशालियों में अग्रगण्य हो रहे हैं।

क्या पढ़ना लिखना, क्या नौकरी करना, क्या कोई व्यवसाय करना और क्या कोई दान-पुण्य करना—सभी कार्यों में साधुता की आवश्यकता है। इसके बिना कोई काम शान्तिपूर्वक चलने का नहीं और न कोई लाभ होने का। पढ़ने लिखने में मास्टर को धोखा देना, उनसे छिपे छिपे पूछपाछ कर प्रश्नों का उत्तर देना, कापी नकल करना, नौकरी में मालिक के मन से काम न करना, उसे बहलाया देना, घूस लेना, अपने लाभ के लिये मालिक को हानि पहुँचाना, व्यवसाय में ग्र[illegible] मूढ़ की मीठी मीठी बातें बनाना, शिष्टाचार दिखला मानों का– ग्राहक को पट्टी पढ़ाकर अपना मतलब गाँठना, ऐसा ठगना [illegible] धोखा और दान पुण्य में दिखलौआ कार्य करना, [illegible] और [illegible] करना आदि जितने प्रपञ्च के कार्य हैं सभी [illegible] के बाधक और हानिकारक हैं। वैसे ही अन्यान्य कार्य [illegible] छिपाके [illegible] सभी बेकार हैं। इनका परिणाम [illegible] होता है कि [illegible] का विश्वास उठ जाता है, [illegible] और [illegible] रहती हैं, और वैसे ही [illegible] पूजा, शान्ति और [illegible] [illegible] आता है। पर इन्हीं मार्गों में साधुता [illegible] [illegible] किया जाय तो थोड़े ही दिनों में विश्वास [illegible] जाता है, सहानुभूति बढ़ जाती है और [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] भी प्रकार हो जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] व्यवहार और [illegible] के [illegible] [illegible] होती है। [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] और [illegible]

का नहीं है । क्योंकि हरेक काम में पद पद पर उसे भय बना रहता है । वह हमेश. इस बात से शङ्कित रहा करता है कि अब मेरी पोल खुली तब खुली । वह बाहर भीतर से सब प्रकार सुखी क्यों न रहे पर उसके हृदय में उल्लास नहीं—प्रसन्नता नहीं, और शान्ति नहीं । उसके मुँह पर सदा कालिमा मिश्रित एक विषादमय छाया बनी रहती है । वह न मालूम निरन्तर मन में क्या २ सोचता रहता है । बहुत सावधान रहने पर भी जब उसकी दुरभिसन्धि खुल पड़ती है तब वह जनसमाज म मुँह दिखलाने के लायक ही नहीं रहता बल्कि लाञ्छना सहित उसे राजदण्ड भी भोगना पड़ता है । पर साधुजीवन इससे एकदम विपरीत है । साधु व्यक्ति सत्पथावलम्बी होकर अपने श्रम से जो कुछ सामान्य उपार्जन करता है उसीसे झोपड़ी में रहते हुए भी जिस उल्लास और आनन्द से तथा जिस शान्ति और निश्चिन्तता से दिन बिताता है उसके नाममात्र सुख को स्वप्न में भी असत्पथगामी व्यक्ति राजप्रासाद में राजोपभोग भोगते हुए भी नहीं पाता । साधु व्यक्ति के मुख प्रफुल्ल, चित्त उद्वेग शून्य और कार्य निश्चल होते हैं । ऐसे व्यक्ति के लिये ससार कर्मक्षेत्र है और उसमें सत्पथावलम्बी होकर परिश्रम करना ही निज कार्य है ।

लोग क्यों असत्पथ का अवलम्बन करते हैं ? इसके कारण तीन हैं—आलस्य, श्रमविमुखता और लोभ । सभी चाहते हैं कि हम धनी हों, सुखी हों, और यशस्वी हों, पर वे परिश्रम करना नहीं चाहते—आलस्य नहीं छोड़ते । इस दशा में उनकी मनकामना पूरी हो तो कैसे ? इसके लिये वे चोरी, ठगी और बेईमानी करने पर उतारू होते हैं । चोर, लुटेरे, धोखेबाज, घूसखोर वगैरह की दुर्दशा देख कहना नहीं होगा

कि इसका परिणाम बुरा होता है। इससे मनुष्य का कर्तव्य है कि या तो लोभ छोड़ दे या लोभी बने तो हड़तोड़ परिश्रम करे। फिर उसे असाधुता के लिये बाध्य होना नहीं पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि सत्पथगामी होने में बहुत कुछ कष्ट झेलना पड़ता है और शीघ्र मनोरथ की सिद्धि नहीं होती, तथापि महाराज हरिश्चन्द्र, नरदेव श्रीरामचन्द्र और धर्मप्राण युधिष्ठिर आदि महापुरुषों की सत्पथगामिता और उसमें सुफल फलते देख कभी अधीर न होना चाहिये। क्या राजनीति, क्या समाजनीति और क्या वाणिज्यनीति सभी नीतियों की सारनीति साधुता है। संसार में कृतकार्य होने के लिये साधुता ही एक मात्र सत्पथ है। इससे कभी किसी को विचलित नहीं होना चाहिये।

अवगुन ही को गहत हैं, गुन न गहैं खल लोक।
पिये रुधिर पै ना पिये, लगी पयोधर जोंक॥

आजकल निन्दकों का अखेड़ा बढ़ा हुआ है जिन्होंने बाट घाट छिपाले या मन्दिरों में जमा हो निन्दा करने का व्रत कर लिया है, फिर भी हम सब लोगों की भलाई ही चाहते हैं क्योंकि हमारा काम सदा सब की भलाई चाहने का है और हम भी इस सिद्धान्त पर आरूढ़ हैं "कोटिन धोखा क्या करै जो सहाय रघुबीर" ईश्वर जो मन-वचन का साक्षी है जानता है कि हम क्या कर रहे हैं और क्या चाहते हैं और हमारे निन्दक महात्माओं के कुटिल चित्तवृत्ति का साक्षी भी वही सर्वान्तर्यामी है सिवा इसके अब भी सिद्धान्त है "[illegible] [illegible]" जिस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के अंतर्गत [illegible] के [illegible] में हम लोग [illegible] हैं तब [illegible]

धर्म के बल से खलप्रकृति निन्दकों की एक नहीं चलती जिस
जिस बात के लिए सिर उठाते हैं भरे मुँह गिरते ही जाते
हैं मसल है "जो टेटुई जीते सग्राम क्यों खरची तुरकी का दाम
है किसी बुद्धिमान् समझदार की समझ का निचोड है"—

"सर्वे यत्र विनेतार सर्वे पण्डितमानिन.।
सर्वे स्वोत्कर्षमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥"

जहाँ सब अपने अपने को अगुआ बनते हैं, सभी अप
को पण्डिताई और बुद्धिमानी में अग्रगण्य माने बैठे हैं अ
सभी अपना २ उत्कर्ष चाहते हैं अर्थात् हमारी ही बात स
पर बाला रहै और सब हम से दबें जहाँ ऐसे २ बल
दिमाग वाले भरे हैं वह समुदाय के दिन चल सकता है ? ।
अब भी समझाते हैं सब कश्मल दूर बहाय मन की मैल स
कर हमारे समान सरल और सीधे जी के बनो हमें अप
शिक्षागुरु मानो, और जिस शुद्ध चित्त से हम तुम्ह
भलाई में प्रवृत्त हुए थे उसे अब भी सोचो सबेरे का भू
साँझ को आवै तो उसे भूला नहीं कहते बहुत भटक
अब भी हमारा कहना अपना हित समझ ग्रहण कीजिये
अन्त में तुम्हें ग्रहण करना ही पडेगा क्योंकि हमने भी
निश्चय कर लिया है "देह वा पातये कार्यं वा साध
आप लोगों ने जो कुछ अनुपकार हमारे लिये करना ठाना
कभी न चूकिए हम आप का सब प्रहार सहने को सु
बैठे हैं, पर तुम्हें बिना राह लगाए न हटेंगे पर न हटेंगे,
करो दो एक लमडों के बहकाने में लगे हो जिससे तुम
अन्धकार छाया हुआ है और न उनके जीते जी यह ता
तिमिर कभी दूर होने वाला है मसल है "हम ने तुम्हारे
बाँसुरी बजाया तुम न नाचे" हम तो हित की बात सु

और तुम्हें बुरा लगे तो लाचारी है दैव ही हम तुम दोनों पर कुछ प्रतिकूल है क्या किया जाय ईश्वरेच्छा ।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट ।

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।

शास्त्र में लिखा है कि "गद्य कवीनां निकषं वदन्ति" अर्थात् कवि की कसौटी गद्य ही है । क्योंकि कविता में तो एक अंश के सुन्दर होने से भी सारा कवित्त अच्छा लगने लगता है पर गद्य में यह बात नहीं है । गद्य तो सर्वांग सुन्दर हो तभी अच्छा लगता है । उसमें एक अंश भी गड़बड़ हो तो गद्य अपने लेखक की बुद्धि का परिचय दे देता है । फिर पद्य में तो छन्द के कारण स्वच्छन्द शब्दों का विन्यास नहीं हो सकता क्योंकि उतने ही लघु गुरु के नियम से कसे हुए शब्द चाहिये, पर यह बात गद्य में नहीं है । गद्य में यदि यथोचित शब्द का प्रयोग न किया जाय तो यह कहने की जगह नहीं रहती कि क्या करें छन्द के परवश हैं । और पद्य का छन्द छोटा हो तो अपनी कल्पना का आकार भी पीट पाट कर छोटा ही करना पड़ता है, और छोटे के आगे विशेष शक्ति रहते भी छोटे ही में विषय समाप्त करना पड़ता है, पर यह गद्य में नहीं है । गद्य में जितनी बात हृदय में आवे बिना तोड़े मरोड़े यथोचित प्रकाशित कर सकते हैं । गद्य में यदि सुन्दरतापूर्वक किसी विषय का प्रति[illegible] न बने तो यह बहाना भी नहीं कर सकता कि क्या करें [illegible] हो गया और आप पद्य में यथास्थान के अनुप्रास [illegible] रसिक) का वहाँ बखेड़ा रहता है, जिसके कारण [illegible] शब्द का भी प्रयोग करके [illegible] में [illegible] पड़ता है, और कभी कभी

भाषा में कुछ विकृति करके कितने ही नये शब्द बनाने पड़ते हैं। जिनसे तत्क्षण ही प्रसादगुण नष्ट हो जाता है और भविष्य काल के लिये अपभ्रंश शब्दों की नेव पड़ती है। गद्य में यह बखेड़ा भी नहीं है। गद्यकर्त्ता यह भी नहीं कह सकता कि पदान्त के कारण हमारी कविता में माधुर्य घट गया। यहाँ तो कुछ भी मधुरता की घटी हो तो अपनी ही अक्षता माननी पड़ेगी जैसे चौपड़ हारने वाले अपनी भूल भी पासे के माथे मढ़ देते हैं पर सतरञ्ज वाले को तो अपनी भूल मानने छोड़ गति नहीं। वैसे ही पद्यकर्त्ता अपने अपाटव पर भी बहुत बात बना सकते है परन्तु गद्यकर्त्ता को शरण नहीं। गद्य में दर्पण की भाँति कार्य की पूरी पूरी शक्ति प्रतिफलित होती है। इन्हीं कारणों से "गद्यं कवीना निकष वदन्ति" यह पुरानी कहावत चली आती है।

साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यास।

प्रश्न—'जहाँ चाह वहाँ राह' 'बुद्धिर्यस्य बल तस्य' 'बुन्द बुन्द सो घट भरे' 'समग्रा' दोषगुणा भवन्ति' और 'कहने से करना अच्छा' इन पर एक एक लेख लिखो।

चतुर्थ परिच्छेद—तुलना और विभेद।

(Comparison and Contrast)

विद्या और विवेक (Know... Wisd...

"Knowledge is proud th... lea...

Wisdom is...

प्राय विद्या और विवेक दोनों परस्पर भिन्न हैं। विद्या का स्थान मनुष्य के 'मस्तिष्क' में और विवेक का 'बुद्धि तथा विचार' में है। हम लोग अच्छी अच्छी उपादेय पुस्तकों से एवम् बड़े बड़े अगडधत्त विद्वानों से विद्या अर्जन करते हैं। किन्तु, विवेक हम लोगों की अपनी ही आभ्यन्तरिक अनुभूति तथा आत्मानुशीलन से उपजता है। संसार भर के पदार्थों का परिचय मात्र करा देना विद्या का सहज काम है। किन्तु, उनके विषयमें सत् असत् का निर्णय, गुणावगुण का निराकरण तथा नीच उच्च का प्रभेद कराना विवेक का स्वाभाविक धर्म्म है।

बिना विद्या के विवेक की स्थिति सम्भव है। किन्तु, बिना विवेक के विद्या के फलवती, गरिमामयी, चिरस्थायिनी, उपकारिणी और विशुद्धा होने में सन्देह है। विवेक हम लोगों को केवल सत्प्रवृत्ति की ओर सञ्चालित करता है। किन्तु, हो सकता है कि विद्वान असद्विचार की ओर झुक पड़ें और उनका पाँव नीचा ऊँचा पड़ जाय। विद्या बतलाती है कि माता से हमारा जन्म हुआ है और भार्य्या से विवाह। किन्तु, दोनों में कितना वास्तविक अन्तर है, यह विवेक ही द्वारा जाता है। विद्या द्वारा अपने आत्मज में तथा परपुत्र में भेद [illegible] सकता है। किन्तु, विवेक द्वारा तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त बद्धमूल होता है। विद्या का क्षेत्र चाहे सङ्कुचित हो तो हो, किन्तु विवेक में सङ्कीर्णता का लेश भी नहीं रहता, बल्कि उसमें उदारता, औदार्य्य की [illegible] है।

यदि विद्या सुन्दर शरीर है तो विवेक है उसका [illegible]। विद्या पुष्प, [illegible]। विद्या—[illegible], विवेक—[illegible]।

विवेक—पराग। विद्या—नौका, विवेक—केवट। विद्या—मणि, विवेक—प्रभा। विद्या—वसन्त, विवेक—कलकण्ठ। विद्या—काशी, विवेक—विश्वनाथ। विद्या—विविधव्यंजन, विवेक—लवण। विद्या—सुन्दरी स्त्री, विवेक—सतीत्व।

विद्या द्वारा चरित्रगठन होना सर्वथा सम्भाव्य नहीं है, पर विवेक द्वारा चरित्र का सुधार और संस्कार होना ध्रुव है। विवेक के विमल वारि से विधौत होकर विचार का कलेवर इतना निर्मल हो जाता है कि भले बुरे की जानकारी हो करके मनुष्य सांसारिक विषय वासनाओं की ओर से हट जाता और सन्मार्ग पकड़ लेता है।

बड़े सौभाग्यसे विद्वानों को आध्यात्मिक ज्ञान उपार्जन करने का सुअवसर प्राप्त होता है। जो लोग केवल किताबों के कीड़े बने रहते हैं, उनकी दृष्टि में स्थूल जगत् के सिवा सूक्ष्म संसार प्रविष्ट नहीं होता। परन्तु, विवेक पुरुष की पैनी दृष्टि में बाह्य जगत् तथा अन्तर्जगत् समान रूप से भासित होता है।

विद्या से अहम्मन्यता हो सकती है, लेकिन विवेक से विनय का विकाश, प्रतिभा का प्रकाश और मानसिक दुर्विकारों का नाश होता है। विद्वान् लोगों की कुण्ठित बुद्धि जब निरन्तर मनन और चिन्तन से विकशित होती है, तब उन्हें अपने ओछेपन का ज्ञान होता है और वे अपनी न्यूनता की पूर्त्ति के लिये यत्नवान् होते हैं। तदुपरान्त, उनकी चेतनशक्ति स्फुरित होती है एवं विचार विमल होते हैं। मगर विवेकी बुद्धि सदा विकशित रहती है और आत्मज्ञान के साथ उनके विचार विशद बने रहते हैं।

विवेक से आध्यात्मिक शान्ति मिल सकती है, क्योंकि इसी के उदय होने से हृदय का मोहान्धकार दूर होता है।

इसी के सहारे योगी जन आत्मानन्दरसलीन हो जाते हैं और निर्वाण पद पर्यन्त पहुँच जाते हैं। लेकिन विद्या में इतनी क्षमता नहीं है जो इस अवस्था तक पहुँचा सके।

शिवपूजन सहाय।

प्रश्न—सम्पत्ति और विपत्ति, सुख और दुःख, पुण्य और पाप, सुगम और कुमार्ग, प्रभयान और नागयान तथा स्वर्ग और नरक इन विषयों पर एक एक लेख लिखो।

पञ्चम परिच्छेद—समालोचनात्मक लेख।

(CRITICAL ESSAYS)

प्रथम पाठ—चरित्र-चित्रण (Character painting)

सीता चरित्र।

संसार में सती पतिव्रताओं के जितने नाम लिये जाते हैं उनमें सीताजी का नाम सर्वोपरि है। क्या विद्वान और क्या मूर्ख, क्या पुरुष और क्या स्त्री, सभी सीता जी को सती साध्वी समझते हैं। इसका कारण रामायण की लोकप्रसिद्ध अलौकिक कथा है। तुलसीदास जी ने तो इस पुण्यकथा का प्रवाह झोंपड़ों तक प्रवाहित कर दिया है। महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी श्रीतुलसीदास इन दोनों महाकवियों ने सीताजी का जो चरित्र चित्रण किया है वह सती चरित्र का आदर्शस्वरूप है।

श्री जानकी जी जनक जी की औरसकन्या नहीं थीं। वे तिन महाराज को खेत जोतते मिली थीं। कोई उनकी एक सीधी सादी लड़की थी। वह जैसी गुणवती थी वैसी परम सुन्दरी भी थी। अतः वह और की सखी के हाथों का

विवेक—पराग। विद्या—नौका, विवेक—केवट। विद्या—मणि, विवेक—प्रभा। विद्या—वसन्त, विवेक—कलकण्ठ। विद्या—काशी, विवेक—विश्वनाथ। विद्या—विविधव्यंजन, विवेक—लवण। विद्या—सुन्दरी स्त्री, विवेक—सतीत्व।

विद्या द्वारा चरित्रगठन होना सर्वथा सम्भाव्य नहीं है, पर विवेक द्वारा चरित्र का सुधार और संस्कार होना ध्रुव है। विवेक के विमल वारि से विधौत होकर विचार का कलेवर इतना निर्मल हो जाता है कि भले बुरे की जानकारी हो करके मनुष्य सांसारिक विषय वासनाओं की ओर से हट जाता और सन्मार्ग पकड़ लेता है।

बड़े सौभाग्यसे विद्वानों को आध्यात्मिक ज्ञान उपार्जन करने का सुअवसर प्राप्त होता है। जो लोग केवल किताबों के कीड़े बने रहते हैं, उनकी दृष्टि में स्थूल जगत् के सिवा सूक्ष्म संसार प्रविष्ट नहीं होता। परन्तु, विवेक पुरुष की पैनी दृष्टि में बाह्य जगत् तथा अन्तर्जगत् समान रूप से भासित होता है।

विद्या से अहम्मन्यता हो सकती है, लेकिन विवेक से विनय का विकाश, प्रतिभा का प्रकाश और मानसिक दुर्विकारों का नाश होता है। विद्वान् लोगों की कुण्ठित बुद्धि जब निरन्तर मनन और चिन्तन से विकशित होती है, तब उन्हें अपने अोछेपन का ज्ञान होता है और वे अपनी न्यूनता की पूर्त्ति के लिये यत्नवान् होते हैं। तदुपरान्त, उनकी चेतनशक्ति स्फुरित होती है एव विचार विमल होते हैं। मगर विवेकी बुद्धि सदा विकशित रहती है और आत्मज्ञान के साथ उनके विचार विशद बने रहते हैं।

विवेक से आध्यात्मिक शान्ति मिल सकती है, क्योंकि इसी के उदय होने से हृदय का मोहान्धकार दूर होता है।

…ा के सहारे योगी जन आत्मानन्दरसलीन हो जाते हैं और …र्वाण पद पर्यन्त पहुँच जाते हैं। लेकिन विद्या में इतनी …मता नहीं है जो इस अवस्था तक पहुँचा सके।

शिवपूजन सहाय।

प्रश्न—सम्पत्ति और विपत्ति, सुख और दुःख, पुण्य और पाप, सुसंग …र कुसंग, ग्रामवास और नगरवास तथा स्वर्ग और नरक इन विषयों पर …र लेख लिखो।

पञ्चम परिच्छेद—समालोचनात्मक लेख।

(CRITICAL ESSAYS)

प्रथम पाठ-चरित्र चित्रण (Character painting)

सीता चरित्र।

संसार में सती पतिव्रताओं के जितने नाम लिये जाते हैं उनमें सीताजी का नाम सर्वोपरि है। क्या विद्वान् और क्या मूर्ख, क्या पुरुष और क्या स्त्री, सभी सीता जी को सती साध्वी समझते हैं। इसका कारण रामायण की लोकप्रसिद्ध अलौकिक कथा है। तुलसीदास ने तो इस पुण्यकथा का प्रचार झोंपड़ी तक प्रचलित कर रखा है। महर्षि श्रीवाल्मीकि और गोस्वामी श्रीतुलसीदास इन दोनों महाकवियों ने सीताजी का जो चरित्र चित्रण किया है वह सती चरित्र का आदर्शस्वरूप है।

श्री जानकी जी जनक जी की अयोनिजरूपा कन्या थीं। जनक महाराज जैसे राजर्षि महर्षि भी थे। सीता उनकी एक ही लाड़िली लड़की थीं। वह ऐसी गुणवती थीं कि सभी … वह और भी सखियों के प्राणों का … [illegible] थीं। अतः वह …

खिलौना बनी रहती थी। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि वह किस यत्न और किस प्यार से पली थी। जैसे यह राजनन्दिनी थी वैसी ही राजवधू होकर आई। यहाँ इसने रूप, गुण और स्वभाव से सास, ससुर आदि सभी को मोह लिया। पितृगृह से कहीं अधिक पतिगृहमें प्रेम और वात्सल्य का भाजन बन गई। कौशल्या जी कहती हैं कि "जीवन मूँरि जिमि जुगवत रहेउँ, दीप बाति नहिं टारत कहेउँ।" अब इससे बढ़ कर यत्न क्या हो सकता है? इस प्रकार लालित और पालित होने पर भी राम-वन-गमन के समय राज-सुख-भोग को जलाञ्जलि देकर पतिपरायणा सीता स्वामी के साथ वन-प्रस्थान के लिये ही प्रस्तुत हो गई। उसने निश्चय कर लिया कि रामरहित राजप्रासाद में राम विरह के बदले वनवास ही सर्वोत्तम है। अबला होकर भी वनवास के दुःखों को कुछ न समझ वह स्वामी की सहवासिनी होकर उनके भाग्य के अंश की भागिनी बन गई। वन में सीता ने स्वामी के सहवास में रह कर उनके चरणकमलों को क्षण २ देखती हुई उनके मन को जोहती हुई निरन्तर उनके मनोविनोद तथा सेवा में लगी हुई लगभग १४ वर्ष तक जो अपार आनन्द का अनुभव किया वह वर्णनातीत है।

सीता के सुख की घड़ियाँ बीत चली। दुःख के बादल उमड़ आये। रावण ने उन्हें हर कर अपनी अशोक-वाटिका में ला रक्खा। प्रिय-विरह-विधुरा जानकी दारुण यन्त्रणा भोगने लगी। इस यमयातनासम मर्मान्तक वेदना को सहती हुई राम-गत प्राणा होकर जिस प्रकार उसने अपने सतीत्व की रक्षा की वह उसी की सी सती शिरोमणि के लिये सम्भव थी। वह चाहती तो प्राण काढ देती पर रामचन्द्र के एकबार दर्शन

किये बिना यह भी नहीं कर सकती थी। वह दिनरात राम ही के स्मरण, चिन्तन और ध्यान में मग्न थी। उसने इस प्रकार हनुमान से अपना मनोभाव प्रकट किया है "नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज-पद यन्त्रिका प्राण जाहिं केहि बाट।" फिर वह इस दुःख से मुक्त हुई भी तो अन्त में राम ने सीता का तिरस्कार कर परित्याग कर दिया। उन्होंने परगृहवासिनी कह कर उसका अङ्गीकार नहीं किया। वह व्याकुल हो उठी। उसका शरीर भार सा ज्ञात होने लगा। उसने सबके समक्ष अग्नि में प्रवेश किया। अग्नि ने उसका स्वागत किया। देवताओं ने उसकी स्तुति की और उसके सतीत्व की शतमुख से प्रशंसा की। सीता सती ठहरी। यह सब कुछ हुआ पर पतिपरित्यक्ता जानकी की स्वयं देव सम पति के प्रति आन्तरिक भक्ति का अणुमात्र भी ह्रास नहीं हुआ। जब सीता बिना कारण पूर्णगर्भ की अवस्था में पति द्वारा परित्यक्त होकर वाल्मीकि के आश्रम में निर्वासित हुई तब उसने सादर प्रणामपूर्वक अपना मनोऽभिप्राय इस प्रकार निवेदन किया कि "मेरा भाग्य ही मेरे इस निर्वासन का कारण है। प्रजापालक राम का इसमें कुछ भी दोष नहीं है।" सीता समझती थी कि मुझ से वह बहुत प्यार करते हैं। मेरे पति स्वार्थी हैं—मैं परप्रेमी हूँ—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं धन्य हूँ जिनके पति प्रजारञ्जनकारी महान् राजधर्म के प्रतिपालनार्थ प्राणाधिका परित्यक्ता नारी के परित्याग में अग्रसरित हैं और प्रयोजन पड़ने पर [illegible]। प्राणों के परित्याग में भी संकोच न होगा। धन्य! सती सीता के सिवा इस प्रकार सहनशीलता, धीरता, [illegible] आत्मसंयम की ऐसी अद्भुत क्षमता, [illegible]

णता और स्वामी के दोष-दर्शन में ऐसी पराङ्‌मुखता अन्य किसी साध्वी स्त्री के लिये असम्भव है। यदि वह यह समझती कि राम अपनी प्राणप्यारी को निष्प्राण होकर परित्याग करते हैं तो वह कभी मर गयी होती, पर नहीं। वह जानती थी कि मेरे निर्वासन के समय राम मर्माहत हुए हैं—उनकी ममता मुझमें बहुत है। इसीसे राममयजीविता जानकी जीवन धारण में सक्षम हुई थी। उसे विश्वास था कि मैं अपने पातिव्रत्य के बल से उनसे बहुत दिनों तक दूर नहीं रह सकूँगी। जब सीता को यह संवाद मिला कि राम ने अश्वमेधयज्ञ में सीता की स्वर्णप्रतिमा को धर्मपत्नी के स्थान पर रक्खा है तब उसके आनन्द का पारावार नहीं रहा। वह स्वामी के गौरव से बड़ी गौरवान्वित हुई।

ऐसे ही उसके देवरों के प्रति अनुराग, गुरुजनों के प्रति आन्तरिक भक्ति और परिजन परिचारों के प्रति परम स्नेह अवर्णनीय थे। जंगल में जाने के समय भी सभी सीता के सद्व्यवहारों से सुप्रसन्न थे। क्या घर में और क्या बाहर, सब लोग सती सीता के स्नेह से सिञ्चित थे और शुद्ध मानस से उनकी शुभकामना करते थे। यहाँ तक कि पशु पक्षी भी उससे हिल मिल गये और उसके प्राण-समान प्यारे हो गये थे। सीता का हृदय सरल, शुद्ध और पवित्र था। स्नेह, करुणा और पातिव्रत्य इन्हीं तीनों अनुपम गुणों की सीता प्रतिमूर्ति थी। ऐसी ही स्नेहमयी, दयामयी, करुणामयी और सतीत्वमयी होने ही के कारण आर्य का चरित्र भारतीय कुलकामनियों के लिये अनुकरणीय हो रहा है।

द्वितीय पाठ—समालोचना (Criticism)

कालिदास ।

संस्कृत-साहित्य में लघुत्रयी और बृहत्त्रयी के नाम से दो काव्यत्रितय प्रसिद्ध हैं। रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत लघुत्रयी और माघ, किरात तथा नैषध बृहत्त्रयी हैं। लघुत्रयी के कर्त्ता हैं केवल महाकवि कालिदास। पर बृहत्त्रयी के तीनों ग्रन्थों के कर्त्ता तीन महाकवि हैं। मैं नहीं कह सकता कि किसने कविकुलालङ्कार कालिदास के तीनों काव्यों को लघुत्रयी संज्ञा दी और कब से इसका प्रचलन हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन्होंने यह संज्ञा दी और जिन्होंने इसके प्रचलन में उसे सहायता दी वे समयज्ञ सहृदय नहीं थे। यदि ऐसी बात होती तो कभी नहीं इस त्रयी के साथ उन्हें लघु शब्द जोड़ने की आवश्यकता पड़ती। क्योंकि बड़े २ विद्वानों, महाकवियों और प्रौढ़ समालोचकों ने जो इसकी प्रशंसा की है वह इन तीनों महाकवियों में से किसीको उपलब्ध नहीं हुई है। वस्तुतः ये काव्य पदलालित्य, वर्णन वैचित्र्य, अर्थ सम्पत्ति, प्रसादगुण तथा अन्यान्य साहित्यिक सम्पत्ति में संस्कृत साहित्य के सर्वोच्च पद पर आ सकते हैं।

महाकवि कालिदास का प्रणीत रघुवंश महाकाव्य भी संस्कृत-साहित्य में सर्वापेक्षा सर्वांश में सर्वोत्कृष्ट है। जो सहृदय साहित्य के यथार्थ रूप से रसास्वादन के अधिकारी हैं वे समझ सकते हैं कि कालिदास कैसी अलौकिक कवित्व शक्ति से सम्पन्न हो कर भूमण्डल में अवतीर्ण हुए थे। वे सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य—रघुवंश सर्वोत्कृष्ट खण्डकाव्य—मेघदूत और सर्वोत्कृष्ट नाटक—शकुन्तला लिख गये हैं। इन्हें देख कर

णता और स्वामी के दोष-दर्शन में ऐसी पराङ्मुखता अन्य किसी साध्वी स्त्री के लिये असम्भव है। यदि वह यह समझती कि राम अपनी प्राणप्यारी को निष्प्राण होकर परित्याग करते हैं तो वह कभी मर गयी होती, पर नहीं। वह जानती थी कि मेरे निर्वासन के समय राम मर्माहत हुए हैं—उनकी ममता मुझमें बहुत है। इसीसे राममयजीविता जानकी जीवन-धारण में सक्षम हुई थी। उसे विश्वास था कि मैं अपने पातिव्रत्य के बल से उनसे बहुत दिनों तक दूर नहीं रह सकूँगी। जब सीता को यह सवाद मिला कि राम ने अश्वमेधयज्ञ में सीता की स्वर्णप्रतिमा को धर्मपत्नी के स्थान पर रक्खा है तब उसके आनन्द का पारावार नहीं रहा। वह स्वामी के गौरव से बड़ी गौरवान्वित हुई।

ऐसे ही उसके देवरों के प्रति अनुराग, गुरुजनों के प्रति आन्तरिक भक्ति और परिजन परिवारों के प्रति परम स्नेह अवर्णनीय थे। जगल में जाने के समय भी सभी सीता के सद्व्यवहारों से सुप्रसन्न थे। क्या घर में और क्या बाहर, सब लोग सती सीता के स्नेह से सिञ्चित थे और शुद्ध मानस से उनकी शुभकामना करते थे। यहाँ तक कि पशु पक्षी भी उससे हिल-मिल गये और उसके प्राण-समान प्यारे हो गये थे। सीता का हृदय सरल, शुद्ध और पवित्र था। स्नेह, करुणा और पातिव्रत्य इन्हीं तीनों अनुपम गुणों की सीता प्रतिमूर्ति थी। ऐसी ही स्नेहमयी, दयामयी, क्षमामयी, करुणामयी और सतीत्वमयी होने ही के कारण आज सीता का चरित्र भारतीय कुलकामनियों के लिये आदर्श और अनुकरणीय हो रहा है।

द्वितीय पाठ—समालोचना (Criticism)

कालिदास ।

संस्कृत-साहित्य में लघुत्रयी और बृहत्त्रयी के नाम से दो काव्यत्रितय प्रसिद्ध हैं। रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत लघुत्रयी और माघ किरात तथा नैषध बृहत्त्रयी हैं। लघुत्रयी के कर्त्ता हैं केवल महाकवि कालिदास। पर बृहत्त्रयी के तीनों ग्रन्थों के कर्त्ता तीन महाकवि हैं। मैं नहीं कह सकता कि किसने कविकुलालङ्कार कालिदास के तीनों काव्यों को लघुत्रयी संज्ञा दी और कब से इसका प्रचलन हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन्होंने यह संज्ञा दी और जिन्होंने इसके प्रचलन में उसे सहायता दी वे अवश्यमेव सहृदय नहीं थे। यदि ऐसी बात होती तो कभी नहीं इस त्रयी के साथ उन्हें लघु शब्द जोड़ने की आवश्यकता पड़ती। क्योंकि बड़े २ विद्वानों, महाकवियों और प्रौढ़ समालोचकों ने जो इनकी प्रशंसा की है वह इन तीनों महाकवियों में न किसीको उपलब्ध नहीं हुई है। सचमुच ये काव्य पदलालित्य, वर्णन वैचित्र्य, अर्थ सम्पत्ति, प्रसादगुण तथा अन्यान्य साहित्यिक सम्पत्ति से संस्कृत साहित्य के सर्वस्व कहे जा सकते हैं।

महाकवि कालिदास का प्रधान रघुवंश महाकाव्य तो संस्कृत-साहित्य में सर्वापेक्षा सर्वांश में सर्वोत्कृष्ट है। जो सहृदय साहित्य के यथार्थ-रूप के रसास्वादन के अधिकारी हैं वे समझ सकते हैं कि कालिदास जैसी अलौकिक कवित्व शक्ति से सम्पन्न हो कर भूमण्डल में अवतीर्ण हुए थे। वे सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य—रघुवंश, सर्वोत्कृष्ट खण्डकाव्य—मेघदूत और सर्वोत्कृष्ट नाटक—शकुन्तला लिख गये हैं। इन्हें हम पर

यह कहना पडता है कि ससार के किसी देश का कोई सुप्रसिद्ध कवि महाकवि कालिदास के समान इन विषयों में समानभाव से सौभाग्यशाली और समर्थ न था और न होगा।

कालिदास को जो अलौकिक कवित्वशक्ति मिली थी और जो अभूतपूर्व प्रतिभा प्राप्त थी उसका वे अपने काव्यकलापों में पूर्ण रूप से प्रदर्शन कर गये हैं। उनके सभी वर्णनों को पढ कर चमत्कृत और मोहित होना पडता है। बारबार पढने पर भी उससे तृप्ति नहीं होती। उनके वर्णन में कहीं भी अत्युक्ति नहीं है। आद्यन्त उनकी उक्तियाँ स्वभावोक्ति अलकार मे अलकृत हैं। वस्तुत सस्कृत-साहित्य में ऐसा स्वाभाविक और हृदयग्राही वर्णन नहीं मिलता। कालिदास की उपमा अत्यन्त मनोहर, सुसगत और एकाकार है। ऐसी तुलमतूल उपमा किसी भाषा के किसी कवि ने अब तक नहीं गढी है। उन्होंने इस प्रकार सरूप और ऐसा लोकसिद्धविषय लेकर उपमासकलन किया है कि पाठकों को पढ़ते ही अनायास उपमा और उपमेय का सादृश्य हृदयङ्गम हो जाता है। उनकी रचना संस्कृत रचना का आदर्श स्वरूप है। क्या उनके पूर्व की और क्या उनके बाद की, जितनी सस्कृत रचनायें हैं उन्हें देखकर यही कहना पडता है कि क्या कवि और क्या ग्रन्थकार किसीने उनकी सी चमत्कारिणी और मनोहारिणी सस्कृत रचना नहीं की है। उनकी रचना जैसी सरल, वैसी ही मधुर, जैसी मनोहर, वैसी ही ललित है। न उसमें कोई अनावश्यक शब्द है और न कोई तोड मरोड का शब्द हो। उनके ग्रन्थों के पढने से यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि उनकी करामाती लेखिनी से सभी शब्द धाराप्राहिक-रूप से बेपरिश्रम निकलते गये हैं और रचना करने

मैं या भावसङ्कलन करने में एक मुहूर्त के लिये भी उनकी लेखिनी नहीं रुकी है और न उन्हें कुछ चिन्ता ही करनी पड़ी है । वस्तुतः ऐसी रचना-शक्ति का और कवित्वशक्ति का एकत्र सम्मिलन असम्भव है । इसी कारण भारतवासी कालिदास को सरस्वती का वर-पुत्र कहते हैं । इसी कारण कालिदास के काव्यों का इतना आदर, इतना गौरव और इतना महत्त्व है और इसी कारण कालिदास का नाम क्या देश में और क्या विदेश में—एक प्रकार से प्रख्यात है और उनकी कीर्ति का कलगान एक प्रकार से होता है । अतएव प्रसन्नराघव के कर्ता श्रीजयदेव कवि ने अपने नाटक की प्रस्तावना में कालिदास को 'कविकुलगुरु' कहा है ।

ऐसी अलौकिक कवित्व-शक्ति और ऐसी अद्वितीय रचना-शक्ति से सम्पन्न होने पर भी कालिदास ऐसे निरभिमान थे कि अपने को तुच्छ से भी तुच्छ समझते थे । उन्होंने रघुवंश के आरम्भ में, एक श्लोक में इस प्रकार अपना मनोभाव व्यक्त किया है कि 'वामन जिस प्रकार उस फल के लिये हाथ उठाकर उपहासास्पद होता है जिसे लम्बा पुरुष पा सकता है, उसी प्रकार मैं असमर्थ होने पर भी कविकीर्ति का अभिलाषी हो कर अपनी हँसी कराऊँगा ।' कैसी नम्रता और सहृदयता है ! वाह ! धन्य कालिदास !! धन्य भारत की पुण्य-भूमि !!!

उचितवक्ता ।

पंडित दुर्गाप्रसादने एक तीसरे हिन्दी समाचार पत्रकी सृष्टी । वह अपना नाम अपना आप था । इसका नाम उचितवक्ता । वह पत्र निकाल कर पंडित दुर्गाप्रसादजी ने हिन्दी पत्रोंमें एक नई रीति पैदा कर दी थी । अब सभी लेखक इसी प्रकार लेख लिखा करते हैं ।

हेम०—भला काम करने में मूँछ नीची क्यों होगी, यह मैं नहीं समझती, पर जो आप नहीं मानते है तो कोई अच्छा घर वर खोजिये। दयासकर के यहाँ मै अपनी लडकी का ब्याह कभी न होने दूगी।

राम०—न होने दोगी तो गहने उतारो, घर दुआर बेचो, बारह चौदह सौ रोक दो, अच्छा घर घर मे खोज देता हूँ। बेटी का ब्याह करके घर २ भीख माँगते फिरना।

हेम०—बडे दु:ख की बात है, जिनको आप हाड़वाले कहते है, उनके यहाँ अच्छा घर वर मिलने से हम लोग आप कगाल बनते है, जो देवनन्दन का बाप सदाशिव मिसिर भलेमानसों की भाति बिना एक कौडी लिये हमसे ब्याह करना चाहते हैं, उनके यहाँ देवबाला के देने से आपकी मूँछ नीची होती है तो क्या दयाशकर के यहाँ ब्याह करके लडकी को जनम भर के लिये मिट्टी में मिला देना ही आप अच्छा समझते है।

राम०—किसीको कोई मिट्टी में नहीं मिलाता, जो जिसके भाग में होता है, वही होता है। देवबाला के भाग में दुख है तो उसको सुख कैसे मिलेगा?

हेम०—सच है, पर किसीको जान बूझ कर जब हम आग मे फेंक देंगे तो वह क्यों न जलेगा, भाग वही माना जाता है जहाँ बस नहीं चलता।

(ठेठ हिन्दी के ठाट से उद्धृत)

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय।

प्रश्न—'भरत और लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण' तथा 'रामायण की आलोचना करो और 'हिन्दी की राष्ट्रभाषा की योग्यता' तथा 'धन का मूल वा राज्य है वा विद्या' इस पर विचार पूर्वक खडन मडन वा वादविवाद लिखो।

॥ इति ॥

८ रामचरित चिन्तामणि २)

खड़ी बोली का एक अद्वितीय महाकाव्य।

"यह एक बहुत बड़ा काव्य है। २५ सर्गों में समाप्त हुआ है। पृष्ठ संख्या कुछ कम चार सौ है। आकार मध्यम और छपाई सुन्दर है। इसके रचयिता सरस्वती पाठकों के परिचित पण्डित रामचरित उपाध्याय हैं। इस काव्य के कुछ अंश सरस्वती में निकल भी चुके हैं। अतएव इसकी चाशनी चखाने की जरूरत नहीं। नामानुसार इसमें रामचन्द्र के चरित का कीर्तन है। अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके कितने ही स्थल वीर, रौद्र और करुणा रसों के सिवा अन्य रसों से भी अभिषिक्त हैं। प्रकृति वर्णन भी जगह २ पर है। इसमें एक विशेषता यह है कि कवि ने जगह २ पर देशभक्ति और देशप्रेम की सुरीली वंशी बजाई है। इसके अनेक अंशों से सुशिक्षा भी मिलती है और सुनीति ही का नहीं, कूटनीति का भी नाद कर्णगोचर होता है। भाषा इसकी बोल-चाल की है। कवि ने अपनी कविता को सालङ्कार और सानुप्रास बनाने की अच्छी चेष्टा की है। कविता के प्रेमियों विशेष करके रामचरितचर्चा के लोलुपों को—इस चारु चिन्तामणि का आदर करना चाहिये। हिन्दी का सौभाग्य है जिसमें बोल चाल की भाषा में बड़े २ काव्य ग्रन्थ निकलने लगे"।

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी (सरस्वती, जुलाई १९२०)

"इस काव्य की रचना अपने ढंग की अच्छी, सरल तथा ओजस्विनी हुई है। .. अभी खड़ी बोली में जैसी अच्छी कविता की जा सकती है उसके खयाल से इस पुस्तक की रचना बहुत उत्तम हुई है और काव्यप्रेमियों को देखने योग्य है।"

हिन्दी बङ्गवासी २९ मई १९२०